उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

UGPA-101
लोक प्रशासन

खण्ड – एक : लोक प्रशासन का स्वरूप 03–88

इकाई 1 : लोक प्रशासन की परिभाषा, क्षेत्र एवं महत्व

इकाई 2 : लोक प्रशासन एवं अन्य सामाजिक विज्ञान से सम्बन्ध

इकाई 3 : लोक प्रशासन का विकास

इकाई 4 : तुलनात्मक लोक प्रशासन

इकाई 5 : विकास प्रशासन

इकाई 6 : नवीन लोक प्रशासन

खण्ड – दो : सार्वजनिक संगठन : प्रतिमान 89–164

इकाई 7 : सार्वजनिक संगठन के तत्व एवं चुनौतियाँ

इकाई 8 : वैज्ञानिक प्रबन्ध : एफ. डब्ल्यू. टेलर

इकाई 9 : मानवीय सम्बन्धात्मक उपागम : एल्टॉन मेयो

इकाई 10 : व्यवस्थावादी उपागम : चेस्टर बरनार्ड

इकाई 11 : व्यवहारवादी उपागम : हरबर्ट साईमन

इकाई 12 : सामाजिक मनोविज्ञान उपागम : डगलस मैकग्रेगर एवं अब्राहम मैस्लो

इकाई 13 : पारिस्थितिकीय उपागम : फ्रेड डब्ल्यू. रिग्स

UGPA-101
लोक प्रशासन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड – 1
लोक प्रशासन का स्वरूप

इकाई – 1 5

लोक प्रशासन की परिभाषा, क्षेत्र एवं महत्व

इकाई – 2 23

लोक प्रशासन एवं अन्य सामाजिक विज्ञान से सम्बन्ध

इकाई – 3 37

लोक प्रशासन का विकास

इकाई – 4 47

तुलनात्मक लोक प्रशासन

इकाई – 5 59

विकास प्रशासन

इकाई – 6 79

नवीन लोक प्रशासन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

UGPA -101

कुलपति एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह — **कुलपति/मार्गदर्शक**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

(1) **प्रो. मनोज दीक्षित –** — **सदस्य**

प्रोफेसर, लोकप्रशासन विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

(2) **प्रो. आर. के सप्रू –** — **सदस्य**

प्रोफेसर, 473 सेक्टर 38–ए, चण्डीगढ़

(3) **प्रो.बी.एल.शाह –** — **सदस्य**

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

(4) **प्रो. वी. के. राय –** — **सचिव**

राजनीतिक विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो.बी.एल.शाह – प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

संपादन/परिमापक

प्रो. आर. के सप्रू – प्रोफेसर, 473 सेक्टर 38–ए, चण्डीगढ़

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू, प्रयागराज

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN-

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।
प्रकाशन– उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रकाशकः– कुलसचिव विनय कुमार उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–2023
मुद्रक – सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूसन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

CENTOS-025

इकाई– 1

लोक प्रशासन की परिभाषा, क्षेत्र, प्रकृति व महत्व

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 लोक प्रशासन की परिभाषा

1.3 लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र

1.3.1 ''सार्वजनिकता'' को प्रोत्साहन

1.3.2 नीति की संवेदनशीलता

1.3.3 कार्यान्वयन क्षमता

1.3.4 सामाजिक प्राप्ति के रूप में प्रशासन

1.3.5 अनुभव प्राप्ति के रूप प्रशासन

में 1.4 लोक प्रशासन का क्षेत्र

1.5 लोक प्रशासन की प्रकृति

1.6 लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में अन्तर

1.7 लोक प्रशासन का महत्व

1.8 व्यवहारिक सम्बन्ध

1.8.1 सामाजिक विज्ञान के प्ररिप्रेक्ष्य में

1.8.2 तीसरी दुनिया के परिप्रेक्ष्य में

1.9 नागरिकता की दृष्टि से उदार अध्ययन

1.10 लोक प्रशासन के योगदान

1.10.1 ज्ञान मीमांसात्मक

1.10.2 तकनीकी

1.10.3 लोकपालिका

1.10.4 उदार शिक्षात्मक

1.10.5 व्यवसायिक

1.11 सारांश

1.12 प्रमुख शब्दावली

1.13 बोध प्रश्न

1.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

- लोक प्रशासन की परिभाषा करना तथा इसकी विशिष्टताओं का उल्लेख करना है,
- साथ ही इस विषय की प्रकृति को समझना,
- निजी प्रशासन तथा लोक प्रशासन में अंतर समझना है,
- यह भी समझ सकेंगे कि लोगों की विविध प्रकार की आवश्यकताओं पर लोक प्रशासन किस तरह कुशलता के साथ विचार करता है और किस तरह समस्याओं के व्यावहारिक समाधान की दिशा में काम करता है।

1.2 प्रस्तावना

इस अध्याय का केन्द्रीय उद्देश्य पाठकों को लोक प्रशासन के आधारभूत तत्वों से परिचित कराना है।

कार्य के अर्थ में ''लोक प्रशासन'' साधारणतः ''प्रशासन'' का ही एक पहलू है। प्रशासन की परिभाषा, कुछ सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मनुष्य द्वारा किये गये सहकारी प्रयास के रूप में की गई है। इस प्रकार से दी गई परिभाषा के अनुसार प्रशासन को विभिन्न संस्थाओं जैसे व्यापारिक फर्म, चिकित्सालय, विश्वविद्यालय और सरकारी विभाग आदि में देखा जा सकता है। इस सामान्य धारणा के एक पहलू के रूप में 'लोक प्रशासन', प्रशासन का वह भाग है जो एक विशिष्ट राजनैतिक व्यवस्था के अन्दर कार्य करता है। लोक प्रशासन राजनीतिक निर्णयों को कार्यरूप में परिणित करने का एक साधन है। ''यह सरकार के कार्यों का वह भाग है, जिसके द्वारा सरकार के उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति होती है।'' निग्रो के अनुसार, लोक प्रशासन की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

(i) यह किसी सार्वजनिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक सहकारी सामूहिक प्रयास है।

(ii) इसके अन्तर्गत विधायिका, कार्यपालिका और न्याय पालिका, तीनों शाखाएं और उनके परस्पर सम्बन्ध आते हैं।

(iii) यह लोक नीति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, इसलिए यह राजनीतिक प्रक्रिया का भी भाग है।

(iv) यह निजी प्रशासन से कई प्रकार से भिन्न है।

(v) यह समाज को सुविधाएं प्रदान करने के लिए, अनेक निजी समूहों और व्यक्तियों से इसका निकट का सम्बन्ध है।

लोक प्रशासन द्वारा जिन कार्यों को संपादित किया जाने लगा है वे राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत शान्ति और सुव्यवस्था बनाए रखने में अत्यधिक योगदान दे रहे हैं। एल0डी0 व्हाइट ने इसी को ध्यान में रखकर लिखा है कि ''लोक प्रशासन की प्रकृति, विषय वस्तु तथा क्षेत्र सभी मिलकर इसे आधुनिक शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बना देते हैं।''

1.3 लोक प्रशासन की परिभाषा

लोक प्रशासन एक विशिष्ट क्षेत्र है। यह मुख्य रूप से सरकार कार्य–कलापों में युक्त तंत्र एवं प्रक्रियाओं से सम्बन्ध रखता है। प्रशासन की

परिभाषा, ''कुछ सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मनुष्य द्वारा किए गए सहकारी प्रयास'' के रूप में की गई है। इस प्रकार से दी गई परिभाषा के अनुसार प्रशासन को विभिन्न संस्थाओं जैसे व्यापारिक फर्म, चिकित्सालय, विश्वविद्यालय और सरकारी विभाग आदि में देखा जा सकता है। इस सामान्य धारणा के एक पहलू के रूप में 'लोक प्रशासन', प्रशासन का वह भाग है जो एक विशिष्ट राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करता है। लोक प्रशासन राजनीतिक निर्णयों को कार्यरूप में परिणित करने का एक साधन है। कार्य पूरा करने के लिए योजना बनाना, उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्माण करना, निर्णय लेना, जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए विधायिका एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ कार्य करना, संगठनों का निर्माण एवं पुनर्निर्माण करना, कर्मचारियों को निर्देश देना और उनकी गतिविधियों का संचालन करना, नेतृत्व प्रदान करना, संचार सम्बन्धी कार्य करना, कार्य करने की विधियां खोजना और उनका मूल्यांकन करना, सरकारी अधिकारियों द्वारा किए गए कार्य और उन पर नियंत्रण रखना, ये सभी लोक प्रशासन ही है। यह सरकार के कार्य का वह भाग है जिसके द्वारा सरकार के उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति होती है।

सरकार अपनी नीतियों एवं संसाधनों से आम हित का संवर्धन करती है।

लोक प्रशासन की कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

''लोक प्रशासन सार्वजनिक कानून का विस्तृत और क्रमबद्ध कार्यान्वयन है। कानून का प्रत्येक अनुप्रयोग, लोक प्रशासन का कार्य है।'' – एल. डी. व्हाइट

''प्रबन्ध की कला एवं विज्ञान को, राज्य के कार्यों में प्रयोग करना ही लोक प्रशासन है।'' – ड्वाइट वाल्दो

''साधारण शब्दों में लोक प्रशासन का अर्थ है राष्ट्र, राज्य तथा स्थानीय शासनों की कार्यकारी शाखाओं के कार्यकलाप।'' – हरबर्ट साइमन।

लोक प्रशासन में ''लोक'' पहलू इस विषय को एक विशिष्टता प्रदान करता है। औपचारिक रूप से इसे ''सरकार'' के अर्थ में देखा जा सकता है। इस प्रकार लोक प्रशासन शासकीय प्रशासन है, जो सरकारी अधिकारी तंत्र पर ही विशेष रूप से केन्द्रित होता है। लोक प्रशासन की चर्चा करते समय प्रायः यही अर्थ प्रयोग में लाया जाता है। लोक प्रशासन के अन्तर्गत वे सभी प्रशासन आ सकते हैं जिसका जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से कलकत्ता इलैक्ट्रिक सप्लाई कार्पोरेशन जैसे एक निजी विद्युत उपक्रम को लोक प्रशासन के अधीन विचार के लिए एक उपयुक्त विषय समझा जा सकता है, किन्तु लोक प्रशासन पर विचार प्रायः पहले अर्थ में ही किया जाता है।

हालांकि लोक प्रशासन के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार अलग–अलग हैं। कुछ विद्वानों के विचारानुसार लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के तीनों अंगों– व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के कार्यों से है। दूसरी ओर, कुछ विद्वानों ने लोक प्रशासन के अध्ययन को सरकार के केवल कार्यपालिका अंग तक सीमित रखना चाहा है। इनका मत है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध केवल सार्वजनिक नीति को लागू करने तथा पूरा करने से है। इन सब विचारों के परिप्रेक्ष्य में ग्लैडन ने कहा है, ''लोक प्रशासन में एक संदिग्धता पाई जाती है। जिससे इसकी परिभाषा करने में बाधा उपस्थित होती है। लोक प्रशासन को केवल गतिशीलता के साथ तथा सरकार के बदलते हुए कार्यों को दृष्टिगत रखते हुए ही समझा जा सकता है। इस बात का पता लगाने के लिए कि इसमें कोई मौलिक तत्व पाया भी जाता है या नहीं, यह आवश्यक है कि इसका अध्ययन गहराई के साथ, समय की गतिशीलता के साथ और वास्तविक रूप में किया जाए।''

विलोभी एफ.डब्ल्यू. ने लोक प्रशासन की एक व्यापक अर्थ में व दूसरी संकुचित अर्थ में परिभाषा दी है। व्यापक अर्थ में लोक प्रशासन में वे सभी कार्य सम्मिलित किये जाते हैं, जो सरकार की तीनों शाखाओं से सम्बद्ध हैं। संकुचित अर्थ में लोक प्रशासन सरकार की कार्यपालिका शाखा की क्रियाओं से सम्बद्ध होता है। विलोबी के शब्दों में, ''अपने व्यापक अर्थ में लोक प्रशासन उस कार्य का प्रतीक है जो सरकारी कार्यों के वास्तविक संपादन से सम्बद्ध होता है, चाहे वह कार्य सरकार की किसी भी शाखा से सम्बद्ध क्यों न हो... अपने संकुचित अर्थ में वह केवल प्रशासकीय शाखा की कार्यवाहियों की ओर संकेत करता है।''

यदि लोक प्रशासन को संकुचित अर्थ में लिया जाये, तो स्पष्ट होता है कि यह केवल सरकार की कार्यपालिका– शाखा की क्रियाओं से ही सम्बद्ध है। इस अर्थ में लोक प्रशासन का सम्बन्ध लोक नीतियों को कार्यान्वित करने से है। विलोबी और साइमन ने भी लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकार की केवल प्रशासकीय शाखा से ही माना है। वुडरो विल्सन के शब्दों में, ''लोक प्रशासन विधि अथवा कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप में कार्यान्वित करने का नाम है। विधि को कार्यान्वित करने की प्रत्येक क्रिया एक प्रशासकीय क्रिया है।''

व्हाइट ने लोक प्रशासन की परिभाषा व्यापक अर्थ में की है। उनके मतानुसार लोक प्रशासन की परिधि में वे सभी कार्य आ जाते हैं जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को कार्यान्वित करना अथवा पूरा करना या लागू करना होता है। व्हाइट के शब्दों में, ''लोक प्रशासन में सभी कार्य आ जाते हैं जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।'' यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि लोक प्रशासन के अन्तर्गत सरकार के विभिन्न अंगों की वे सभी क्रियाएं शामिल की जाती हैं जो कानून, सामाजिक कल्याण आदि के क्षेत्र में सम्पन्न होती हैं। व्हाइट ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''लोक प्रशासन की व्यवस्था उन सभी कानूनों, नियमों, क्रियाओं, सम्बन्धों, संहिताओं और रीति–रिवाजों का मिश्रण है, जो सार्वजनिक नीति को पूरा करने अथवा क्रियान्वित करने के लिए किसी भी समय, किसी भी सरकार के अधिकार–क्षेत्र में प्रचलित होते हैं।'' पिफ्नर के मतानुसार, ''लोक प्रशासन का अर्थ है सरकार का कार्य–सम्पादन करना चाहे वह कार्य स्वास्थ्यशाला में एक्स–रे मशीन के संचालन करने का हो अथवा टकसाल में सिक्के बनाने का....। प्रशासन से तात्पर्य है लोगों के कृत्यों में सामंजस्य उत्पन्न करना जिससे वे किसी पूर्व निश्चित लक्ष्य के प्रयासों को जुटा सकें।'' डिमोक के मतानुसार प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के 'क्या' और 'कैसे' से है। पर्सी मेकक्वीन के शब्दों में, ''लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के कार्यों से है, चाहे वे केन्द्र द्वारा संपादित हों अथवा स्थानीय सरकार द्वारा।'' डॉ0 ग्लैडन ने लोक प्रशासन की परिभाषा व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर करते हुए कहा है, ''प्रशासन का सम्बन्ध सम्पूर्ण मानवीय सम्बन्धों से है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति से होता है, वस्तु से नहीं।''

आज लोक प्रशासन को मात्र सरकारी नीतियों को लागू करने के साधन के रूप में नहीं देखा जाता है अपितु इसके नीति एवं कार्यक्रम निर्धारण के भी दायित्व हैं।

1.4 लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र

यह स्पष्ट है कि सरकार हमें दैनिक आधार पर प्रभावित करती है एवं यह अपेक्षा होती है कि यह हमारे लिए कार्य कर अपने अस्तित्व को औचित्यपूर्ण साबित करे। सरकार पर सामान्य हित को बढ़ावा देने का दायित्व होता है।

लोक प्रशासन के स्वरूप को समझने से पूर्व इस बात की जानकारी आवश्यक है कि इसका सम्बन्ध किस विषय–वस्तु से रहता है। जिस प्रकार लोक प्रशासन की परिभाषा में भिन्नता है, उसी तरह इसके क्षेत्र के विषय में भी विभिन्न विद्वानों के मत अलग–अलग हैं। अतः इसके क्षेत्र को निश्चित करना कठिन है क्योंकि यह एक विकासशील ज्ञान है। समय की गति के साथ ज्यों–ज्यों राज्य, सरकार, प्रशासन तथा जनता के व्यवहार में परिवर्तन एवं विकास होता चला जाता है, त्यों–त्यों लोक प्रशासन के अध्ययन–क्षेत्र में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आज के समाज की वास्तविक जटिलता को देखते हुए, यह स्वीकार किया जाता है कि लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए। लोक प्रशासन मुख्य रूप से निम्न विषयों से सम्बन्ध रखता है :

1.3.1 ''सार्वजनिकता'' को प्रोत्साहन

एक लोकतंत्रात्मक समाज में लोक प्रशासन को लोकतंत्रीय मूल्यों, शक्ति सहभागिता और खुलेपन को ध्यान में रखते हुए स्पष्टतः ''सार्वजनिक'' होना चाहिए। इसके लिए अधिकारी तंत्र में एक नए प्रकार के वातावरण की आवश्यकता है। व्यावहारिक रूप में लोक प्रशासन, सरकार का ऊपरी ढांचा है। अतः लोक प्रशासन तथा लोकतंत्र के सिद्धान्तों को अपने आप में समाविष्ट करना होगा।

1.3.2 नीति की संवेदनशीलता

चूंकि तेजी से हो रहे परिवर्तनों और समाजिक उलझनों को देखते हुए सरकार को अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए, इसलिए नवीनता लाना और समय पर नीति–निर्धारण करना सरकार की एक प्रमुख आवश्यकता हो जाती है। इसलिए प्रशासनिक ढांचे में नई तैयारियों की जरुरत पड़ती है, जो कि अभी तक नहीं थी।

1.3.3 कार्यान्वयन क्षमता

आज की जटिल परिस्थतियों में नीतियों का प्रभावी रूप से कार्यान्वयन ही इस बात की कसौटी है कि सरकार में स्थिति का सामना करने की कितनी क्षमता है। लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित करना होगा और इसके बाद योजना बनाने, कार्यक्रम तैयार करने तथा इसे प्रक्षेपित करने के कार्य को क्रमबद्ध रूप से करना होगा। सरकार में परियोजना प्रबन्ध को उसकी सभी शाखाओं में सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्रशासन की शक्ति एवं सरकार की वैधता स्वयं जनता की मांगों को समय पर पूरा करने की उसकी क्षमता पर निर्भर करेगी।

1.3.4 सामाजिक प्राप्ति के रूप में प्रशासन

सामाजिक एवं प्रशासनिक जटिलताओं का मुकाबला करने की क्षमता को तभी बढ़ाया जा सकता है जबकि संगठनों को स्वतंत्र रखा जाए। इसके पीछे धारणा यह है कि प्रशासन को विभिन्न हितों और प्रभावों को समझना चाहिए। आज के जटिल प्रशासनिक विश्व में प्रशासनिक यथार्थता का निर्माण, इसके विभिन्न अंगों जैसे सर्वोच्च पदस्थ व्यक्ति, मध्य–प्रबन्धकों, कर्मचारियों एवं नागरिकों की सांझी समझ पर आधारित है। केन्द्रीयकृत अनुदार अधिकारी–तंत्र, समकालीन सामाजिक–प्रशासनिक वास्तविकता के उपयुक्त नहीं है।

1.3.5 अनुभव प्राप्ति के रूप में प्रशासन

आज की बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था और जटिल वातावरण में लोक प्रशासन के सामने कुछ कठिनाइयां हैं।

पुराने घिसे–पिटे ''सिद्धांत'' अथवा अफसरशाही के प्रशासनिक तौर–तरीके अब कठिनाइयों को हल करने तथा उनका विश्लेषण करने के लिए उपयुक्त नहीं है। आधुनिक समय में लोक प्रशासन को क्रियाशील, नवीनतापूर्ण, जोखिम लेने वाला और साहसिक होना चाहिए। इसी तरह के नए उद्यमी उत्साह से पुरानी नौकरशाही में परिवर्तन आएगा और लोक प्रशासन गतिशील तथा नवीनतापूर्ण बनेगा। नए दृष्टिकोण का उदय होगा तथा वह जनता के लिए सुलभ होगा।

सभी लोकतांत्रिक देशों की सरकारों के सामने ये कुछ मुख्य विषय हैं। विकासशील देशों में इनका और भी अधिक महत्व है, क्योंकि उपनिवेशवाद से मुक्त हुए देशों की जनता के सामाजिक तथा आर्थिक–पुनर्निर्माण में लोक–प्रशासन मुख्य भूमिका निभाता है। लोक प्रशासन के विषय को सामान्य जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता। इसका विकास, सामाजिक जीवन के गतिशील विकास के साथ–साथ होना चाहिए। ज्ञान की एक शाखा के रूप में इसका विकास इस तरह से होना चाहिए कि यह सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाइयों का विश्लेषण कर सके और हमें एक ऐसे समाज की ओर ले जाने में हमारा मार्ग दर्शन कर सके जो पुराने जमाने के समाज में व्याप्त शोषण एवं मानवीय पीड़ाएं, गरीबी और अभाव जैसी समस्याओं से मुक्त हो।

1.4 लोक प्रशासन का क्षेत्र

लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में दो तरह की विचारधाराएं प्रचलित हैं– (क) पोस्डकोर्ब विचारधारा तथा (ख) पाठ्य–विषय विचारधारा।

(क) पोस्डकोर्ब विचारधारा (POSDCORB View) लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में लूथर गुलिक ने ''पोस्डकोर्ब' विचारधारा प्रस्तुत की। इस शब्द 'पोस्डकोर्ब' की रचना अंग्रेजी के कुछ शब्दों के प्रथम अक्षरों को मिलाने से होती है।

(1) P = Planning अर्थात योजनाएं बनाना– प्रत्येक प्रशासकीय कार्य को सम्पन्न करने के पूर्व एक योजना बना ली जाती है। यह तय कर लिया जाता है कि कार्य को पूरा करने के लिए किन तरीकों को अपनाया जायेगा।

(2) O = Organising अर्थात संगठन बनाना– योजनाएं बनाने के बाद संगठन का निर्माण किया जाता है। इसके अनुसार अधिकारी वर्ग का ढांचा तैयार किया जाता है और जो कार्य किया जाना है उसे निश्चित उप–विभागों में प्रबंधित किया जाता है।

(3) S= Staffing अर्थात कर्मचारियों की व्यवस्था करना– संगठन के बाद उसके विभिन्न पदों के लिए उपयुक्त व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है। उसके प्रशिक्षण और कार्य करने की अनुकूल दशाओं का प्रबन्ध किया जाता है।

(4) D = Directing अर्थात निदेशन– कर्मचारी वर्ग के पथ–प्रदर्शन के लिए निर्णय लिये जाते हैं तथा आज्ञाएं एवं निर्देश दिए जाते हैं।

(5) CO= Co-Ordinating अर्थात समन्वय करना– संगठन के विभिन्न विभागों में संघर्ष नहीं हो, इसके लिए उनके बीच समन्वय स्थापित किया जाता है।

(6) R= Reporting अर्थात रिपोर्ट करना– संगठन की प्रशासकीय प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग रिपोर्ट देना भी है। इसका अर्थ प्रशासकीय कार्यों की प्रगति के सम्बन्ध में उन लोगों को सूचनाएं प्रदान करना है, जिनके प्रति कार्यपालिका उत्तरदायी है।

(7) B = Budgeting अर्थात बजट तैयार करना– वित्त को प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वित्तीय योजनाएं तैयार करना, लेखा–जोखा तथा प्रशासकीय विभागों को वित्तीय साधनों के द्वारा अपने नियंत्रण में रखना आदि बातें सम्मिलित हैं।

(ख) पाठ्य विषय विचारधारा (Subject matter view): लुइस मेरियम ने 'पोस्डकोर्ब' विचारधारा का समर्थन करते हुए उसके एक दोष के प्रति विशेष रूप से संकेत किया है। यह दोष है 'पाठ्य विषय का ज्ञान'। मेरियम का कहना है कि गुलिक के पोस्डकोर्ब सिद्धान्त में व्यवहारिक ज्ञान की ओर संकेत किया गया है। लोक प्रशासन के सैद्धन्तिक अध्ययन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है, जबकि स्वस्थ प्रशासन के लिए दोनों का ही ज्ञान आवश्यक है।

मेरियम के शब्दों में, ''किसी भी अभिकरण के प्रभावपूर्ण एवं बुद्धिमत्तापूर्ण प्रशासन के लिए उस पाठ्य–विषय का गहरा ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य होता है, जिससे वह प्रशासकीय अधिकरण मुख्यतः सम्बद्ध होता है।'' मेरियम के अनुसार लोक प्रशासन कैंची के समान दो फलकों वाला औजार है। इस औजार का एक फलक है 'पोस्डकोर्ब' और दूसरा फलक है पाठ्य विषय का ज्ञान। अतः 'पोस्डकोर्ब' के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों का ज्ञान पाठ्य–विषय के अन्तर्गत आने वाली तकनीकों के द्वारा लागू किया जाता है। प्रशासन को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके ये दोनों ही फलक ठीक प्रकार से कार्य करें। अतः लोक प्रशासन के क्षेत्र में ये दोनों विचारधाराएं एक–दूसरे की पूरक हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक प्रशासन का क्षेत्र व्यापक है। वास्तव में, लोक प्रशासन का लक्ष्य सरकार के लक्ष्यों को पूरा करना है। यही कारण है कि इसके अन्तर्गत केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सभी स्तर की सरकारों की एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में प्रशासन का अध्ययन किया जाता है। इसमें सरकार की क्रियाओं के साथ–साथ संगठन की समस्याओं तथा संचालन–अधिकारियों द्वारा अपनाये जाने वाले तरीकों का भी अध्ययन किया जाता है। इसका सम्बन्ध सिर्फ सरकार की कार्यपालिका की दैनिक प्रक्रिया तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन के ज्ञान का भी एक यंत्र बन गया है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक राज्यों में सार्वजनिक सम्बन्ध तथा लोक प्रशासन का सार्वजनिक उत्तरदायित्व भी अध्ययन का एक आवश्यक अंग होता है। एल0डी0 व्हाइट के शब्दों में, ''लोक प्रशासन आधुनिक शासन–व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बना देते हैं।''

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध सिर्फ सार्वजनिक नीतियों को कार्यान्वित करने से ही नहीं है, बल्कि उनकी समस्याओं

पर भी विचार करने से है। वास्तव में, लोक प्रशासन के क्षेत्र का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि राज्य की जनता सरकार से क्या चाहती है। यदि वह राज्य से अधिक–से–अधिक कार्यों को पूरा करने की आशा रखती है, तो लोक प्रशासन के क्षेत्र में वृद्धि होना स्वाभाविक है। राज्य के कार्य क्षेत्र में वृद्धि के साथ–साथ लोक प्रशासन का क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है। विकासशील राज्यों में तो लोक प्रशासन का अध्ययन–क्षेत्र और विस्तृत होता जा रहा है। वर्तमान में लोक प्रशासन में लाइसेंस प्रशासन, जिला प्रशासन, प्रखण्ड प्रशासन, ग्राम प्रशासन इत्यादि अनेक समस्याओं का अध्ययन होने लगा है। वस्तुतः आधुनिक राजनीतिक पद्धतियों में इसके क्षेत्र में महत्वपूर्ण वृद्धि होती जा रही है।

1.5 लोक प्रशासन की प्रकृति

एक विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास पर वर्षों से बदलती हुई सामाजिक स्थितियों एवं अन्य सम्बन्धित समाजिक विज्ञानों का बड़ा प्रभाव है। इस विषय का मूल उद्देश्य सिर्फ प्रशासन की कार्य क्षमता को बेहतर बनाना था। लोक प्रशासन का अपने मूल विषय, राजनीतिशास्त्र से अलग होने का यही कारण था। शासन में सुधार लाने तथा प्रशासनिक संस्थाओं को व्यावसायिक और उत्पादक बनाने के लिए लोक प्रशासन मुख्य रूप से ''प्रबन्ध विज्ञान'' की ओर झुक गया है। लोक प्रशासन में अब मुख्य रूप से प्रशासनिक एवं प्रबन्धकीय साधनों और सिद्धान्तों जैसे बजट बनाने, प्रबन्ध तकनीकों तथा संक्रियात्मक अनुसन्धान विषयों को लागू करने और कम्प्यूटर विज्ञान आदि के उपयोग पर बल दिया जा रहा है। प्रबन्धकीय प्रकृति की ओर इतना अधिक झुकने के कारण यह अपने सामाजिक विज्ञान विषय से अलग हो गया है। इसने राजनीति विज्ञान से अपने को अलग कर लिया है और अब यह लगभग प्रबन्ध शिक्षा में विलीन हो गया है। इस विषय ने धीरे–धीरे लगभग व्यावसायिक रूप धारण कर लिया है। इसका मुख्य उद्देश्य लोक प्रबन्धकों को तैयार करना है, जिस प्रकार से प्रबन्ध संस्थान व्यापारिक जगत के लिए प्रबन्धक तैयार करता है।

इस विषय में इस प्रकार से बदलाव से अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। सम्बन्धित विषयों से जानकारी प्राप्त करने की महत्ता को स्वीकार करते हुए यह तर्क दिया गया है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध मुख्यतः राष्ट्र–निर्माण, सामाजिक विनियमन एवं लोक सेवा के कार्यों से है। यह आवश्यक नहीं कि लोक प्रशासन में प्रयुक्त प्रबन्ध तकनीक अथवा लोक प्रशासन का प्रबन्ध विज्ञान की ओर झुकाव, निजी प्रबन्धकों की अंधी नकल हो। अलाभपूर्ण सार्वजनिक संगठनों की मूल्यांकन तकनीक निश्चय ही भिन्न होगी। सार्वजनिक संगठनों का आम जनता की ओर झुकाव प्रशासनिक निर्णय लेने वाली सरकारी मशीनरी और नौकरशाही के व्यवहार पर कुछ आवश्यक अंकुश लगाता है। सार्वजनिक कानूनों के अधीन काम करते हुए तथा जनता और विधान सभाओं की आलोचनाओं को ध्यान में रखते हुए अधिकारी–तंत्र अपने कुछ प्रशासनिक मानदंड अपनाता है। इस तरह यह निजी प्रबन्धों से भिन्न है। राजनीति के उतार–चढ़ाव को समझना, नागरिकों की आवश्यकताओं को तत्परता के साथ पूरा करने के लिए तैयार रहना, सबकी बातों पर ध्यान देना, ये एक अधिकारी के वांछनीय गुण हैं। इसके विपरीत निजी प्रबंधक को बाहरी जनता से अधिक सरोकार नहीं होता, किन्तु सरकारी कर्मचारी ऐसा नहीं कर सकता।

गोलम्बिस्की ने लोक प्रशासन की इस उलझन पर ''स्थान (लोकस)'' और ''केन्द्र बिन्दु (फोकस)'' के चुनाव की दृष्टि से एक विषय के रूप में विचार किया है। ''लोकस'' इस क्षेत्र के ''कहां' का प्रतीक है, जबकि ''फोकस'' ''क्या'' को प्रकट करता है। काफी समय से, अध्ययन के एक विषय के रूप में, लोक

प्रशासन का स्थान (लोकस) ज्यादातर राजनीति शास्त्र के साथ था और कुछ स्थितियों में इतिहास तथा अर्थशास्त्र आदि के साथ था। जहां तक ''फोकस'' का प्रश्न है, पिछले कुछ वर्षों में सार्वजनिक–नीतियों की अपेक्षा प्रशासनिक तकनीकों पर ज्यादा जोर देने की प्रवृत्ति बढ़ी है। जैसा कि गोलम्बिस्की का विचार है कि लोक प्रशासन के बदलते हुए रूप को (अधिकतर मामलों में) ''लोकस'' या ''फोकस'' द्वारा समझा जा सकता है, लेकिन विद्वानों ने जहां एक पक्ष को अच्छी तरह से परिभाषित किया है वहीं दूसरे पक्ष को नजर अंदाज कर दिया है। लोक प्रशासन राजनीतिशास्त्र के व्यापक क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाता है। इसे अपने मूल विषय से दूर हटकर व्यावसायिक प्रबन्ध अथवा प्रबन्ध की श्रेणी का विषय भी माना जा सकता है। यह इस बात पर निर्भर है कि उसकी परिभाषा किस प्रकार की गई है।

यह कहा जा सकता है कि छठे दशक के उत्तरार्ध के ''नवीन लोक प्रशासन'' आन्दोलन के समय से इस विषय को सामाजिक विज्ञान का विषय कहे जाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। ऐसा महसूस किया जाने लगा है कि विषय का व्यवसाय की ओर झुकाव इसे कुछ गलत रास्ते पर ले जा रहा है, जो इसकी ''यथापूर्व'' स्थिति का समर्थक है। कठिनाई के समय, जबकि सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए एक नवीन सामाजिक विश्लेषण की आवश्यकता हो, तब एक रुढ़िवादी प्रबन्ध की ओर झुका हुआ लोक प्रशासन, दमनकारी और सामाजिक पतन की ताकतों को अनजाने ही और मजबूत कर सकता है।

1.6 लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में अन्तर

कुछ विद्वानों ने लोक प्रशासन व निजी प्रशासन में अन्तर को मानने से इनकार किया है। इन विद्वानों के मतानुसार सभी प्रकार के प्रशासन में एक–सी ही विशेषता पाई जाती है। हेनरी फेयोल, एम0पी0 फॉलेट, एल0 उरविक आदि ऐसे ही नाम हैं। फेयोल का कहना है, ''अब हमारे सम्मुख कई प्रशासनिक विज्ञान नहीं हैं, किन्तु एक है जिसे निजी एवं लोक प्रशासनों में समान रूप से अच्छी तरह लागू किया जा सकता है।''

वास्तव में लोक प्रशासन व निजी प्रशासन में कई समानताएं विद्यमान हैं। दोनों प्रशासनों में सबसे बड़ी समानता तो यह है कि दोनों प्रशासनों में एक ही प्रकार के कौशल की आवश्यकता है। यही कारण है कि दोनों प्रकार के प्रशासनों के कर्मचारी अपने पदों को एक–दूसरे से अक्सर बदला करते हैं। भारत में ही यह देखने को मिलता है कि अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारी व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थानों में स्थान प्राप्त कर लेते हैं। इंग्लैण्ड में भी कोयला, गैस, विद्युत और यातायात के साधनों का राष्ट्रीयकरण होने पर उनमें लगे अधिकांश पदाधिकारियों को हटाया नहीं गया। विशेषतः कार्यालय के प्रबन्ध और मितव्ययिता के मामले में व्यापारिक संस्थाएं ज्यादा कुशल होती हैं। सरकार इन चीजों को अपनाने में नहीं हिचकती है। उसी प्रकार, सरकारी प्रशासन के अनुभवों से निजी प्रशासकीय संस्थाएं लाभ उठाने में नहीं चूकती हैं। मिस फॉलेट ने दोनों प्रशासनों की एक अन्य समानता की चर्चा करते हुए कहा कि दोनों ही प्रशासन इस बात के लिए सचेष्ट रहते हैं कि वे अपने आपको नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजित करने के लिए समय–समय पर परिवर्तन अपनाते रहें। इसीलिए साइमन का मानना है कि ''दोनों प्रशासनों में असमानता से अधिक समानताएं हैं।''

इस समानताओं के बावजूद दोनों को एक नहीं कहा जा सकता। दोनों प्रशासनों के बीच अन्तर दिखाने वाले तत्व विद्यमान हैं। एपलबी का कहना है कि दोनों में कई महत्वपूर्ण विशेषताएं पाई जाती हैं, जिनके आधार पर दोनों में अन्तर किया जा सकता है। एपलबी के अनुसार, ''व्यापक अर्थ में सरकारी कार्य

तथा स्थिति के कम से कम तीन ऐसे पूरक पहलू हैं, जो सरकार तथा अन्य सभी संस्थाओं और क्रियाओं (तथा निजी प्रशासन) के बीच भिन्नता प्रकट करते हैं। वे पहलू हैं– क्षेत्र– प्रभाव और विचार का विस्तार, जनता के प्रति उत्तरदायित्व तथा राजनीतिक प्रकृति।'' वस्तुतः लोक प्रशासन की प्रकृति राजनीतक है, तथा दूसरी ओर निजी प्रशासन अराजनीतिक होता है।

जोशिया स्टॉप के अनुसार लोक प्रशासन जनता के साथ समान व्यवहार करता है। एक ही प्रकार के नियमों का पालन होता है। लोक प्रशासन पर बाह्य वित्तीय नियंत्रण रहता है, जनता के प्रति उत्तरदायी होता है तथा इसका मुख्य उद्देश्य जनता की सेवा है।

प्रबन्ध विज्ञान के महत्व के कारण एक स्थिति ऐसी आ गई थी, जब लोक प्रशासन और निजी प्रशासन के बीच का अन्तर स्पष्ट नहीं था। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में अंतर मुख्य रूप से प्रत्येक राष्ट्र के राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रभावित होता है। जैसा कि अमरीका में निजी क्षेत्र वहां की अर्थव्यवस्था और समाज में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। माल और सेवाओं की पूर्ति की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र अनेक प्रकार से निजी क्षेत्र पर निर्भर रहता है। अतः उस देश में जिम्मेदारी का कोई स्पष्ट विभाजन नहीं है। इसके विपरीत भारत की अर्थव्यवस्था मिश्रित है और सार्वजनिक क्षेत्र एक प्रमुख क्षेत्र के रूप में धीरे–धीरे उभर रहा है। अगर भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का प्रसार बिना किसी बाधा के होता रहा तो इससे आशा है कि लोक प्रबन्ध और निजी प्रबन्ध के बीच का अंतर पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगा।

सामान्य कल्याण, लोक प्रशासन और निजी प्रशासन, दोनों का ही समान विषय होना चाहिए। निजी प्रबन्ध लोक हित की उपेक्षा नहीं कर सकता। दूसरी ओर, लोक प्रशासन में कुशल प्रबन्ध की बड़ी जरुरत होती है। फिर भी प्रशासन की इन दोनों प्रणालियों में मूल रूप से भिन्नता हैः

(1) लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य जनता की सेवा करना है। अतः सबका कल्याण और कुछ विशिष्ट स्थितियों में जन–संतुष्टि करना ही लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। इसके विपरीत, निजी प्रशासन मूल रूप से व्यापारियों के लिए लाभ कमाने में लगा होता है। लाभ कमा पाने में उनकी असमर्थता, शीघ्र ही निजी उपक्रम को व्यापार से बाहर कर देती है।

(2) लोक प्रशासन को अपने कानूनों, नियमों और विनियमों का पालन करते हुए कार्य करना होता है। कानूनों के भीतर कार्य करने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यों में कठोरता आ जाती है। लेखा परीक्षण अथवा जवाबदेही का भय हमेशा बना रहता है, जिससे उनके कार्य में बाधाएं उत्पन्न होती हैं। इसके विपरीत, निजी प्रशासन इस तरह के कानूनी बन्धनों से मुक्त रहते हैं। हर प्रकार के व्यवसाय के नियंत्रण के लिए सामान्य कानून जरुर है, किन्तु व्यवसायी फर्में बदलती हुई परिस्थितियों को देखते हुए अपने कार्यों में काफी लचीलापन अपनाती हैं। ऐसा करना केवल उन्हीं के लिए संभव है, क्योंकि उन पर लोक प्रशासन की तरह के कानूनी बन्धन नहीं होते।

(3) लोक प्रशासन के विभिन्न कार्य, जनता की नजरों के सामने रहते हैं। उसकी किसी भी उपलब्धि को शायद ही कभी लोकप्रियता मिले, किन्तु एक छोटी–सी गल्ती समाचार–पत्रों की सुर्खियों में प्रकाशित होती है। पुलिस जैसे संगठनों को भी अपने कार्यों का स्पष्टीकरण देना होता है और यह सिद्ध करना होता है कि उनके किसी भी कार्य से जनता में रोष तो नहीं फैला। इस प्रकार का व्यापक प्रचार निजी प्रशासन में

नहीं होता और न उस पर जनता तथा समाचार–पत्रों की निगाह ही रहती है।

(4) लोक प्रशासन में किसी भी प्रकार का भेदभाव अथवा पक्षपात करना, जनता और विधानसभाओं द्वारा निन्दा का कारण बन सकता है। अतः प्रशासकों को जनता के साथ अपने व्यवहार में बहुत–ही निष्पक्ष होना चाहिए। निजी प्रशासन में प्रतियोगी मांगों के कारण खुलकर भेदभाव होता है। उत्पादनों के चयन अथवा कीमतें निश्चित करने में व्यापारिक प्रतिष्ठान भेदभाव और पक्षपात करते हैं, जो व्यापारिक संस्कृति का एक अंग हो गया है।

(5) लोक प्रशासन, खास तौर से, सरकार के उच्च स्तर पर अत्यन्त जटिल है। बहुत सारे दबाव होते हैं, कई तरह के व्यक्तियों से मिलना और विचार–विमर्श करना होता है। वाद–विवाद तथा कई बार चर्चा–परिचर्चा के बाद ही कोई निर्णय लिया जाता है। एक विभाग के किसी कार्यकलाप का प्रभाव कई विभागों पर पड़ता है। इसके विपरीत, निजी प्रशासन अधिक सुगठित है और स्वतंत्र रूप से निर्णय कर सकता है। संगठन एवं क्रियाओं में बहुत ही कम जटिलता होती है। दबाव तो निश्चित रूप से नहीं रहते।

(6) लोक प्रशासन का संगठन एक व्यापारिक अथवा निजी संगठन से बहुत ही अधिक जटिल होता है। प्रशासन की प्रत्येक इकाई सम्बन्धित लोक संगठनों के साथ जुड़ी होती है और उस इकाई को सम्बन्धित इकाइयों के साथ कार्य करना होता है। इसके विपरीत, एक निजी संगठन अधिक संक्षेपता, पृथकता और स्वायत्ता के साथ कार्य करता है।

(7) लोक प्रशासन के ऊपर राष्ट्र–निर्माण और भावी समाज को दिशा देने जैसी जिम्मेदारियां हैं। इसलिए यह सामाजिक मूल्यों की स्थापना करने की ओर झुका होता है। व्यापारिक संगठनों को सरकार द्वारा निर्धारित मार्गदर्शन का पालन करना होता है।

1.7 लोक प्रशासन का महत्व

आधुनिक काल में राज्य के कार्यों में बड़ी तेजी के साथ वृद्धि हो रही है। राज्य के कार्यक्षेत्र में इन दिनों वे कार्य भी आ गए हैं जो पहले निजी संगठनों तथा व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न किये जाते थे। अब व्यक्तिगत जीवन नाम की कोई वस्तु नहीं रह गई, क्योंकि जीवन का प्रायः कोई भी क्षेत्र राज्य की क्रियाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह गया है। अतः राज्य के कार्यक्षेत्र की वृद्धि के साथ–साथ प्रशासन का महत्व बढ़ना स्वाभाविक ही है। प्रशासन के द्वारा ही राज्य की इच्छाओं को मूर्त रूप दिया जाता है। राज्य की क्रियाओं की सफलता या असफलता राज्य की नीति को क्रियान्वित करने वाले पदाधिकारियों पर ही निर्भर करती है। वस्तुतः सरकार की योजनाऐं और नीतियां कितनी ही अच्छी क्यों न हों, यदि राज्य का प्रशासकीय ढांचा कुशलता से कार्य नहीं करे, तो वे सारी योजनाऐं और नीतियाँ असफल हो जाएं।

अतः आधुनिक युग में प्रशासन को अत्यधिक महत्व प्राप्त हो गया है। वास्तव में, आधुनिक सभ्यता की उन्नति प्रशासन पर ही निर्भर है। प्रशासन के अभाव में समाज में शान्ति, एकता और स्थिरता बनाए रखना संभव नहीं, जबकि सभ्य समाज की कल्पना इन सबके अभाव में की भी नहीं जा सकती। स्पष्ट है कि प्रशासन की नींव पर ही सभ्यता की रक्षा के लिए उसमें प्रशासन की महत्ता को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

एक विशिष्ट विषय के रूप में लोक प्रशासन के महत्व को इस विषय के संस्थापक वुडरो विल्सन ने अच्छी तरह से स्पष्ट किया था। 1887 में ''प्रशासन का अध्ययन'' शीर्षक से प्रकाशित अपने प्रसिद्ध निबन्ध में उन्होंने सरकारी प्रशासन की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए कहा था कि यह सरकारी काम–काज का ऐसा व्यावहारिक रूप है जिसे ''राजनीति'' की उठा–पटक से अलग रखा जा सकता है। विल्सन ने अध्ययन की दृष्टि से इसको एक स्वायत्त विषय क्षेत्र बनाने पर बल देते हुए कहा थाः

''प्रशासन का एक विज्ञान होना चाहिए जो सरकारी काम–काज को सरल बनाने का प्रयत्न करे, इसके कार्य–संचालन की अव्यवहारिकता को कम करे, इसके संगठन को दृढ़ बनाए और इसके कर्त्तव्यों में कर्त्तव्य–परायणता की भावना पैदा करे।''

लोक प्रशासन के पास न केवल प्रशासन के एक साधन के रूप में बल्कि कल्याणकारी राज्यों के युग में समुदाय के कल्याण को सुरक्षित रखने व बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण तंत्र के रूप में भी स्थान है। इसका लोगों के जीवन पर भी बहुत प्रभाव पड़ा है। यह एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसे महान उद्देश्य के क्रियान्वयन के साथ चार्ज किया गया है।

लोक प्रशासन के क्षेत्र को लोगों के लिए इसका महत्व तथा लोकतंत्र में इसका महत्व तहत् अध्ययन किया जा सकता है।

1.8 व्यवहारिक सम्बन्ध

सरकार को जनता की विविध प्रकार की आवश्यकताओं पर ध्यान देना होता है इसलिए लोक प्रशासन का सबसे पहला उद्देश्य सार्वजनिक कार्यों को दक्षतापूर्वक पूरा करना होता है। लोक प्रशासन एक अलग विषय है और इस अलग विषय के महत्व को पहली बार विल्सन की इस विषय की परिभाषा में स्पष्ट किया गया। विल्सन की परिभाषा में लोक प्रशासन को कुशलता बढ़ाने वाला और व्यावहारिक कार्यक्षेत्र वाला विषय बताया गया है। इस विषय के बारे में उपयुक्त दृष्टिकोण उस समय प्रकट हुआ जब सामाजिक उत्पादकता में वृद्धि और सामाजिक व्यवस्था को नियमित करने तथा सामाजिक–आर्थिक विकास को सुगम बनाने में सरकार की सक्रिय भूमिका की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी।

परम्परागत प्रशासकीय सिद्धान्त का वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ से लगभग तीन दशकों तक लगातार बोलबाला रहा। इसने सरकारी मशीनरी में सुधार पर विशेष जोर दिया, चूंकि आधुनिक प्रशासन के कार्यों में भारी वृद्धि हुई, यह उचित ही था कि प्रशासनिक अक्षमता के कारणों की जांच–पड़ताल की जाए। ब्रिटेन में, हाल्डेन कमेटी रिपोर्ट (1919) तथा संयुक्त राज्य अमरीका में प्रशासकीय प्रबन्ध पर राष्ट्रपति की समिति (1937) उन सरकारी प्रयासों के उदाहरण हैं, जो लोक प्रशासन को कारगर बनाने के लिए किए गए, जिससे कि वह सामाजिक विकास का उपयुक्त माध्यम बन सके। भारत में भी ब्रिटिश शासन काल में तथा स्वतंत्रता के बाद कई समितियां गठित की गईं। इस प्रकार का एक बड़ा प्रयास प्रशासनिक सुधार आयोग 1966 तथा 2006–2007 द्वारा किया गया। प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना लोक प्रशासन को प्रभावी और कुशल सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए एक उपयुक्त एजेन्सी बनाने के उद्देश्य से की गई थी।

लोक प्रशासन के सुधारकों द्वारा इस बात की आलोचना की गई कि प्रशासन ''राजनीति'' पर अत्याधिक निर्भर है। कार्यरत प्रशासकों तथा शिक्षाविदों

द्वारा किए गए अध्ययनों के आधार पर ''प्रशासन विज्ञान'' के रूप में एक नए विश्वास का जन्म हुआ, जिसकी लोक प्रशासन के वैज्ञानिक पुनर्गठन में महत्वपूर्ण व्यावहारिक उपयोगिता रहेगी।

प्रशासन के परम्परागत ''सिद्धान्तों'' की तीव्र आलोचनाओं के बावजूद ये सिद्धान्त कभी भी पूरी तरह से अमान्य नहीं हुए। ये सिद्धान्त प्रशासनिक सुधार की उत्तरकालीन परिष्कृत पद्धतियों एवं तकनीकों के अग्रदूत थे। इन उत्तरकालीन परिष्कृत पद्धतियों एवं तकनीकों के उदाहरण लागत–लाभ विश्लेषण, संक्रियात्मक शोध आदि हैं।

बढ़ती हुई सामाजिक जटिलताओं और अन्तर्राष्ट्रीय तनावों के कारण सभी जगह सरकारों ने धीरे–धीरे अधिकाधिक हस्तक्षेप की नीति अपनाई। व्यापार, वाणिज्य और उद्योगों का विस्तार हुआ तथा नए प्रकार के उत्पादक उद्यम शुरु हुए। उद्योगों के मामले में राज्य के हस्तक्षेप की सामाजिक मांग बढ़ी। निर्धनता, कुपोषण, निरक्षरता तथा अन्य सामाजिक बुराइयां सार्वजनिक नीति का केन्द्रीय विषय बन गई। इस प्रकार हस्तक्षेप न करने वाले राज्य का युग समाप्त हो गया। इसके स्थान पर स्थिर गति से निश्चयात्मक–हस्तक्षेपवादी कल्याणकारी राज्य का उदय हुआ।

सामाजिक विनियमन तथा सामान्य सामाजिक कल्याण में राज्य की बढ़ती हुई दिलचस्पी का मतलब है सरकार कार्यकलापों में राज्य का अधिक से अधिक योगदान। सरकार और प्रशासन के अध्ययन में शैक्षिक रुचि के साथ–साथ राज्य के कार्यों में यह ऐतिहासिक विस्तार हुआ।

जैसा कि लियोनार्ड व्हाईट ने कहा है :–

''व्यापक संदर्भ में, प्रशासन के ध्येय स्वयं राज्य के अन्तिम उद्देश्य ही हैं : अर्थात् शान्ति और व्यवस्था बनाए रखना, न्याय की उत्तरोत्तर प्राप्ति, युवाओं की शिक्षा, असुरक्षा और बीमारी से संरक्षण, परस्पर विरोधी समूहों तथा हितों में समझौता और समायोजन। संक्षेप में, अच्छे जीवन की प्राप्ति ही प्रशासन का उद्देश्य है।''

जनता की बढ़ती हुई मांगों तथा सरकार से की जाने वाली अपेक्षाओं के साथ–साथ लोक प्रशासन में ''दक्षता'' के प्रति भी जीवन्त रुचि जागृत हुई। सरकारी कार्यों को किस प्रकार से उस पर हुए व्यय की दृष्टि से अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है? सरकार के बजट सम्बन्धी कार्यों को किस प्रकार सरल और कारगर तथा अधिक से अधिक प्रबन्धोन्मुख बनाया जा सकता है? इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि सरकारी मशीनरी में कुशल और प्रेरणायुक्त कर्मचारी समय पर एवं निरन्तर मिलते रहें, क्या किया जा सकता है? अन्ततः सबकी संतुष्टि तथा लोगों की सामान्य मांगों की पूर्ति ही लोक प्रशासन के तर्क–संगत आधार होते हैं। इसलिए प्रशासकीय कार्यों पर समान्य प्रतिक्रियाएं जानने के लिए कौन–से तरीके खोजे जा सकते हैं? लोगों की संतुष्टि को किस प्रकार आंका जा सकता है? इन सबके अलावा, सार्वजनिक नीति–निर्धारण, नीतियों का कार्यान्वयन, नीति के परिणामों को देखना तथा मूल्यांकन करना ये ऐसे व्यापक मुद्दे हैं, जिनका सरकारी कामों में निर्णायक महत्व है। हरबर्ट साइमन द्वारा ''निर्णय सिद्धांत'' में प्रारंभिक योगदान के बाद लोक प्रशासन नीति–विज्ञानपरक हो गया है। इससे सरकार में व्यावहारिक नीति–विश्लेषण तथा नीति में सुधार की दृष्टि से इस विषय की उपयोगिता में भारी वृद्धि हुई है। वाई. ड्रॉर और टी.आर. डाई जैसे लेखकों ने लोक प्रशासन के प्रमुख कार्यक्षेत्र के रूप में ''नीति–विश्लेषण'' को काफी समृद्ध बनाया है।

सरकार के इन उद्देश्यों तथा व्यावहारिक आवश्यकताओं से नए विषय के रूप में लोक प्रशासन के शैक्षणिक विकास को बढ़ावा मिला। जैसे–जैसे

निरन्तर शैक्षणिक रुचि से सरकारी काम–काज में सुधार के नए तरीके तथा नई तकनीकें ज्ञात होने लगीं, इस विषय के महत्व को मान्यता मिलती गई। सार्वजनिक समस्याओं को हल करने में लोक प्रशासन की बढ़ती हुई व्यावहारिकता के फलस्वरूप धीरे–धीरे इस विषय को सामाजिक विज्ञानों में यथोचित स्थान प्राप्त हो गया है।

सरकारी कार्यों में वृद्धि और उनकी जटिलता के कारण संगठनात्मक व्यवस्थाओं में नए–नए परिवर्तन हुए हैं। तेजी से बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सरकार भी ऐसे नए संगठनात्मक ढांचों के लिए उत्सुक है जो विशेष परिस्थितियों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। हाल के वर्षों में ''संगठन सिद्धान्त'' ने भी एक सुविकसित विषय का रूप ले लिया है। संगठन के सिद्धान्त अब लोक प्रशासन में शामिल हो गए हैं और अब संगठन सिद्धांतों का प्रशासनिक व्यवस्था की समस्याओं के सम्बन्ध में व्यापक रूप से प्रयोग किया जा रहा है। संगठन सिद्धान्त परिप्रेक्ष्य, अब लोक प्रशासन विषय का एक अभिन्न अंग बन गया है। इसी कारण से सरकार के संगठनात्मक विकास और संरचनात्मक प्रयोग के लिए लोक प्रशासन की उपयोगिता पहले से अधिक हो गई है। इस प्रकार हाल के वर्षों में इस विषय को पर्याप्त सुदृढ़ता प्राप्त हुई है। अब यह सरकारी कार्यों के गठन के ऐसे वैकल्पिक तरीके सुझा सकता है, जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त हो।

व्यवहार विज्ञान के ज्ञान का प्रयोग करने से लोक कार्मिक प्रणाली का अधिक परिष्कृत विश्लेषण भी सुगम हो गया है। अभिप्रेरणा और मनोबल समूह तथा अंतर्समूह व्यवहार और अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों पर हुआ अनुसंधान से ऐसे सम्पन्न सिद्धान्त और विचार विकसित हुए हैं, जिनका प्रयोग आजकल लोक प्रशासन के विश्लेषण के माध्यमों के रूप में किया जा रहा है। प्रशासन में मानवीय तत्व की निर्णायक महत्ता पर जिसकी क्लासिकी मॉडल में बहुत उपेक्षा की गई थी, अब काफी जोर दिया जा रहा है। इस प्रकार लोक कार्मिक प्रबन्ध में लोक प्रशासन का सीधा प्रयोग हो रहा है।

1.8.1 सामाजिक विज्ञान के प्ररिप्रेक्ष्य में

लोक प्रशासन सामाजिक–वैज्ञानिक स्थिति की जांच करेंगे, जो लोक प्रशासन का उतना ही महत्वपूर्ण पक्ष है। आज के युग में सरकार जीवन के लगभग सभी पहलुओं से सम्बन्धित जो इसलिए स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित होता है कि सरकार का गठन किस प्रकार होता है और यह किस प्रकार कार्य करती है। लोक प्रशासन सरकार का क्रमबद्ध अध्ययन करता है, सरकार के ढांचे तथा कार्यों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है और इसीलिए सामाजिक विज्ञान के रूप में इस विषय की महत्ता है। अपनी इस भूमिका में लोक प्रशासन केवल समस्याओं का समाधान करने की अपेक्षा वैज्ञानिक कारणों पर अधिक जोर देता है।

इस दृष्टि से प्रशासन को एक सामाजिक कार्य के रूप में देखा जा सकता है। अतः इसके शैक्षणिक अध्ययन का उद्देश्य सरकारी नीतियों और उसके कार्यों का समाज पर जो प्रभाव पड़ता है, उसको समझना होता है। नीतियां किस प्रकार के समाज की परिकल्पना करती हैं? प्रशासकीय कार्य किस सीमा तक ''वर्ग'' पर आधारित है? दूसरे शब्दों में लोक प्रशासन कितना सार्वजनिक है? सामाजिक संरचना, अर्थव्यवस्था और राज्य–व्यवस्था पर सरकारी कार्यों का तुरन्त तथा दीर्घकालीन प्रभाव क्या है? एक विषय के रूप में लोक प्रशासन को सामाजिक विज्ञान के इस परिप्रेक्ष्य में दूसरे सहयोगी विषयों जैसे इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि से सहायता लेनी पड़ती है। इस

सहायता का उद्देश्य यही है कि विषय–वस्तु को समझाया जा सके, न कि केवल इसे निर्धारित किया जाए।

1.8.2 तीसरी दुनिया के परिप्रेक्ष्य में

''विकासशील देशों'' में लोक प्रशासन की विशेष स्थिति को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। औपनिवेशिक युग की समाप्ति के बाद ''तीसरी दुनिया'' के देशों ने सभी जगह तीव्र गति से सामाजिक–आर्थिक विकास प्रारम्भ किया है। यह स्वाभाविक ही है कि इन देशों को तेजी से अपने विकास के लिए सरकार पर निर्भर होना होता है। इसका अर्थ है कि उत्पादकता शीघ्र बढ़ाने के लिए लोक प्रशासन को सुगठित और क्रियाशील बनाया जाना चाहिए। इसी प्रकार सामाजिक कल्याण के कार्यों को भी दक्षतापूर्वक और प्रभावी ढंग से पूरा करना होता है। सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाबद्ध विकास कार्यो के कारण ''विकास प्रशासन'' नामक एक नए विषय की उत्पत्ति हुई है। अनेक देशों में किए गए अध्ययनों पर आधारित ''विकास प्रशासन'' का उदय अत्यधिक उपयोगी क्षेत्र के रूप में हुआ है और विकासशील देशों की विशिष्ट परिस्थितियों में इसकी बड़ी व्यावहारिक उपयोगिता है। तीसरी दुनिया के प्रशासन का अध्ययन किस प्रकार किया जाए तथा साथ ही सरकारी हस्तक्षेप द्वारा किस प्रकार तेजी से सामाजिक–आर्थिक विकास हो, यह जानने के लिए उपयुक्त ज्ञान भण्डार की आवश्यकता अनुभव की जाती रही है। ''विकास प्रशासन'' का उदय उस ज्ञान भंडार की आवश्यकता का सूचक है। तीसरी दुनिया के सभी विकासशील देश राष्ट्र–निर्माण और सामाजिक–आर्थिक पुनर्गठन में सरकार की सक्रिय भूमिका पर निर्भर है। इसलिए विकास की आवश्यकता पूरी करने के लिए ''विकास प्रशासन'' का उदय एक विशिष्ट उप–विषय के रूप में हुआ है। यह इस विषय की एक विशिष्ट शाखा है, जो एक विशेष उद्देश्य के लिए अर्थात् विकास के लिए कार्य करती है।

1.9 नागरिकता की दृष्टि से उदार अध्ययन

लोक प्रशासन की एक बहुत ही सामान्य उपयोगिता है– क्रियाशील नागरिकता में इसका योगदान। लोकतंत्र में यह जरुरी है कि नागरिकों को इस बात की अच्छी जानकारी हो कि सरकार क्या करती है और क्या नहीं। सरकार के बारे में जानकारी होना अच्छी नागरिकता की एक अनिवार्य शर्त है। लोगों को यह जानना ही चाहिए कि सरकार का संगठन क्या है, यह क्या कार्य करती है और ये कार्य वास्तव में किस ढंग से किए जाते हैं। एक विषय के रूप में लोक प्रशासन आम नागरिकों को सरकारी मशीनरी तथा कार्य–पद्धति के विषय में काफी जानकारी दे सकता है।

1.10 लोक प्रशासन के योगदान

प्रत्येक देश में और विशेषकर विकासशील राष्ट्रों में, सरकार की भूमिका में लगातार विस्तार हो रहा है। इससे सरकार के कार्यों के अनेक प्रकार की जांच–पड़ताल को प्रोत्साहन मिला है चूंकि लोकतंत्रीय समाज में सरकार जीवन के लगभग प्रत्येक संभव पहलू को प्रभावित करती है, इसलिए यह आवश्यक है कि नागरिकों को सरकार के बारे में यह जानकारी उपलब्ध हो कि वास्तव में उसका संगठन कैसे होता है और वह किस प्रकार नागरिकों के कल्याण तथा सामाजिक विनियमन के कार्य करती है। इसलिए सामाजिक जीवन में सरकार की बढ़ती हुई भूमिका के साथ लोक प्रशासन का महत्व भी एक बौद्धिक विषय के रूप में बढ़ता रहा है। संगठित सामाजिक जीवन में लोक प्रशासन के पांच

प्रकार के प्रमुख योगदान हैं, जिनमें इस सुविकसित विषय का महत्व निहित है। यह निम्न प्रकार हैः

1- ज्ञान मीमांसात्कम
2- तकनीकी
3- लोकपालिका
4- उदार शिक्षात्मक और
5- व्यावसायिक

1.10.1 ज्ञान मीमांसात्मक

लोक प्रशासन का पहली प्रकार का योगदान यह है कि इसमें सरकार के ढांचे और उसके कार्यों के बारे में एक सही, व्यवस्थित और वैज्ञानिक ज्ञान निर्मित करने की क्षमता होती है। लोक प्रशासन ही एक ऐसा विषय है, जिस पर सरकार के कार्य–कलापों के सभी पहलुओं के अध्ययन की एकमात्र जिम्मेदारी है। इस दायित्व को पूरा करने के लिए इस विषय में यह प्रयास किया जाता है कि विश्वसनीय सूचना तथा आंकड़े इकट्ठे किए जाएं, प्रशासकीय ढांचे और कार्यों का विश्लेषण किया जाए और प्रशासकीय पद्धतियों के बारे में ज्ञान बढ़ाने के लिए व्याख्यात्मक सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया जाए।

1.10.2 तकनीकी

यह इसकी मुख्य भूमिका में ही निहित है। वुडरो विल्सन जैसे पथ–प्रदर्शकों के जमाने से ही लोक प्रशासन के विशेषज्ञों का यह प्रयास रहा है कि ज्ञान का प्रयोग वास्तविक लोक समस्याओं को हल करने में किया जाए। समय के साथ–साथ विश्वसनीय सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए और प्रशासनिक परिस्थितियों के समाधान सम्बन्धी अध्ययन किए गए। इससे इस विषय के विशेषज्ञों की सलाह देने की क्षमता काफी बढ़ गई। अब लोक प्रशासन के विश्लेषकों से यह अपेक्षा करना न्याय संगत हो गया है कि वे प्रशासन की व्यावहारिक समस्याओं को हल करने और सरकार को सलाह देने की भूमिका निभाएं।

1.10.3 लोकपालिका

इस विषय का तीसरे प्रकार का योगदान प्रकाशन के आलोचनात्मक क्षेत्रों के खोजपूर्ण अध्ययनों पर आधारित है। नागरिकों की शिकायत, प्रशासनिक लालफीताशाही और भ्रष्टाचार आदि के मामलों को अध्ययन के लिए व्यापक रूप से आम जनता में परिचालित किया जाता है, जिससे कि सामान्य जनता, प्रेस और विधायिका को उन बातों से परिचित कराया जा सके, जो नौकरशाही में वास्तव में हो रही होती है। इस प्रकार ज्ञान तथा सूचनाओं के व्यापक प्रचालन से लोक प्रशासन के विशेषज्ञ समाज के लिए बहुत ही लाभदायक भूमिका अदा कर सकते हैं।

ऐसी भूमिका कई देशों में स्थापित लोकपालक संस्था द्वारा निभाई जाती है।

1.10.4 उदार शिक्षात्मक

लोक प्रशासन विषय का चौथा महत्वपूर्ण योगदान नागरिकों में जागरुकता पैदा करना है। लोकतंत्र में इस बात की जानकारी सब जगह और

हमेशा पहुंचाते रहना चाहिए कि सरकार और प्रशासन किस प्रकार कार्य करते हैं। इस प्रक्रिया को 'सरकारी–प्रशासन की शिक्षा' की संज्ञा दी जा सकती है। लोक प्रशासन ही सामाजिक विज्ञान का एकमात्र ऐसा विषय है, जो सभी नागरिकों को ''सरकार और प्रशासन'' के बारे में व्यापक शिक्षा देने की भूमिका निभा सकता है।

1.10.5 व्यवसायिक

लोक प्रशासन ने व्यावसायिकवाद के उद्देश्यों की भी पूर्ति की है। सिविल कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने और विद्यार्थियों को कार्यरत, प्रशासकों की व्यावसायिक धारणा में सम्मिलित होने के योग्य बनाने में यह विषय बहुत ही उपयोगी रहा है। लोक प्रशासन के संस्थान और स्कूल 'सार्वजनिक मामलों' तथा 'लोक–नीति विश्लेषण' के व्यावसायिक पाठ्यक्रम तैयार करने में लगे हैं।

1.11 सारांश

हर समाज की अपनी–अपनी राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियां होती हैं। इसी प्रकार से उनकी लोक–प्रशासनिक प्रणालियां भी होती हैं। आज के समाज में लोक प्रशासन अनिवार्य है। इसका क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत है। सरकार द्वारा लोक–हित में किए जाने वाले हर कार्यकलाप इसमें सम्मिलित हैं। निजी प्रशासन और लोक प्रशासन अगर कुछ बातों में समान है तो कुछ में पूर्ण रूप से भिन्न है।

व्यावहारिक समस्याओं और शैक्षणिक प्रश्नों, इन दोनों के कारण इस विषय में बाद में हुई प्रगति से इसका एक स्वायत्त क्षेत्र के रूप में महत्व और बढ़ गया है। आज की दुनिया में सरकारों पर लोक कर्त्तव्यों का भार धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है। अब यह कल्पना करना दिवा स्वप्न जैसा है कि सरकारी हस्तक्षेप न होने के दिन फिर वापस आएंगे। सरकार की निश्चयात्मक–हस्तक्षेपवादी भूमिका की प्रतिक्रियाएं शैक्षिक जगत में स्वतः ही होंगी। इतिहास बताता है कि एक विषय के रूप में लोक प्रशासन का महत्व सरकार की हर तरफ बढ़ती हुई भूमिका के साथ निकट रूप से सम्बन्धित रहा है।

जहां तक ''विकासशील'' अथवा ''तीसरी दुनिया'' के देशों का सम्बन्ध है, एक उप–विषय के रूप में ''विकास प्रशासन'' की विशिष्ट भूमिका है, जो विकास के बारे में व्यवस्थित ज्ञान प्रदान करने के साथ–साथ मूलभूत सामाजिक–आर्थिक पुनर्गठन की दिशा में सरकार के सफल और कारगर हस्तक्षेप में सहायता प्रदान करती है।

1.12 प्रमुख शब्दावली

पूँजीवादी राज्य : ऐसे राज्य जहां पूंजी का स्वामित्व अथवा नियंत्रण निजी हाथों में होता है।

पुलिस राज्य : ऐसा राज्य जहां राजनैतिक स्थिरता पुलिस अधिकारियों और कर्मचारियों पर निर्भर हों और पुलिस को समुचित अधिकार प्राप्त हों।

समाजवादी देशः ऐसा देश जहां उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों पर संपूर्ण समाज का स्वामित्व और नियंत्रण हो।

कल्याणकारी राज्यः ऐसा राज्य जहां जरूरतमंद लोगों अर्थात्, बीमारों, गरीबों और वृद्धों आदि के लिए कानून और प्रशासन के जरिए पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं।

अहस्तक्षेप की नीतिः जिसमें सरकार हस्तक्षेप नहीं करती।

लोकपालिक : लोक अधिकारियों के विरूद्ध व्यक्ति की शिकायतों की जांच।

1.13 बोध प्रश्न

1. यह समझाइये कि सरकार की हस्तक्षेपात्मक भूमिका किस प्रकार बढ़ रही है?
2. विकासशील देशों में लोक प्रशासन का विशेष महत्व क्यों है?

1.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) भाग 1.8.2 देखिए

2) भाग 1.8 देखिए।

1.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. गोलम्बिस्की, रॉबर्ट टी., 1977 पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डेवलपिंग डिसिप्लिन (2 खंड), मरील डेकर, न्यूयार्क।
2. हेनरी, निकोलस, 2012 पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पब्लिक एफेयर्स। अध्याय– I पीएचआई लर्निंग, नई दिल्ली।
3. मोहित भट्टाचार्य, 2015 न्यू हौराइजंस ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. निग्रो, फलिक्स ए और निग्रो, लॉयड जी., 1980 मॉडर्न पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, हार्पर और रो, न्यूयार्क।
5. सेल्फ, पीटर, 1972 एडमिनिस्ट्रेशन थ्योरीज एण्ड पॉलिटिक्स, अध्याय– I जॉर्ज एलेन और निविन लिमिटेड, लंदन।
6. डी. वाल्दो, 1984 द एडमिनिस्ट्रेशन स्टेट, न्यूयॉर्क होल्मस एण्ड मेयर 1984।
7. व्हाइट, एल.डी., 1968 इंट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, यूरेसी पब्लिशिंग होम, नई दिल्ली।

इकाई– 2

लोक प्रशासन एवं अन्य सामाजिक विज्ञान से सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध

2.2.1 राजनीति विज्ञान से सम्बन्ध

2.2.2 समाजशास्त्र से सम्बन्ध

2.2.3 अर्थशास्त्र से सम्बन्ध

2.2.4 इतिहास से सम्बन्ध

2.2.5 विधिशास्त्र से सम्बन्ध

2.4 सारांश

2.5 प्रमुख शब्दावली

2.6 बोध प्रश्न

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

इस अध्याय में हम सामाजिक विज्ञान में लोक प्रशासन के स्थान की विवेचना करेंगे। साथ ही अन्य सामाजिक विज्ञानों, विशेषकर, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास, और विधिशास्त्र से लोक प्रशासन के सम्बन्धों पर भी विचार करेंगे।

अध्याय के निम्न उद्देश्य हैं :

- ज्ञान के एकीकृत स्वरूप को समझना,
- विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में परस्पर सम्बन्धों को जान सकना, तथा
- यह बता सकना कि लोक प्रशासन की संकल्पना तथा समस्याएं राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास और विधिशास्त्र की संकल्पनाओं से किस प्रकार सम्बन्धित है।

2.2 प्रस्तावना

प्राचीन यूनान के प्लेटो और अरस्तू के समय से 18 वीं सदी तक सामाजिक विज्ञानों को अध्ययन का विषय माना जाता रहा है। इसके विभिन्न पहलुओं के विश्लेषण के कारण यह विभिन्न विषयों में बंट गया है। औद्योगिक

क्रान्ति से इनके विकास में तेजी आई, जिससे ऐसे मुद्दे उठे, जिन पर विशेषज्ञों द्वारा अनुसन्धान आवश्यक था। सामाजिक विज्ञान का अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीति विज्ञान, लोक प्रशासन, समाजशास्त्र आदि में व्यापक वर्गीकरण हुआ, किन्तु यह वर्गीकरण सामाजिक घटनाओं द्वारा उपस्थित अनेक समस्याओं को समझने या हल करने में अपर्याप्त सिद्ध हुआ है। इससे एक विषय का विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्टीकरण हो गया। जैसे– अर्थशास्त्र का अनुप्रयुक्त अर्थशास्त्र तथा अर्थमिति आदि में, राजनीति विज्ञान का राजनीतिक समाजशास्त्र, राजनीतिक नृविज्ञान आदि में। इसके फलस्वरूप सामाजिक घटनाओं में सम्मिलित परिप्रेक्ष्य को समझना लगातार कठिन होता चला गया। वास्तव में, सामाजिक विज्ञानों का 21वीं सदी का साहित्य विशिष्टीकरण विस्तार को प्रमाणित करता है, किन्तु अत्यधिक विशिष्टीकरण सामाजिक तथ्य की संपूर्णता को अपेक्षित कर अवास्तविक परिणामों की ओर ले जा सकता है। यह ऐसे ही हैं, जैसे पेड़ों को बचाने के लिए लकड़ी की हानि। इसका कारण यह है कि कोई भी सामाजिक घटना एकाकी और अलग–थलग नहीं होती है। यह देश की आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और सामाजिक व्यवस्थाओं से जुड़ी होती है। किसी सामाजिक विज्ञानों के बीच सम्बन्धों को जानना आवश्यक है। उद्देश्य यह है कि हम न केवल सामाजिक घटनाओं की प्रकृति को समझ सकें, बल्कि यह भी जान सकें कि क्या सामाजिक विज्ञान को विज्ञान के रूप में माना जा सकता है, तथा सामाजिक विज्ञान के रूप में लोक प्रशासन की विशेषताऐं क्या हैं। यह दूसरे सामाजिक विज्ञानों से किस प्रकार से सम्बन्धित है। वस्तुतः किसी भी सामाजिक घटना का अध्ययन अन्य घटनाओं के संदर्भ से अलग रखकर नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए आरक्षण की नीति को ही लें। काफी लोग इसका समर्थन करते हैं, उतनी ही संख्या में लोग इसका विरोध भी करते हैं। यदि हम इसे केवल आरक्षण का प्रतिशत घटाने या बढ़ाने की नीति के रूप में लें तो हमें कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। हमें इसके मूल कारण पर विचार करना होगा और यह मूल कारण भारतीय समाज के ऐतिहासिक विकास का नतीजा है। इसका अर्थ है कि हमें आरक्षण नीति के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं का विश्लेषण करना होगा ताकि आरक्षण नीति इस प्रकार बनाई जा सके, जिससे सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त हो सके और राष्ट्रीय प्रगति भी सुनिश्चित हो सके। इसी प्रकार, सरकारी कार्यालयों में बढ़ती हुई अकुशलता की समस्या के सम्बन्ध में शिक्षा की नीतियों द्वारा भर्ती की नीति से लेकर ''उपलब्धि'' की प्रेरणा के अभाव तक की संपूर्ण नीतियों पर ध्यान देना होगा। आप यह जान सकेंगे कि इसके क्या कारण हैं? यदि हम अकुशलता को कार्यालयों में अनुशासन का मामला मानकर चलेंगे तो अकुशलता की समस्या को हल नहीं कर सकेंगे।

सामाजिक विज्ञान के रूप में लोक प्रशासन

लगभग सभी सामाजिक विज्ञानों के समक्ष एक समस्या यह है कि उनमें विज्ञान के कुछ महत्वपूर्ण लक्षणों का अभाव है। ''विज्ञान'' के मुख्य लक्षण हैः (अ) यथार्थता (ब) वैधता और (स) भविष्य कथन की क्षमता। विज्ञानों के नियम होते हैं, जिन्हें सत्यापित किया जा सकता है। विज्ञान एक व्यवस्थित पद्धति का पालन करते हैं। यह पद्धति अवलोकन, खोज, प्रयोग, परिकल्पना का निर्माण, तथ्यों द्वारा परिकल्पना का सत्यापन, सारणीकरण, तथ्यों का वर्गीकरण तथा सह–सम्बन्ध आदि को है जिससे वे निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, जिन्हें सामान्य नियम का रूप दिया जा सके। इस वैज्ञानिक पद्धति से यथार्थता, सर्वव्यापी वैधता और भविष्य कथन की क्षमता सुनिश्चित होती है।

महान यूनानी दार्शनिक अरस्तू का मत है कि कला क्रियात्मक है और विज्ञान भावात्मक, कुछ करना कला है और कुछ जानना विज्ञान है। यदि विज्ञान व्यवस्थित ज्ञान है तो इसे वैज्ञानिक पद्धति अपना कर ही प्राप्त किया

जा सकता है। प्रारम्भ में ज्ञान को एकाकी तत्व के रूप में देखा जाता था और अध्ययन के विभिन्न विषय इसके विभिन्न आयाम माने जाते थे। बाद में विषय विज्ञानों में वर्गीकृत हो गये जैसे कि भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान और सामाजिक विज्ञान। परन्तु भौतिक घटनाओं से सम्बन्धित भौतिक विज्ञान को जिस अर्थ में यथार्थ या विज्ञान कहा जाता है, उस अर्थ में मानव जाति से सम्बन्धित सामाजिक विज्ञानों को विज्ञान नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि सामाजिक घटनाओं में मनुष्य की प्रमुख भूमिका होती है। और इनका अध्ययन उतनी कठोर यथार्थता से नहीं किया जा सकता है जितनी यथार्थता से भौतिक घटनाओं का अध्ययन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कोई भी सामाजिक विज्ञान उस शुद्ध यथार्थता का दावा नहीं कर सकता जो सही भविष्य कथन करने में समर्थ हो। परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि मानव व्यवहार के बारे में तर्क संगत वैध नियम विकसित करना असंभव है। मनोविज्ञान में सिगमंड–फ्राइड के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सारांश यह है कि भौतिक विज्ञानों में शुद्ध यथार्थता का जो स्तर प्राप्त किया जा सकता है वह सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में संभव नहीं है। सामाजिक विज्ञानों के विपरीत भौतिक विज्ञानों में ''तथ्यों'' को किसी निर्धारित परिवेश या संदर्भ से संबद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती है।

सामाजिक विज्ञानों को विज्ञान माना जाए, इसके लिए सामाजिक विज्ञानों के ऐसे सिद्धान्त होने चाहिए जिनकी सार्वभौमिक प्रयुक्तता तथा सर्वव्यापी वैधता हो। यद्यपि सामाजिक विज्ञान के कुछ विषय ऐसे सिद्धान्त विकसित करने का दावा कर सकते हैं परन्तु सभी विषय ऐसा दावा नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि मानव व्यवहार काफी जटिल होता है और हर स्थिति में उसी सिद्धान्त का प्रयोग कर इस (मानव व्यवहार) की व्याख्या करना कठिन है। उदाहरण के लिए कोई भी राजनीति वैज्ञानिक किन्हीं राजनैतिक घटनाओं का एक निश्चित कारण प्रस्तुत नहीं कर सकता है। इससे आपको यह नहीं मान लेना चाहिए कि सामाजिक विज्ञानों के किसी विषय में कोई सिद्धान्त नहीं है। हालांकि सभी सामाजिक विज्ञानों में ऐसे सिद्धान्त नहीं हैं जो यथार्थता, सर्वव्यापी वैधता तथा भविष्य कथन की क्षमता के मानदण्डों की कसौटी पर पूरे खरे उतरें। सामाजिक विज्ञानों द्वारा अब उन वैज्ञानिक पद्धतियों को ग्रहण किया जा रहा है जिनका प्रयोग सही नतीजे प्राप्त करने के लिए किया जाता है। व्यवहारवादी आन्दोलन ने मानव व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए प्रयोगाश्रित (इम्पीरिकल) तकनीकों के व्यापक प्रयोग का आह्वान किया है जिससे बहु–विषयक अध्ययन संभव हुआ है।

लोक प्रशासन मानव समाज के कुछ पहलुओं से सम्बन्धित है। विभिन्न सार्वजनिक संगठनों से अलग–अलग ढंग से जनसाधारण की सेवा की अपेक्षा की जाती है। प्रशासन के कार्य–कलापों का किस सीमा तक जनता से सम्बन्ध होता है उस सीमा तक लोक प्रशासन को सामाजिक विज्ञान कहा जा सकता है। लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान है और इसकी अपनी तकनीकें हैं, परिकल्पनाएं और मान्यताऐं हैं तथा सिद्धान्त की समस्याऐं हैं। लोक प्रशासन अन्य भौतिक, मनोवैज्ञानिक विज्ञानों से उपलब्ध ज्ञान के एकीकरण से प्रमुख रूप से सम्बन्धित है। लोक प्रशासन प्रयोगीकरण पद्धति की अपेक्षा अवलोकन पद्धति पर अधिक आश्रित है। यद्यपि लोक प्रशासन के मामले में प्रयोगशाला में प्रयोग करना संभव नहीं है, व्यवहारवाद के अभ्युदय से यह भी संभव हो गया है।

लोक प्रशासन यथार्थवादी तथा आदर्शवादी दोनों हैं। ''क्या है''? और ''क्या होना चाहिए''? ये दोनों प्रश्न लोक प्रशासन में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने राजनैतिक सिद्धान्त में लोक प्रशासन सिद्धान्त निर्माण के विभिन्न चरणों से गुजरता है। दूसरे शब्दों में यह विषय अपना स्वरूप धारण कर रहा है।

2.3 लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध

सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलू होते हैं जिसका अध्ययन विभिन्न सामाजिक विज्ञानों द्वारा किया जाता है। इन सामाजिक विज्ञानों में राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, विधिशास्त्र इत्यादि आते हैं। इन सभी सामाजिक विज्ञानों का लक्ष्य मनुष्य तथा समाज का अध्ययन करना है। इसलिए इनमें पारस्परिक सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। अतः निरपेक्ष रूप से किसी सामाजिक विज्ञान का अध्ययन नहीं किया जा सकता है। लोक प्रशासन भी एक सामाजिक विज्ञान है। अतः इसकी पूर्ण जानकारी हेतु इसका अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध का ज्ञान आवश्यकीय है। सिजविक के शब्दों में, ''यदि हमें किसी विषय या विज्ञान की खोज करनी है तो यह अत्यन्त लाभदायक होगा कि हम उस विषय या विज्ञान ने अन्य विज्ञानों से क्या लिया है और उसने अन्य विषयों को क्या दिया है।''

2.3.1 राजनीति विज्ञान से सम्बन्ध

राजनीति विज्ञान और लोक प्रशासन का एक अनूठा सम्बन्ध है जो सामाजिक विज्ञानों के सभी सम्बन्धों में अपना अलग स्थान रखता है। एक समाज वैज्ञानिक के अनुसार राजनीति विज्ञान ''मूल्यों के सत्तावादी निर्धारण'' के अध्ययन से सम्बन्धित है। यह व्यक्ति और राज्य के सम्बन्धों पर केन्द्रित है। यह उन प्रश्नों को हल करता है जो राज्य की उत्पत्ति और राज्य की प्रकृति से सम्बन्धित है। साथ ही यह उन संस्थाओं पर भी विचार करता है जिनके माध्यम से समाज के सदस्य अधिकार का प्रयोग करते हैं। काफी समय तक लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान का ही एक भाग माना जाता रहा है। लगभग 130 वर्ष पूर्व वुडरो विल्सन ने लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से अलग करने का आह्वान इस आधार पर किया कि ''प्रशासन का क्षेत्र कारोबार का क्षेत्र है।'' लोक प्रशासन और राजनीति विज्ञान के अलगाव के एक अन्य समर्थक, फ्रेंक गुडनों ने, वुडरो विल्सन का अनुगमन करते हुए यह मत व्यक्त किया कि चूंकि प्रशासन का अधिकांश भाग राजनीति से सीधे सम्बन्धित नहीं है, इसे राजनैतिक दलों के नियंत्रण से अलग किए जाने की आवश्यकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका का लेखक वर्ग उपुर्यक्त तर्क से अत्यधिक प्रभावित हुआ। इस लेखक वर्ग ने उस ''इनामी पद्धति'' की बुराइयां दूर करने की आवश्यकता पर बल दिया जिसके अनुसार सत्ता में आने वाला राजनैतिक दल प्रशासन चलाने के लिए अपने पूर्ववर्ती द्वारा नियुक्त अधिकारियों के स्थान पर अपने चुने अधिकारियों को नियुक्त करता है। तथापि, लोक प्रशासन का 130 वर्ष का इतिहास उन गम्भीर प्रतिबन्धों को उजागर करता है जो एक स्वतंत्र विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास को प्रभावित करते हैं। अतएव यह कोई आश्चर्य नहीं है कि लोक प्रशासन के समकालीन सिद्धान्तवादी लोक प्रशासन के जनक राजनीति विज्ञान के साथ इसके पुनः एकीकरण का समर्थन करते हैं।

हम जानते हैं कि प्रत्येक देश की राजनैतिक व्यवस्था उसकी प्रशासकीय व्यवस्था से जुड़ी होती है। देश की राजनैतिक व्यवस्था ही प्रशासकीय व्यवस्था का सृजन करती है। पारम्परिक रूप से कहा जाए तो राजनीति विज्ञान नीति–निर्माण से सम्बन्ध रखती है और नीतियों का क्रियान्वयन प्रशासकों पर छोड़ दिया जाता है, पर यह कहना सरल है, करना बहुत कठिन है। फिर यह भी ध्यान देने की बात है कि नीतियों के निर्माण में भी प्रशासन महत्वूपर्ण भूमिका अदा करता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजनैतिक व्यवस्था और प्रशासन दोनों एक दूसरे को इस सीमा तक प्रभावित करते हैं कि कभी–कभी किसी प्रकरण में इनकी अलग–अलग भूमिका

निर्धारण करना कठिन होता है। भारत जैसी संसदीय सरकार में जहां राजनैतिक नेता के रूप में मंत्री तथा मंत्रिपरिषद के सदस्य नीति–निर्माण के सहभागी होते हैं वहीं मंत्रालय अथवा विभाग के उच्चतम अधिकारी को निर्णय लेने की प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाता है। यद्यपि शासकीय सेवकों का कार्य नीति–निर्णयों का क्रियान्वयन करना है तथापि वरिष्ठ प्रशासक मंत्री को आवश्यक आंकड़े, जानकारी तथा सलाह देकर नीति–निर्माण से संलग्न हो जाते हैं। कुछ लेखकों द्वारा इंगित किया गया है किसी भी देश के प्रशासक की प्रकृति और स्वरूप उस देश की राजनैतिक व्यवस्था से प्रभावित होते हैं। यदि यह दृष्टिकोण मान्य है तो यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या कोई भी व्यक्ति राजनैतिक व्यवस्था को समझे बिना प्रशासनिक व्यवस्था समझ सकता है। उदाहरण के लिए लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में नौकरशाही (अथवा प्रशासनिक व्यवस्था) से आशा की जाती है कि वह अपने राजनैतिक स्वामी के आदेशों का पालन करें। ऐसी स्थिति में वेबर द्वारा प्रतिपादित नौकरशाही की तटस्थता की अवधारणा सही नहीं रहती है। (मैक्स वेबर) एक जर्मन समाज शास्त्री थे और उन्हें ''नौकरशाही के प्रकारों'' पर प्रामाणिक विशेषज्ञ माना जाता है।

अधिकतर विकासशील देशों में प्रशासन को परिवर्तन का एक शक्तिशाली अभिकर्ता (एजेन्ट) माना जाता है परन्तु ऐसे देशों में राज्य का स्वरूप ही निर्धनता, असमानता और अन्याय का मूल कारण होता है। ऐसे मामलों में हमें सम्बन्धित देश में लोक प्रशासन की भूमिका का विश्लेषण करने के पूर्व उस देश में प्रचलित राजनैतिक व्यवस्था का अध्ययन करना होगा। इस प्रकार कुछ आलोचकों के अनुसार लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से अलग करने से हम लोक प्रशासन के लिए अपेक्षित ''राजनैतिक दृष्टिकोण'' नहीं अपना सकेंगे। उदाहरण के लिए भारतीय राजनैतिक व्यवस्था का अध्ययन, भारतीय प्रशासकीय व्यवस्था का ऐतिहासिक विकास, संविधान सभा में हुए वाद–विवाद और आधारभूत संवैधानिक कानून सभी राजनीति विज्ञान के विषय हैं और केवल यही सब इस देश के लोक प्रशासन के कार्यों तथा पद्धतियों के लिए अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। वास्तव में अध्ययन के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जैसे लोकनीति, तुलनात्मक संविधान और स्थानीय शासन, जो राजनीति विज्ञान और लोक प्रशासन दोनों के लिए हैं। फिर सरकार को एक ऐसी सतत् एकीकृत पद्धति माना जाता है जिसके विभिन्न कार्य हैं– विधायिका, कार्यपालिका तथा प्रशासन। इस दृष्टि से लोक प्रशासन का कार्य क्षेत्र स्थायी प्रणाली न होकर एक ऐसी गतिशील प्रणाली है जिसमें पर्याप्त स्वविवेक निहित है। इसलिए प्रशासन के अध्ययन का प्रमुख ध्यान केवल नीति–निर्माण पर नहीं है, बल्कि राजनैतिक दलों, दबाव डालने वाले समूहों और जनमत आदि पर भी है। लोक प्रशासन के शोधकर्ताओं ने राजनीति विज्ञान की पद्धतियों और तकनीकों को व्यापक रूप से ग्रहण किया है। राजनीति और प्रशासन का सम्बन्ध इतना निकट है कि इन्हें एक ही सिक्के के दो पहलू माना जा सकता है। प्रशासन अधिकाधिक कुशल एवं लोकहितकारी तथा उत्तरदायी कैसे हो इन सब बातों का अध्ययन राजनीति विज्ञान में किया जाता है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि–

(1) राजनीति और प्रशासन की सफलता एक–दूसरे के सहयोग पर निर्भर करती है। वास्तव में, प्रशासन की सफलता राजनीति की ही सफलता कही जायेगी। यदि प्रशासन दुर्बल व दूषित होगा तो वह राजनीति के लिए खतरनाक सिद्ध होगा। प्रशासन राजनीति को हमेशा प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, राजनीति द्वारा निर्मित कोई ऐसी नीति जो प्रशासनिक अनुभव पर आधारित नहीं है, भयंकर परिणामों को जन्म देगी। अनुभवी प्रशासनिक अधिकारियों के मत की अवहेलना

नीति–निर्माण के समय नहीं की जा सकती है। उनके सहयोग से ही उचित नीति का निर्माण सम्भव है और साथ ही नीति का कुशलतापूर्वक कार्यान्वयन भी सम्भव है। इस प्रकार, राजनीति का स्वरूप लोक प्रशासकों द्वारा निश्चित किया जाता है।

(2) जिस तरह राजनीति प्रशासन से प्रभावित होती है, उसी प्रकार प्रशासन भी राजनीति से प्रभावित होता है। प्रशासकीय कर्मचारी शासन–विधान के स्वरूप की अवहेलना करके अपने स्वतंत्र सिद्धान्तों पर आचरण नहीं कर सकते। वास्तव में, राजनीतिक व्यवस्था ही देश के प्रशासन के लिए उचित धरातल प्रस्तुत करती है। प्रशासन के अराजनीतिक दृष्टिकोण से तो नौकरशाही का जन्म होगा, जो प्रजातंत्र के भविष्य के लिए ठीक नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता इस बात की है कि राजनीति और प्रशासन दोनों क्षेत्रों में स्वस्थ परम्पराएं कायम की जाएं। देश की राजनीति और प्रशासन से प्रभावित होते हुए भी प्रशासन बहुत हद तक अपनी स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता को बनाए रखने में सफल हो सकता है।

(3) संविधान और प्रशासन में भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पढ़े–लिखे और योग्य व्यक्ति भी दोनों में अन्तर नहीं कर सकते हैं तथापि लोक प्रशासन के स्वरूप एवं संगठन का निश्चित होना संविधान द्वारा ही होता है।

(4) स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में भी लोक प्रशासन और राजनीति विज्ञान का कार्यक्षेत्र एक–दूसरे के समान है।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के कारण भी राजनीति और प्रशासन में घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया है। आज के इस अन्तर्राष्ट्रीयवाद के युग में लोक प्रशासन का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से भी जुड़ गया है। स्टोन ने ठीक ही कहा है, ''यदि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन विश्व की समस्याओं को हल करने में सफल होते हैं, तो उन सभी समस्याओं को समुचित रूप से संगठित एवं प्रशासित होना चाहिए जिनके द्वारा समझौते की बातचीत चलाई जाती है तथा प्रशासकीय कार्य संचालित होते हैं।''

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन व राजनीति विज्ञान दोनों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों विषयों का विकास एक–दूसरे के सहयोग पर ही निर्भर है। जब तक नीति–निर्धारण का अन्तिम अधिकार राजनीतिज्ञों के पास है, तब तक प्रजातंत्र को भय नहीं है, और जब तक प्रशासन के विशिष्ट ज्ञान को राजनीतिज्ञ स्वीकार करते हैं तब तक प्रशासकों को भी अपने अधिकारों के लिए चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। दोनों के बीच सहयोग की भावना का विकास करना ही उचित है।

अतः राजनीति को लोक प्रशासन से विभक्त करने का विचार एक मिथ्यात्मक आदर्श लगता है।

2.3.2 समाजशास्त्र से सम्बन्ध

समाजशास्त्र सामाजिक ढांचे के वैज्ञानिक अध्ययन से सम्बन्धित है। यह समाज में मानवों के कार्यों के रूपों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। यह अन्य सामाजिक विज्ञानों के पारस्परिक सम्बन्धों का भी अध्ययन करता है। कुछ

लोगों द्वारा इसे अन्य सामाजिक विज्ञानों के सामान्य सिद्धान्तों को एक करने वाला ''उत्कृष्ट विज्ञान या सुपर साइन्स'' कहा जाता है। उपनिवेश के बाद के समाज अभी भी पूरी तरह व्यापक नौकरशाही के चंगुल में हैं। उनमें सभी प्रकार की असमानताऐं विद्यमान हैं। इस कारण ऐसे देशों में नीतियों का और नीतियों के क्रियान्वयन का अध्ययन वर्ग, जाति और सत्ता के व्यापक ढांचे के अन्तर्गत ही किया जाना आवश्यक है। रिग्स और पेस्थस जैसे अमेरिकी विद्वानों ने बहुत ही स्पष्ट रूप से कहा है कि सामाजिक वास्तविकता की विशेषता समाज, राज्य व्यवस्था और इसकी प्रशासकीय व्यवस्था की श्रृंखला से ही ज्ञात होती है और सामाजिक वास्तविकता की प्रकृति ऐसी है कि इसमें कोई विभेद नहीं किया जा सकता है।

जैसा कि हम जानते हैं, प्रशासन समाज का एक अंग है और उसी समाज के संदर्भ में कार्य करता है इसलिए जिस प्रकार समाज लक्ष्यों और विश्वासों की व्यवस्था से सम्बन्धित होता है उसी प्रकार प्रशासन भी इनसे सम्बन्धित होता है। इस प्रकार यह पारस्परिक सम्बद्धता है। प्रशासन का अस्तित्व एक सामाजिक परिवेश में है और प्रशासन का ढांचा सिद्धान्तः समाज से ही निश्चित होता है। साथ ही प्रशासकीय नेतृत्व से समाज भी प्रभावित होता है। समाजशास्त्र का सम्बन्ध समूह के मानवीय व्यवहार से है, विभिन्न प्रकार के समूहों से है, उन तरीकों से है जिनसे कि समूह मनुष्य के कार्यों और मूल प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। प्रशासन एक सहकारी प्रयास है जिसमें बहुत सारे लोग किन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति में लगे होते हैं। स्वयं प्रशासक वर्ग का एक अलग समूह होता है जिसे ''नौकरशाही'' के नाम से जाना जाता है। इस समूह की अपनी पहचान बनी रहती है, पर यह समूह और इसका सामाजिक वातावरण एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। यदि संगठन काफी बड़ा होता है तो उसमें छोटे समूह तथा उपसमूह तक होते हैं। इन छोटे समूहों और उपसमूहों की अपनी निष्ठा, सहानुभूति, विमुखता और नैतिकता होती है, अपना दृष्टिकोण होता है और यह प्रशासकीय तंत्र को प्रभावित करते हैं। समाजशास्त्र समूहों, उनके व्यवहार और सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले उनके तौर–तरीकों की जानकारी लोक प्रशासन को उपलब्ध कराता है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि लोक प्रशासन के क्षेत्र में प्रतिष्ठित माने जाने वाले लेखक मूलतः समाजशास्त्र के विद्वान हैं। नौकरशाही पर मैक्स वेबर के लेख ने लोक प्रशासन के कई अन्य लेखकों को प्रभावित किया है। हैसियत या पदस्थिति वर्ग, सत्ता, व्यवसाय, परिवार आदि पर समाजशास्त्र के कुछ हाल के कार्यों ने महत्वपूर्ण जानकारी दी है और लोक प्रशासन को समाजशास्त्र के लिए सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया है।

प्रशासन के शास्त्रीय सिद्धान्त यह मानते हैं कि मानव व्यवहार स्थिर होता है और इस धारणा पर आधारित प्रशासन की संरचना के महत्व का वर्णन करते हैं। समकालीन सिद्धान्त मानव व्यवहार को गतिशील मानते हैं और इस स्थिति की मीमांसा करते हैं कि किसी विशिष्ट परिस्थिति में प्रशासक द्वारा कोई विशिष्ट निर्णय क्यों लिया गया। इस प्रकार की मीमांसा के दौरान प्रशासकों की सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होगा। प्रशासकों की सामाजिकी समझने के लिए समाजशास्त्र द्वारा विकसित साधनों का उपयोग लोक प्रशासन के विद्वानों द्वारा किया जाता है। इस क्षेत्र में भारतीय प्रशासकों के सामाजिक पृष्ठभूमि पर वी. सुब्रह्मणियम का कार्य उल्लेखनीय है। देश की नौकरशाही की प्रतिरूपता या प्रतिनिधि रूप के अध्ययन में रुचि रखने वालों के लिए लोक प्रशासन और समाजशास्त्र के सम्बन्धों का अध्ययन वांछनीय है। यदि कोई इस दृष्टि के प्रशासकीय ढांचों का अवलोकन करें कि वे समाज के पुनर्निर्माण में लगे हुए हैं तो ज्ञात होता है कि नौकरशाही सामूदायिक कार्यों में संलग्न है।

कई संस्थाओं और विश्वविद्यालयों ने स्नातकोत्तर तथा अन्य पाठ्यक्रमों में सामाजिक प्रशासन का पाठ्यक्रम भी सम्मिलित किया है। टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्सेज जैसी प्रमुख संस्थाएं कल्याणकारी अभिकरणों (वैलफेयर एजेन्सियों) के पदाधिकारियों के लिए मानव जाति विकास जैसे विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करती है। राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान अखिल भारतीय सेवाओं के कार्मिकों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उद्देश्य प्रशासकों को ग्रामीण भारत के समाजशास्त्र से अवगत कराना होता है।

इस प्रकार लोक प्रशासन को समाजशास्त्र पूर्णतः प्रभावित करता है। उसने लोक प्रशासन को एक नया दृष्टिकोण भी प्रदान किया है। यह बात स्पष्ट है कि सामाजिक रीति–रिवाज, जाति, परिवार, वर्ग आदि का प्रभाव अपराधों पर अवश्य पड़ता है और प्रशासन का कार्य अपराधों को रोकना है। अपराधों को रोकने और जेल–व्यवस्था में सुधार के लिए कई योजनाएं बनाई गई हैं जो सामाजिक वातावरण पर ही आधारित हैं। स्पष्ट है कि समाजशास्त्र लोक प्रशासन को प्रभावित किए बिना नहीं रहता है। मैक्स वेबर ने नौकरशाही पर सामाजिक दृष्टिकोण से जिन बातों का उल्लेख किया है, वे लोक प्रशासन के लिए बहुत उपयोगी हैं। लोक प्रशासन का यह मौलिक सिद्धान्त है कि प्रशासकीय कर्मचारी सामाजिक हित के संपादन हेतु सामाजिक कार्यों में अधिक–से–अधिक भाग लें। इस प्रकार दोनों विषय एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं, जिससे उनके बीच सम्बन्धों का स्पष्टीकरण होता है।

2.3.3 अर्थशास्त्र से सम्बन्ध

''अर्थशास्त्र सामाजिक व्यवहार के उन पहलुओं और उन संस्थाओं से सम्बन्धित विज्ञान है जो उत्पादन तथा मानवीय आवश्यकताओं की तुष्टि में पदार्थों तथा सेवाओं के वितरण हेतु सीमित संसाधनों के उपयोग में अन्तर्ग्रस्त है।'' अर्थशास्त्र की इस परिभाषा को सुपरिचित अर्थशास्त्री एल. राबिन्स ने संशोधित किया। राबिन्स ने अर्थशास्त्र की परिभाषा ऐसे विज्ञान के रूप में की है जो मानव व्यवहार का अध्ययन लक्ष्यों तथा वैकल्पिक उपयोग वाले सीमित साधनों के सम्बन्धों के रूप में करता है।

इन परिभाषाओं से यह पता चलता है कि अर्थशास्त्र भी मानव व्यवहार से उतना ही सम्बन्धित है जितने कि अन्य सामाजिक विज्ञान।

18वीं सदी तथा 19वीं सदी में काफी समय तक प्रशासन के मुख्य उद्देश्य व्यवस्था बनाए रखना तथा राजस्व वसूलना था। औद्योगिक क्रान्ति से राज्य की संकल्पना में आमूल परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन जनसमुदाय, विशेषकर मजदूर वर्ग की आवश्यकताओं के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक उत्तरदायी होने की विवशता के कारण हुआ। काम के घंटे और न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने वाले औद्योगिक अधिनियमों से प्रशासन पर बहुत दबाव पड़ा। समाजवादी समाज की स्थापना जैसे लक्ष्यों से विकास में प्रशासन की भूमिका का भी विस्तार हुआ। अभी तक जिन उद्योगों का प्रबन्ध निजी क्षेत्र के हाथ में था वे उद्योग सरकार के सीधे प्रशासन के अधीन आ गए। तेजी से बढ़ता हुआ सरकारी क्षेत्र (अर्थात सीधे सरकार के अधीन उद्योग) अर्थशास्त्र और लोक प्रशासन के बीच सम्बन्ध स्पष्ट करता है। वास्तव में, सरकारी क्षेत्र की बढ़ती हुई भूमिका से तथा अर्थशास्त्र के नियमन में सरकार के सीधे हस्तक्षेप से लोक प्रशासन पर काफी भार पड़ा है।

समाजवादी समाज का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए योजनाओं का माध्यम अपनाया गया है। यदि योजनाओं के कुशल क्रियान्वयन से लक्ष्य प्राप्ति

सुनिश्चित होती है तो प्रशासकों का यह काम है कि वे योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के तरीकों का चयन करें। आज प्रशासकों के जिम्मे रेलवे और बीमा कम्पनियों के प्रबन्ध, बैंकिंग, कृषि से सम्बन्धित समस्याओं का निपटारा आदि है। इसलिए प्रशासकों को देश की आर्थिक समस्याओं को समझना आवश्यक है।

प्राचीन गौरवग्रन्थ ''अर्थशास्त्र'' न केवल प्रशासन की कला पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है बल्कि अर्थशास्त्र का भी संदर्भ ग्रन्थ है। कई अन्य मामलों में यह ग्रन्थ ''अर्थशास्त्र'' लोक प्रशासन और अर्थशास्त्र के निकट सम्बन्धों को इंगित करता है।

लोक प्रशासन और अर्थशास्त्र के सम्बन्धों को निम्नांकित रूप में और स्पष्ट किया जा सकता है–

1. कर–प्रणाली एक आर्थिक प्रश्न के साथ–साथ लोक प्रशासन का भी विषय है।

2. सरकारी बजट का सम्बन्ध भी लोक प्रशासन और अर्थशास्त्र दोनों से है।

3. बहुत से व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण होने लगा है, जो आर्थिक जगत के साथ–साथ लोक प्रशासन को भी प्रभावित कर रहा है।

4. आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन पर पड़ता है और इसके कारण प्रशासकीय व्यवस्था को बदलने की भी आवश्यकता पड़ जाती है।

5. प्रशासन की कार्यक्षमता पर ही राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था निर्भर करती है। वास्तव में प्रशासन का सबसे बड़ा कर्त्तव्य देश में आर्थिक उन्नति को संभव बनाना है। इसी उद्देश्य से राज्य की ओर से आर्थिक योजनाओं का निर्माण होता है। जिसका सम्बन्ध अर्थशास्त्र और लोक प्रशासन दोनों से है। योजनाओं का उद्देश्य ही जनता की आर्थिक उन्नति है और इन योजनाओं को प्रशासन द्वारा ही कार्यान्वित कराया जा सकता है।

6. आज प्रशासक को आर्थिक समस्याओं का समुचित ज्ञान रखना आवश्यक है, क्योंकि प्रशासकीय नीतियों का मूल्यांकन आर्थिक परिणामों को ध्यान में रखते हुए ही किया जाता है। आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव सामान्य नीतियों के निर्धारण तथा कार्यान्वयन पर पड़े बिना नहीं रहता है।

7. सरकारी तथा सार्वजनिक निगम, श्रमिक समस्या, उद्योग–धन्धों की व्यवस्था, मुद्रा इत्यादि का सम्बन्ध अर्थशास्त्र के साथ–साथ लोक प्रशासन से भी है। वास्तव में, इन कामों को संपादित करने के लिए प्रशासन की भी आवश्यकता पड़ती है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि लोक प्रशासन तथा अर्थशास्त्र के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है।

2.3.4 इतिहास से सम्बन्ध

इ.एच. कर के अनुसार– ''इतिहास (इतिहासकारों तथा उनके तथ्यों के मध्य) पारस्परिक सम्बन्ध की सतत प्रक्रिया है, भूत और वर्तमान के मध्य समाप्त न होने वाली वार्ता।''

इतिहास भूतकाल की पूरी जानकारी प्रदान करता है। किसी भी देश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अध्ययन से हम उसकी प्रशासकीय व्यवस्थाओं को समझ सकते हैं। इतिहासकारों ने न केवल युद्धों और शासकों के कार्यों जैसी राजनैतिक घटनाओं को लिपिबद्ध किया है बल्कि प्रशासन का विवरण भी दिया है। उदाहरण के लिए एल. डी. व्हाईट ने अमेरिकी प्रशासन के प्रारम्भिक इतिहास और मध्यकालीन इंग्लैण्ड के प्रशासकीय इतिहास पर अपनी पुस्तकों में उस समय की प्रशासकीय व्यवस्थाओं को समझने के लिए महत्वपूर्ण सामग्री दी है। इतिहास हमें बताता है कि भूतकाल में किस प्रकार प्रशासकीय समस्याएं पैदा हुई और किस प्रकार उनका निराकरण हुआ।

वस्तुतः किसी भी देश के प्रशासन को समुचित रूप से समझने के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। प्रत्येक विषय का ज्ञान इतिहास के ज्ञान के बिना अधूरा है। लोक प्रशासन का ज्ञान पूर्ण तभी हो पाता है, जब हम यह जान जाते हैं कि प्राचीन समय में प्रशासनिक समस्याएं क्या थी और इनको किस प्रकार सुलझाया गया। इस प्रकार इतिहास से हम लोक प्रशासन के लिए उदाहरण और चेतावनी प्राप्त करके इसकी भावी रूपरेखा तैयार कर सकते हैं।

यद्यपि इतिहासकारों ने प्रशासकीय समस्याओं पर उतना ध्यान नहीं दिया तथापि कुछ लेखकों की पुस्तकों में प्रशासन की झलक मिलती है। उदाहरण के लिए, अबुल फजल द्वारा रचित 'आईना–ए–अकबरी' और 'अकबरनामा' प्राचीन प्रशासक की झलक प्रस्तुत करते हैं। उसी तरह आधुनिक लेखक डॉ. जदुनाथ सरकार ने 'मुगल प्रशासन' और डॉ. परमात्माशरण ने 'मुगलकाल में प्रांतीय शासन' में मुगल प्रशासन का वर्णन किया है।

यह महत्वपूर्ण है कि आधुनिक इतिहासकार प्रचलित प्रशासकीय व्यवस्थाओं पर अधिक ध्यान दे रहे हैं। यह लोक प्रशासन जैसे सामाजिक विज्ञानों के लिए बहुत शुभ है क्योंकि इससे बहुत मूल्यवान जानकारी प्राप्त होगी।

2.3.5 विधिशास्त्र से सम्बन्ध

मैलीनास्की के अनुसार कानून ''स्वीकृति प्रतिमान'' है। गुडहर्ट के अनुसार कानून ऐसा कोई भी नियम है, जो समुदाय के अधिकांश सदस्यों द्वारा अनिवार्य रूप से माना जाता है। दूसरे शब्दों में प्रतिमानों के उल्लंघन का सामान्यतया विरोध होता है। कानूनी प्रतिमान में यह संभावना रहती है कि इसे विशेषज्ञ कर्मचारियों द्वारा लागू किया जाएगा। नियमों को लागू करने की शक्ति प्रशासन में निहित होती है। इससे लोक प्रशासन का विधिशास्त्र से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

लोक प्रशासन को देश के कानूनी ढांचे के अन्तर्गत कार्य करना होता है। दूसरे शब्दों में कानून प्रशासकीय कार्य की सीमाएं निर्धारित करता है, हालांकि कानून प्रशासन को पर्याप्त स्वविवेक की अनुमति भी देता है। इन दोनों विषयों में समान विषय प्रशासकीय विधि है। विधायिका कानून (अधिनियम) पारित करती है और प्रशासन को उन्हें लागू करना होता है। प्रशासन की भूमिका केवल कानूनों को अमल करने में लाने तक ही सीमित नही है, प्रशासन कानून निर्माण में भी अपनी भूमिका प्रदान करता है। कानूनों को बनाने, विधायिका के समक्ष प्रस्तुत करने तथा इसे अधिनियमित कराने में सरकारी कर्मचारियों का भी कुछ दखल होता है।

वस्तुतः एक लेखक द्वारा लोक प्रशासन को ''कानून के व्यवस्थित एवं विस्तृत परिपालन'' से सम्बन्धित मशीनरी के रूप में वर्णित किया गया है। लोक प्रशासन और विधिशास्त्र के मध्य सम्बन्ध इतना निकट प्रतीत होता है कि कुछ देशों में लोक प्रशासन का अध्ययन विधिशास्त्र के कुछ पाठ्यक्रमों के भाग के रूप में किया जाता है। प्रत्यायोजित विधि निर्माण प्रशासनिक न्यायाधिकरणों का गठन, कार्य–निष्पादन जैसे कुछ विषय तो विधिशास्त्र तथा लोक प्रशासन दोनों विषयों के विद्यार्थियों द्वारा पढ़े जाते हैं।

प्रशासन के विरुद्ध शिकायतों की जांच करने वाले अधिकारी के भारतीय रूप यथा लोकपाल और लोकायुक्त का अध्ययन लोक प्रशासन के विद्यार्थियों द्वारा जन शिकायतों को दूर करने वाली संस्था के रूप में किया जाता है। इस प्रकार की संस्थाओं का अध्ययन विधिशास्त्र तथा लोक प्रशासन के बीच बढ़ते हुए सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है।

2.4 सारांश

सभी सामाजिक घटनाएं स्वभावतः एकीकृत पाई जाती हैं। कोई भी सामाजिक घटना इसके विभिन्न आयामों को समझे बिना पूर्ण रूप से नहीं समझी जा सकती है। ज्ञान को एक इकाई के रूप में माना जाता है, पर इसके विभिन्न पहलुओं के अध्ययन की आवश्यकता ने विशिष्टीकरण को प्रेरित किया। यद्यपि विशिष्टीकरण की अतिशय वृद्धि से शोध की तीव्र धारा प्रस्पुटित हुई, पर सामाजिक वास्तविकता के प्रति एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाई है। अतएव विभिन्न विषयों के साथ–साथ अन्य विषयों का अध्ययन आवश्यक हो गया है। एक विषय के रूप में लोक प्रशासन लगभग 130 वर्ष पुराना है। कुछ दशातिब्दयों पूर्व यह राजनीति विज्ञान से अलग हुआ। इसका अन्य सामाजिक विज्ञानों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका अभ्युदय राजनीति विज्ञान से अलग हुआ। परन्तु एक स्वतंत्र विषय के रूप में बनाए रखने में कठिनाई हो रही है और इसलिए अब यह और अधिक महसूस किया जा रहा है कि राजनीति विज्ञान से ली गई संकल्पनाओं से लोक प्रशासन को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। लोक प्रशासन समाजशास्त्र से भी सम्बन्धित है। अपने चारों ओर की सामाजिक वास्तविकता को समझे बिना लोक प्रशासन के महत्व को नहीं समझा जा सकता। मैक्स वेबर जैसे समाजशास्त्री के कार्यों ने लोक प्रशासन के सिद्धान्तों और व्यवहारों को प्रभावित किया है। आधुनिक प्रशासक को सामाजिक यंत्री के रूप में जाना जाता है, यही तथ्य लोक प्रशासन और समाजशास्त्र के निकट सम्बन्धों की पुष्टि करता है। योजनाओं के प्रादुर्भाव से लोक प्रशासन तथा अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मजबूत हुआ है।

सुशासन पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ लोक प्रशासन को अपनी संवैधानिक भूमिका निभानी चाहिए। दूसरे शब्दों में लोक प्रशासन की शाासन को सुव्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण भूमिका है।

नीतियों को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने के लिए आजकल के प्रशासक को राज्य व्यवस्था के आर्थिक पहलुओं को जानना ही चाहिए। तीसरी दुनिया के देशों में प्रशासन का केन्द्र बिन्दु निर्धनता का निराकरण करना है। संसाधनों को संघटित करने सम्बन्धी सभी मामलों (कराधान, निर्यात, आयात आदि) का प्रशासन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इतिहास भी एक अन्य विषय है जिससे लोक प्रशासन का निकट का सम्बन्ध है। भूतकाल के बारे में जान कर हम वर्तमान को समझ सकते हैं। विधिशास्त्र और लोक प्रशासन भी निकट से जुड़े हुए हैं। प्रशासन की भूमिका को विधि के व्यवस्थित निष्पादन की मशीनरी के रूप में वर्णित किया गया है। कुछ विषय विधिशास्त्र तथा लोक प्रशासन दोनों में उभयनिष्ठ हैं।

आज जिस रूप में हम लोक प्रशासन का अध्ययन करते हैं, वह कुछ विकासात्मक प्रक्रियाओं की उपज है। इसका अर्थ यह है कि हमें उन कारकों का अध्ययन और विश्लेषण करना होगा, जिनका हाल ही के वर्षों में, लोक प्रशासन के विकास में योगदान है। इसकी सही प्रकृति और इसके कार्यों को विभिन्न समाजों अर्थात् प्राचीन और आधुनिक तथा विकासशील और विकसित समाजों में प्रशासन के स्वरूप की पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है। इसके लिये तुलनात्मक लोक प्रशासन, विकास प्रशासन आदि को समझना जरुरी है। लोक प्रशासन की सही प्रकृति को समझने के लिए यह दलील दी जाती है कि इसका अध्ययन केवल एक साधन या तकनीक के रूप में ही नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उस रूप में किया जाना चाहिए, जिसका सम्बन्ध लोक हित और अंततः लोक–नीति से हो।

2.5 प्रमुख शब्दावली

आदर्शक : प्रचलित व्यवहार की स्थापना करने वाला

औद्योगिक क्रांति : अट्ठारहवीं सदी के उत्तरार्ध तथा उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में ब्रिटेन में हुआ सामाजिक परिवर्तन जिसमें अधिकांश जनसंख्या ने कृषि के स्थान पर उद्योगों को अपना लिया था।

परिकल्पना : ज्ञात तथ्यों पर आधारित कल्पना।

प्रयोगश्रित : सिद्धान्त अथवा मत पर नहीं बल्कि अवलोकन तथा प्रयोग पर आधारित।

दबाव समूह : समान हितों से संगठित (एक ऐसा समूह जिसका सरकार पर अपने हितों के लिए दबाव डालने योग्य पर्याप्त प्रभाव है)

संवैधानिक विधिशस्त्र : कानून की वह शाखा जो संविधान की रचना, सुधार और उस की प्रयुक्ति को शासित करती है।

2.6 बोध प्रश्न

1. (1) सामाजिक घटनाओं के एकीकृत स्वरूप को उदाहरण सहित समझाइये।
2. (1) भौतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों की प्रकृति में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. (1) राजनीति विज्ञान और लोक प्रशासन से सम्बन्ध को उदाहरण सहित समझाइये।
4. (1) ''सामाजिक तंत्र प्रशासकीय तंत्र को प्रभावित करता है''– समीक्षा कीजिए।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) भाग 2.2 देखिए।
2. (1) भाग 2.3 देखिए।

3. (1) उपभाग 2.4.1 देखिए।

4. (1) उपभाग 2.4.2 देखिए।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

निकोलस हैनरी : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पब्लिक अफेयर्स नई दिल्ली। : पीएचआई लर्निंग 2016

मार्क हॉलर एण्ड आर. डब्ल्यू. सेस्टर : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशनः एन इंट्रोडक्शन, (नई दिल्ली। : पीएचआई लर्निंग, 2015

इकाई– 3

लोक प्रशासन का विकास

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय के विकास का अध्ययन क्यों?

3.3 निरंकुशतावादी परम्पराएं

3.4 उदारतावादी लोकतांत्रिक परम्पराएं

3.4.1 राजनीति–प्रशासन द्विभाजनात्मक उपागम

राजनीति और प्रशासन को दो भागों बांटते वाले विचार

3.4.2 संरचनात्मक उपागम

3.4.3 मानवीय संबंधात्मक उपागम

3.4.4 व्यवहारवादी उपागम

3.4.5 विकासात्मक उपागम

3.4.6 लोकनीति उपागम

3.4.7 राजनीतिक अर्थव्यवस्था उपागम

3.5 मार्क्सवादी परम्पराएँ

3.6 सारांश

3.7 प्रमुख शब्दावली

3.8 बोध प्रश्न

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

लोक प्रशासन शैक्षिक जिज्ञासा का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस इकाई का उद्देश्य लोक प्रशासन के विकास को स्पष्ट करना है :

- लोक प्रशासन के विकास के अध्ययन के महत्व का सारांश प्रस्तुत कर सकेंगे तथा इसका मूल्यांकन कर सकेंगे,
- लोक प्रशासन में शैक्षणिक शोध की विभिन्न परम्पराओं में अंतर कर सकेंगे, और
- लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को जान सकेंगे तथा समझा सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम ज्ञान–जिज्ञासा के क्षेत्र के रूप में लोक प्रशासन के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे तथा लोक प्रशासन के विकास की विभिन्न परम्पराओं को भी स्पष्ट करेंगे। हमने लोक प्रशासन के विकास में तीन परम्पराओं अर्थात निरंकुशतावादी, उदार लोकतंत्रात्मक तथा मार्क्सवादी का निर्धारण किया है। यह वर्गीकरण प्रयोग–सिद्ध लक्ष्यों को स्पष्ट करने की अपेक्षा शैक्षिक उद्देश्यों के लिए किया गया है। हमें आशा है कि इस विश्लेषण से विद्यार्थी लोक प्रशासन के विकास को उसके आदर्शवादी अथवा अन्य प्रभावों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे। यह इकाई विद्यार्थी को लोक प्रशासन के सिद्धान्त तथा व्यवहार की विधि परम्पराओं से परिचित कराती है। इस विविधता का मुख्य कारण विभिन्न समाजों के इतिहास, संस्कृति और उनके विकास के स्तरों में विभिन्नता तो है ही, साथ ही साथ समय–समय पर उनको प्रभावित करने वाले आयोग और प्रेरणाएं भी हैं। इन पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व हम लोक प्रशासन के विकास के अध्ययन के महत्व पर संक्षेप में विचार करेंगे।

3.2 विषय के विकास का अध्ययन क्यों?

यद्यपि लोक प्रशासन के विकास के अध्ययन को व्यापक मान्यता मिली है, फिर भी, इसका अध्ययन बहुत ही कम किया गया है। इसका एक संभव कारण यह गलत धारणा है कि हम मुख्यतः वर्तमान से ही सम्बन्धित हैं और वर्तमान के लिए अतीत के विकास को कोई महत्व नहीं देते परन्तु क्या अतीत को वर्तमान से अलग किया जा सकता है? अतीत को समझे बिना वर्तमान को समझना हमारे लिए अधूरा और अपर्याप्त रहेगा।

विकास का तात्पर्य समय के साथ–साथ विषय के क्रमिक विकास को प्रकट करना है। यदि भूत, वर्तमान और भविष्य निरन्तरता का क्रमिक रूप है तो भूत अथवा इतिहास का अध्ययन करना और भी अधिक महत्वपूर्ण है। भूतकाल न केवल वर्तमान का पूर्वाभाव कराता है, बल्कि वह वर्तमान का आधार होता है। ई.एच. कार के शब्दों में इतिहास भूत और वर्तमान के मध्य के सम्बन्धों को निरन्तर बनाये रखता हैं इस अर्थ में इतिहास के अध्ययन की प्रासंगिकता है। वास्तव में विषय के समसामयिक स्तर तथा उसमें निहित मुद्दों को समझने के लिए इतिहास का अध्ययन अनिवार्य है क्योंकि इन मुद्दों की उत्पत्ति भूतकाल के अध्ययन से ही ज्ञात होती है। इस कथन में सच्चाई है कि ''केवल ऐतिहासिक संदर्भ में ही किसी घटना को समझा जा सकता है।'' फिर लोक प्रशासन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं और परम्पराओं का अध्ययन करने से वर्तमान में इस विषय के विकास को समझने में अतीत से ली गई शिक्षा या संकेत चिन्ह सहायक हो सकते हैं। विकास का अध्ययन सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक, दोनों उद्देश्यों की पूर्ति करता है। सैद्धांतिक दृष्टि से यह अध्ययन के विषय को व्यापक संदर्भ में स्थापित करने में सहायक होता है तथा व्यावहारिक दृष्टि से यह अध्ययन भूतकाल के ज्ञान का उपयोग वर्तमान में विषय के विकास को आगे बढ़ाने की क्रिया को सरल बनाता है।

3.3 निरंकुशतावादी परम्पराएं

यहां हम निरंकुशतावादी परम्पराओं की चर्चा करेंगे। निरंकुशतावादी परमपराएं अन्य दोनों उदारतावादी लोकतांत्रिक तथा मार्क्सवादी परम्पराओं की पूर्ववर्ती हैं। निरंकुशतावादी परम्पराएं उस निरंकुश राजतंत्रीय शासन की प्रशासकीय परमपराओं का उल्लेख करती है जिसमें सभी शक्तियां और

अधिकार राजशाही में ही केन्द्रित होते हैं। इस सम्बन्ध में सबसे प्रारम्भिक ग्रन्थ कौटिल्य का ''अर्थशास्त्र'' है। प्राचीन भारत में लोक प्रशासन पर यह ग्रन्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। हम मुख्यतः दो कारणों से अपनी चर्चा भारतीय परम्पराओं तक ही सीमित रख रहे हैं। एक तो यह कि अन्य एशियाई समाजों की निरंकुशतावादी प्रशासकीय परम्पराओं के बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है। दूसरे प्रशासन के विद्यार्थियों को लोक प्रशासन के क्षेत्र में अपनी परम्पराओं से भली–भांति परिचित होना चाहिए।

परम्परा के अनुसार कौटिल्य (जिन्हें चाणक्य तथा विष्णुगुपत के नाम से भी जाना जाता है) मगध (बिहार) में मौर्य राजवंश के संस्थात चन्द्रगुप्त मौर्य (322–398 ई.पू.) के प्रधान मंत्री थे। कौटिल्य के ''अर्थशास्त्र'' दो व्यावहारिक राजनीति की प्राचीन भारतीय पाठ्य पुस्तक माना जा सकता है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह ग्रन्थ महत्ता की दृष्टि से मनुस्मृति तथा कामशास्त्र की श्रेणी में आता है और तत्कालीन सामाजिक दर्शन की तीन मान्यताओं– धर्म, काम और अर्थ की व्यवस्था करने वाले यह तीनों ग्रन्थ मिलकर एक त्रिक बनाते हैं। कौटिल्य के ''अर्थशास्त्र'' में मुख्यतया राज्यतंत्रीय विज्ञान की व्याख्या है और कौटिल्य के अनुसार राज्यतंत्रीय विज्ञान (साइंस पॉलिटी) वित्त शास्त्र (इकोनोमिक्स) तथा दण्डनीति (शासन कला) यानी धन के विज्ञान और सरकार के विज्ञान का संयोजन है। कौटिल्य की धारणा थी कि वित्त सरकार का स्नायुतंत्र होता है तथा सरकार की गतिविधियों में वित्तीय प्रयोजन सर्वोपरि होते हैं। इसलिए उसके ग्रन्थ में प्रशासन की समस्याओं को समझने के लिए राजनैतिक अर्थनीति का मार्ग अपनाया गया है। एच0बी0आर0 आयंगर के शब्दों में ''अर्थशास्त्र'' राज्य के उद्देश्यों तथा उन उद्देश्यों की प्राप्ति के व्यावहारिक साधनों पर एक विशिष्ट तथा कुशल शोध प्रबन्ध है। ''अर्थशास्त्र'' विश्लेषणात्मक तथा सापेक्षिक दोनों प्रकार का दस्तावेज है जिसमें अद्भुत प्रत्यक्षज्ञान तथा छोटी–बड़ी बातों पर पाण्डित्य प्रकट होता है।

कौटिल्य के ''अर्थशस्त्र'' में मुख्यतः लोक प्रशासन विज्ञान के तीन पहलुओं पर चर्चा की गई है यथा लोक प्रशासन के सिद्धान्त, सरकार की मशीनरी और कार्मिकों का प्रबन्ध। प्रशासन के सिद्धान्तों की सुनिश्चित एवं स्पष्ट व्याख्या अर्थशास्त्र में नहीं की गई है। ये सिद्धान्त राजा मंत्रियों आदि के कार्यों, द्वारा इंगित किए गए हैं। अर्थशास्त्र में वर्णित सरकार की मशीनरी भी मुख्यतः राजा तथा मंत्रियों के साथ सम्बन्धों आदि से सम्बन्धित हे। ''अर्थशास्त्र'' में निम्न स्तरीय कर्मचारियों की अपेक्षा उच्च स्तरीय कर्मचारियों की समस्याओं पर अधिक ध्यान किया गया है।

कौटिल्य ने लोक प्रशासन विज्ञान के महत्व का उल्लेख किया है। कौटिल्य के अनुसार प्रशासन की कला को तभी अपना सकता है जब वह लोक प्रशासन के विज्ञान से सुपरिचित हो। इसलिए राजा, युवराज, उच्च धर्माचार्य तथा मंत्रियों को लोक प्रशासन के विज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है। कौटिल्य ने अधिकार, आज्ञापालन तथा अनुशासन के सिद्धान्तों को राज्य के प्रशासन का केन्द्र मानते हुए उन पर बल दिया है वे कार्य विभाजन, श्रेणीबद्ध पदानुक्रम तथा समन्वय जैसे सिद्धान्तों को आंतरिक संगठन की कार्यविधि के लिए महत्वपूर्ण मानते थे। इसके अतिरिक्त संभवतः कौटिल्य ही ऐसे ज्ञात सर्वप्रथम विचारक थे जिन्होंने प्रशासन में सांख्यिकी के महत्व को मान्यता दी।

कौटिल्य ने समाज का सुव्यवस्थित अध्ययन किया और आस्थाओं तथा परम्पराओं पर आधारित प्रचलित विचारों को बिना सोचे समझे नहीं स्वीकारा। प्राचीन हिन्दुओं का मत था कि वेद ही विधिशास्त्र के मूल स्रोत हैं परन्तु कौटिल्य ने विधिशास्त्र के चार स्पष्ट स्रोत बताए यथा पवित्र धर्मग्रन्थ ''अर्थशास्त्र'' में निर्धारित नियम, रीति–रिवाज तथा राजा की राजाज्ञाएं। इनमें भी कौटिल्य ने उपरोक्त क्रम के अनुसार बाद में बातए गए प्रत्येक स्रोत को

उसके पूर्ववर्ती स्रोत से अधिक अधिकारिक माना है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि यदि सांसारिक कानून और धार्मिक कानून में परस्पर विरोध हो तो सांसारिक कानून ही लागू होगा। ''अर्थशास्त्र'' में चिन्तन की दिशा धर्म निरपेक्षता की है और इसमें धर्म के ऊपर राजनीति के प्रभुत्व को मान्यता दी गई है। कौटिल्य के अनुसार धार्मिक प्रयोजनों को राजनैतिक प्रयोजनों से अधिक महत्वपूर्ण नहीं माना जाना चाहिए। कौटिल्य के अनुसार राजा को राज्य को स्थिर और सुदृढ़ बनाए रखना चाहिए तथा नीति अथवा चालबाजी से अपने शक्ति तथा भौतिक संसाधनों में वृद्धि करना चाहिए। इस हेतु कौटिल्य ने जासूसों को भर्ती करने तथा उन्हें प्रशिक्षित करने की विस्तृत व्यवस्था का प्रस्ताव किया है। कौटिल्य के कुछ तर्क वाक्यों को मेकियावलीवाद कहा जाता है। एच0वी0आर0 आयंगर ने तो यहां तक कहा है कि ''कौटिल्य ईमानदार थे और उन्होंने वह सब खुले रूप से कहा है जो आजकल गोपनीयता के संदिग्ध आवरण में छिपा रहता है।

कौटिल्य की ''आदर्श राज्य'' की धारणा एक ऐसे आधुनिक कल्याणकारी राज्य की तरह थी जो एक सर्वशक्ति सम्पन्न राजा के अधीन हो। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह राज्य का दायित्व माना है कि वह बच्चों, महिलाओं, बूढ़ों, कमजोरों तथा विकलांगों का भरण–पोषण करें। उनके अनुसार कृषि फार्म चलाना, कारीगरों की सहायता करना, जनसामान्य के हितों के लिए वन संपदा तथा खनिज संपदा का दोहन करना राज्य के कर्त्तव्य थे। वास्तव में ''कल्याणवाद'' के मूलाधारों की रूपरेखा कौटिल्य के ''अर्थशास्त्र'' में विद्यमान है।

कौटिल्य ने राजा में निहित सुदृढ़ केन्द्रीय सत्ता का समर्थन किया है। एन0आर0 ईनामदार ने इंगित किया है कि ''लोकतांत्रिक लोक प्रशासन के नियामक सिद्धान्त ''अर्थशास्त्र'' में वर्णित राजशाही लोक प्रशासन के सिद्धान्तों से भिन्न है क्योंकि इन दो व्यवस्थाओं में सत्ता की स्थिति तथा स्रोत भिन्न–भिन्न हैं।'' अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासकीय व्यवस्था राजा पर केन्द्रित है, राजा की आज्ञाएं निर्विवाद हैं, उसके हित सर्वोच्च हैं और वह सभी संस्थाओं के अधिकारों का स्रोत है। राजशाही समाप्त होने से अन्य परम्पराओं का उदय हुआ जिनसे लोकतांत्रिक समाजों की प्रशासकीय व्यवस्थाओं को समझा और समझाया जा सकता है। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि ''अर्थशास्त्र'' द्वारा स्थापित लोक प्रशासन की परम्पराएं इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि ये लोक प्रशासन विज्ञान तथा शासन कला के व्यवस्थित विश्लेषण पर जोर देती है।

3.4 उदारतावादी लोकतांत्रिक परम्पराएं

परम्परागत रूप से शोध के अलग क्षेत्र के रूप में लोक प्रशासन के मूल स्रोत, हमें 1887 में प्रकाशित, वुडरो विल्सन के निबन्ध ''प्रशासन का अध्ययन'' में मिलते हैं। लोक प्रशासन के क्षेत्र में व्यवस्थित शोध विल्सन के निबंध से ही प्रारम्भ हुआ। तब से इस विषय का अध्ययन विभिन्न अवस्थाओं से गुजरा और प्रत्येक स्वरूप में इस विषय के विकास की सात अवस्थाएं मानी जाती हैं। हम इन अवस्थाओं में से प्रत्येक का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

3.4.1 राजनीति–प्रशासन द्विभाजनात्मक उपागम

राजनीति और प्रशासन को दो भागों बांटते वाले विचार

आधुनिक लोक प्रशासन के जनक वुडरो विल्सन ने राजनीति और प्रशासन को अलग–अलग प्रणाली माना और अध्ययन के इन दो क्षेत्रों में धारणात्मक आधार पर विभेद करने का प्रयास किया। द्विभाजनात्मक दृष्टिकोण

के एक अन्य प्रतिपादक फ्रेंक गुडनो द्वारा भी इसी प्रकार का प्रयास किया गया। फ्रेंक गुडनों का मत था कि ''राजनीति का संबंध इन नीतियों अथवा अभिव्यक्तियों से है जबकि प्रशासन का संबंध इन नीतियों के क्रियावयन से है। ''यह विभेद नीति के निर्माण तथा नीति के क्रियान्वयन में किया जाता है। नीति–निर्माण को राजनीति का क्षेत्र तथा नीति क्रियान्वयन को लोक प्रशासन का क्षेत्र माना जाता है।

इसके अतिरिक्त राजनीति और लोक प्रशासन में उनके संस्थागत स्थानीयकरण के आधार पर भी विभेद किया जाता है। राजनीति का स्थान विधायिका तथा सरकार के उच्च स्तरों में माना जाता है जहां मुख्य नीति–निर्णय लिए जाते हैं और मूल्य निर्धारण के बड़े प्रश्न सुलझाए जाते हैं। दूसरी ओर प्रशासन का स्थान सरकार की कार्यकारी शाखा–नौकरशाही में माना जाता है। यह तर्क दिया गया कि प्रशासन की प्रक्रिया में असंदिग्ध नियमितता तथा निश्चितता है और इन पर सफल शोध किया जा सकता है। इस प्रकार प्रशासन के विज्ञान को विकसित करना संभव है।

3.4.2 संरचनात्मक उपागम

इस उपागम या दृष्टिकोण की प्रवृत्ति राजनीति और प्रशासन के द्विभाजन को सुदृढ़ करने तथा मूल्य हीन ''प्रबन्ध विज्ञान'' प्रस्तुत करने की है।

इस अवस्था में लोक प्रशासन से लोक प्रक्ष छूट गया और लगभग सारा ध्यान अर्थव्यवस्था तथा कार्यकुशलता पर दिया गया। प्रशासन के नए विज्ञान में ''मूल्य'' के प्रश्नों को महत्वपूर्ण नहीं माना गया। राजनीतिज्ञों द्वारा व्यवहृत राजनीति को अप्रासंगिक समझा गया। अब प्रशासन के कार्यों को कुशलतापूर्वक संभालने के लिए वैज्ञानिक प्रबंध पर ध्यान केन्द्रित किया गया। क्रियाशील प्रशासकों के लिए तैयार साधनों के ऐसे क्रिया विधिक पहलू पर बल देने में एकजुट हो गए, जिस पर राजनीतिज्ञों को पसन्द और मानवीय असफलताओं का कोई प्रभाव न हो।

इस दृष्टिकोण ने संगठनात्मक संरचना पर जोर दिया। संरचना एक ऐसी युक्ति है जिसके माध्यम के संगठन में कार्यरत लोगों को कार्य सौंपा जाता है और ये लोग एक दूसरे से सम्बद्ध रहते है। ऐसा माना जाता है कि संगठन की प्रभावशीलता उस संरचना पर निर्भर होती है, जिसका निर्माण और संचालन जनसमूह करते हैं। संरचनात्मक (अभिगम) उपागम सिद्धान्तों में अस्पष्टता, वैज्ञानिक वैधता का अभाव और मानवीय समस्याओं के प्रति इसके मशीनी रवैये के कारण इसकी आलोचना की गई थी।

3.4.3 मानवीय संबंधात्मक उपागम

हॉथोर्न के प्रयोगों ने एक ऐसे आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया जिसे प्रबन्ध विज्ञान के क्षेत्र में मानवीय संबंधात्मक उपागम की संज्ञा दी। लोक प्रशासन पर इसका प्रभाव पहले की अपेक्षा युद्ध के बाद के काल में व्यापक रूप से महसूस किया गया। संगठनात्मक विश्लेषण के दृष्टिकोण ने संगठन में कार्य समूहों की रचना और उनका प्रभाव, औपचारिक ढांचे में अनौपचारिक संगठन की प्रबलता, नेतृत्व के प्रभाव की भूमिका तथा संगठनात्मक व्याख्या में समूहों के बीच सहयोग और संघर्ष की ओर ध्यान आकर्षित किया। संक्षेप में मानवीय संबंधात्मक उपागम ने ''वैज्ञानिक प्रबन्ध'' की विचारधारा में संगठन की मशीनरी अवधारणा की सीमांए स्पष्ट की। इसने कार्यस्थिति के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों की ओर ध्यान आकर्षित कर ''उपक्रय के मानवीय पक्ष'' के महत्व को उजागर किया।

सामाजिक–मनोवैज्ञानिकों ने मानवीय घटकों की संवेदनशीलता के बारे में अतिरिक्त जानाकरी प्राप्त कर मानवीय संबंधवादियों की अभिरूचियों को व्यापक आधार प्रदान किया है। इसका लक्ष्य (1) महत्तर संगठनात्मक उत्पादकता अथवा सार्थकता तथा (2) महत्तर मानवीय सुख शान्ति और बढ़ा हुआ आत्मविश्वास प्राप्त करना है। इस मार्ग की वकालत करने वाले प्रमुख लेखकों में अब्राहम मस्लो, डुग्लस मेकग्रेगर, रेन्सस लिकर्ट तथा क्रिस आरगरिस है।

चालाकी पूर्ण प्रवृत्ति के कारण मानवीय संबंधात्मक दृष्टिकोण की आलोचना की गई। इस पर यह आरोप है कि इस आंदोलन का लक्ष्य उच्चतर उत्पादकता प्राप्त करने के लिए संगठन के सदस्य के साथ चालाकी करके काम निकालना है। संगठन को समझने के लिए संस्थागत तथा सामाजिक तंत्र के परिवर्तनशील तत्वों की अपेक्षा करने के लिए भी इस की आलोचना की जाती है।

3.4.4 व्यवहारवादी उपागम

हरबर्ट साइमन को प्रशासकीय व्यवहार के विचार में पुरातन लोक प्रशासन की समीक्षा की गई है। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस विचार में लोक प्रशासन के वैज्ञानिक विश्लेषण की यथार्थ आवश्यकताएं निश्चित की गई हैं। कुछ पुरातन ''सिद्धान्तों'' के बारे में सायमन का निष्कर्ष यह था कि वे सिद्धान्त अवैज्ञानिक रीति से बनाये गए थे तथा वे कहावत से अधिक और कुछ नहीं थे। साइमन ने राजनीति और प्रशासन के द्विभाजन को अस्वीकार किया और साथ ही साथ नीति–निर्माण तथा साध्य और साधन के संबंधों के अध्ययन के लिए ''तार्किक प्रत्यक्षवाद'' के महत्व को बताया। प्रशासकीय व्यवहार की धारणा ने मनोविज्ञान तथा सामाजिक मनोविज्ञान के व्यवहारवाद के रीति विज्ञान और परिप्रेक्ष्य का चिन्तन करते हुए लोक प्रशासन में वैज्ञानिक कठोरता लागू करने की वकालत की। असली फोकस ''निर्णय'' लेने पर था। सायमन ने जोर देकर कहा कि ''यदि कोई ''सिद्धान्त'' है तो वह यह है कि ''निर्णय लेना'' प्रशासन की जान है और प्रशासकीय सिद्धान्त की शब्दावली विकल्प के मनोविज्ञान तथा तर्कशास्त्र से प्राप्त की जानी चाहिए।

सायमन ने लोक प्रशासन की नई परिभाषा दी और इस विषय को मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा राजनीति विज्ञान से जोड़कर इसके क्षेत्र को व्यापक बना दिया। इस विषय के विकास में सायमन ने दो परस्पर समर्थक विचारधाराओं में घनिष्ठ संबंध स्थापित किया। एक विचारधारा प्रशासन के विरूद्ध विज्ञान के विकास की थी जो सामाजिक मनोविज्ञान में इस विज्ञान की उपयुक्त नींव की आवश्यकता को मानती थी। दूसरी विचारधारा ''मूल्यों'' के व्यापक वर्ग के विकास तथा लोकनीति के लिए विस्तृत विधान बनाने की थी। सायमन के अनुसार दूसरा मार्ग विश्लेषणात्मक दृष्टि से दूरगामी थी। इसका अर्थ पूरे राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के साथ–साथ लोक प्रशासन का आपस में मिल जाना होगा। सायमन को भय था कि इस दूसरे मार्ग से लोक प्रशासन की अपनी पहचान समाप्त हो सकती है। परन्तु सायमन ने लोक प्रशासन विषय के विकास और वृद्धि के लिए दोनों विचारधाराओं के सहअस्तित्व का समर्थन किया। उनका कहना था कि ''ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता जिससे लोक प्रशासन के क्षेत्र में इन दोनों का विकास साथ–साथ न चल सके, क्योंकि उनमें परस्पर कोई विरोध या संघर्ष नहीं है, परन्तु इस क्षेत्र में कार्य करने वालों को यह स्पष्ट रूप से ध्यान में रखना चाहिए कि वे, किसी एक समय में, किस क्षेत्र में कार्य करना चाहते हैं।''

3.4.5 विकासात्मक उपागम

तीसरी दुनिया के अभ्युदय और प्रशासन के अध्ययन के प्रति संगठन के अधिकांश पाश्चात्य सिद्धान्तों की अप्रासंगिकता के बोध के परिणामस्वरूप लोक प्रशासन के अध्ययन का पारिस्थितिक उपागम प्रारम्भ हुआ। राबर्ट डहल के शब्दों में ''लोक प्रशासन के अध्ययन को अनिवार्यतः और अधिक व्यापक आधार वाला विषय होना चाहिए, केवल तकनीकों एवं विधियों की संकुचित परिभाषा वाले ज्ञान पर आधारित न रह कर इसे घटते–बढ़ते (परिवर्ती) ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और अन्य अनुकूलक घटकों तक विस्तृत होना चाहिए।'' इस सुझाव को एक चुनौती के रूप में लिया गया है और विकासशील देशों में लोक प्रशासन के अध्ययन का प्रयास प्रशासनिक व्यवहार के ऐसे तर्क वाक्य स्थापित करने के लिए किया गया है जो राष्ट्रीय सीमाओं से परे हों। इस तरह के प्रयासों से तुलनात्मक लोक प्रशासन तथा विकासात्मक प्रशासन का उदय हुआ है।

3.4.6 लोकनीति उपागम

सामाजिक यांत्रिकी के प्रति सामाजिक विज्ञानों की अभिरूचि के फलस्वरूप लोकनीति पर बल दिया जाने लगा। लोक प्रशासन का अध्ययन लोकनीति के परिप्रेक्ष्य से भी प्रभावित हुआ है। राजनीति–प्रशासन द्विभाजन के छोड़ देने से लोकनीति का दृष्टिकोण प्रशासनिक विश्लेषण के अनुकूल हो गया।

प्रशासन की व्यावहारिक दुनिया से मिले साक्ष्य ने राजनीति और प्रशासन के निकट के अन्तः सम्बन्धों को स्पष्ट कर दिया हैं जैसे–जैसे सरकारें अधिकाधिक कल्याणकारी कार्यक्रम बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने का प्रयास करती हैं, लोक प्रशासन में नीतिगत अध्ययन को प्रोत्साहन देने पर जोर दिया जाता है। इसमें कोई शक नहीं कि इस स्थिति में लोक प्रशासन के अध्ययन की सामाजिक प्रासंगिकता बढ़ी है, परन्तु वर्णनात्मक अध्ययन के रूप में इसकी सीमाएं अब वैसी स्पष्ट पहचान वाली नहीं हैं, जैसी वे राजनीति–प्रशासन द्विभाजन के पुराने जमाने में थी। लोक प्रशासन के कई विश्लेषकों का तो यह विचार है कि विषय की खोज और यथार्थता तो मिली, परन्तु इसे अपनी विविधता और सामर्थ्य का संकट भी झेलना पड़ा है।

3.4.7 राजनीतिक अर्थव्यवस्था उपागम

प्रशासनिक समस्याओं के विश्लेषण में राजनीति अर्थशास्त्र उपागम अपनाए जाने से लोक प्रशासन का अध्ययन एक कदम और आगे बढ़ा है। ऐसा सैद्धान्तिक सामंजस्य और श्रेष्ठ नीति–निर्देशक के हित में राजनति विज्ञान और अर्थशास्त्र के बीच निकटता स्थापित किए जाने के कारण हुआ है। एन्थनी डाउन्स और गार्डन टुलाक जैसे अर्थशास्त्री तो आर्थिक पद्धतियों और आदर्शों को राजनैतिक समस्याओं पर लागू करने का प्रयोग करके इस सीमा से आगे बढ़ गए। इस प्रकार राजनीति विज्ञान की शाखा के रूप में तथा स्वयं एक विषय के रूप में लोक प्रशासन अर्थशास्त्र से संपर्क करने की दिशा में अग्रसर हुआ है।

लोक प्रशासन के विकास में ऊपर वर्णित उदारतावादी लोकतांत्रिक परम्परा यह प्रदर्शित करती है कि लोक प्रकाशन अपनी स्वतंत्र पहचान के दावे से शुरू हुआ और सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषयों की धारणाओं, पद्धतियों और तकनीकों को आत्मसात् करने की दिशा में अग्रसर हुआ है। इस प्रकार

इस विषय का क्षेत्र तो व्यापक हुआ प्रतीत होता है पर इसकी अपनी पहचान का प्रश्न अभी भी अनुत्तरित रहता है।

3.5 मार्क्सवादी परम्पराएँ

1917 की अक्टूबर क्रांति से मार्क्सवादियों में रूस में नौकरशाही की भूमिका पर विवाद पैदा हो गया था। परन्तु नौकरशाही, संगठन और प्रबन्ध विज्ञान में मार्क्सवादियों की रूचि केवल द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के दशक में प्रकट हुई और कई दिशाओं में विकसित हुई।

नौकरशाही के पुराने मार्क्सवादी दृष्टिकोण को समझने के लिए हमें वापस ''मार्क्स'' की ओर जाना होगा। मार्क्स ने नौकरशाही की अवधारणा पर अधिक जोर नहीं दिया था। परन्तु नौकरशाही पर तथा समाज की शक्ति संरचना से नौकरशाही के संबंधों पर मार्क्स के विचार उसके मुख्य ग्रन्थों में हैं जो नौकरशाही पर माकर्सवादी विचारधारा के उत्तरकालीन विकास के समझने में सहायक हैं। नौकरशाही पर मार्क्स की धारणाएं मुख्यतः उनके ग्रन्थ ''दी एटीन्थ ब्रुमायर ऑफ लुई बनोपार्ट'' में सामने आई है। नौकरशाही पर मार्क्स की धारणाओं को तभी समझा जा सकता है, जब मार्क्स के वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त, पूंजीवादी संकट तथा साम्यवाद की अभ्युदय, इन सबके सामान्य ढांचे के संदर्भ में उन पर चिन्तन किया जाये। वर्ग संघर्ष के व्यापक संदर्भ में मार्क्स यह मानता हे कि नौकरशाही प्रभावी शासक वर्ग के हाथ में उनके विशिष्ट हित साधने का साधन है। इस तरह नौकरशाही के अस्तित्व और विकास की प्रकृति अस्थायी तथा परजीवी है। इस दृष्टि से वर्ग विभाजित समाज में नौकरशाही और इसके आगे अधिकारतंत्र अपरिहार्य हो जाते हैं। मार्क्स ने परिकल्पना की थी कि वर्गों की समाप्ति से राज्य और उसकी नौकरशाही समाप्त हो जाएगी। नौकरशाही की इस समाप्ति का मतलब होगा इसका समाज की समग्रता में विलय होना। मार्क्स की कल्पना थी कि नौकरशाही की दमनकारी प्रकृति के बजाय साम्यवादी समाज में नौकरशाही के कार्य स्वयं समाज के सदस्यों द्वारा किए जाने लगेंगे। प्रशासनिक कार्यों का शोषक स्वभाव समाप्त हो जाएगा तथा प्रशासनिक कार्यों का मतलब लोगों का प्रशासन न होकर चीजों का प्रशासन होगा। मार्क्स की इस दार्शनिक अवस्थिति ने उसके अनुयायियों और उसके आलोचकों पर गहरा प्रभाव डाला।

रूस की 1917 की अक्टूबर क्रांति से तथा उसके बाद के वर्षों में विश्व के कई देशों में समाजवादी सरकार की स्थापना से मार्क्सवादी विचारों के परीक्षण का मार्ग प्रशस्त हुआ। समाजवादी विश्व में नौकरशाही की प्रचुरता हुई और प्रबंध विज्ञान की पाश्चात्य तकनीकें लागू करने की प्रवृत्ति बढ़ी। लेनिन का विचार था कि उत्तर क्रांतिकालीन रूस में केन्द्रित नौकरशाही की सामर्थ्य वृद्धि समाजवाद की अपरिपक्वता तथा उत्पादक शक्तियों के अपर्याप्त विकास की द्योतक है। मार्क्स की भांति लेनिन का भी विचार था कि यह संक्रांतिकाल की एक घटना मात्र है। इसके विपरीत व्यवस्था के आलोचकों ने एक ''नए वर्ग'' के रूप में नौकरशाही के बारे में सिद्धांत प्रस्तुत किए। ''नए वर्ग'' से उनका तात्पर्य सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों में सर्वहारा वर्ग के नाम पर शासन करने वाले नवोदित वर्ग से है।

यह निर्विवाद है कि नौकरशाही, इसके संगठन तथा प्रबंध के मार्क्सवादी अध्ययनों ने लोक प्रशासन के अध्ययन में एक नया आयाम जोड़ा है और इसे विकसित करने में सहायता की है। स्टूअर्ट क्लैग तथा डेविड डन्करली, निकोस मोजिलिस, ब्रेवरमैन तथा अन्य कई विद्वानों ने संगठन के मूलभूत सिद्धांत बनाने के प्रयास किए हैं। इन प्रयासों से लोक संगठन के अध्ययन में कुछ महत्वपूर्ण प्रगति हुई हैं वास्तव में माकर्सवादी परंपराओं ने

लोक प्रशासन के अध्ययन को सामाजिक परिवर्तन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में स्थापित किया है।

3.7 सारांश

लोक प्रकाशन के विकास का परीक्षण निरंकुशतावादी, उदारतावादी लोकतांत्रिक तथा मार्क्सवादी परम्पराओं के ढांचे में किया गया था। प्राचीन काल में लम्बे अर्से तक राज्य पर निरंकुशतावादी राजतंत्र का प्रभुत्व रहा। कौटिल्य के ''अर्थशास्त्र'' में सत्तावादी राजतंत्र से संबन्धित प्रशासन विज्ञान का वर्णन है। संभवतः आधुनिक राज्य में सत्तावादी परम्पराओं के जारी रहने के कारण ''अर्थशास्त्र'' में वर्णित प्रशासन के कुछ सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक हैं। अट्ठारहवीं सदी के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं सदी में हुई औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप विश्व के कई भागों में उदारतावादी लोकतांत्रिक राज्य का उदय हुआ। आधुनिक लोक प्रशासन इसी उदारतावादी लोकतांत्रिक राज्य का प्रतिफल है। उदारतावादी लोकतांत्रिक राज्य में लोक प्रशासन के विकास की विभिन्न अवस्थाएं उन समाजों में हुए सामाजिक परिवर्तनों को प्रतिबिम्बित करती हैं। सोवियत संघ में 1917 की अक्टूबर क्रांति की विभिन्न घटनाओं के परिणामस्वरूप लोक प्रशासन का अध्ययन मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में किया गया। मार्क्सवाद के समर्थकों और आलोचकों तथा समाजवादी प्रथाओं ने लोक प्रशासन के शोध क्षेत्र को समृद्ध बनाया। शासन और सैद्धान्तिक बन्धनों से संबन्धित अनुभवों में विभिन्नताएं होती हैं और लोगों के इन अनुभवों की विभिन्नताओं से लोक प्रशासन के सिद्धांतों और प्रथाओं के बारे में चिनतन और विपरीत चिन्तन के अवसर प्राप्त होते हैं।

3.8 प्रमुख शब्दावली

उपागम	:	इसे अभिगम या दृष्टिकोण भी कहा जाता है।
दण्डविधान	:	दण्ड से संबन्धित कानून
द्विभाजन	:	दो भगाों में बांटना
शासनादेश	:	प्राधिकारी द्वारा प्रसारित आदेश
प्रतिमान	:	उदाहरण
सर्वहारा–वर्ग	:	औद्योगिक श्रमिक वर्ग

3.9 बोध प्रश्न

1. (1) लोक प्रशासन के विकास के अध्ययन के महत्व के महत्व का वर्णन कीजिए।
2. (1) लोक प्रशासन पर कौटिल्य के विचार समझाइए।
3. (1) उदारतावादी लोकतांत्रिक परम्पराओं में लोक प्रशासन के विकास की विभिन्न अवस्थाएं स्पष्ट कीजिए।
4. (1) नौकरशाही पर मार्क्स के विचार स्पष्ट कीजिए।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) भाग 3.2 देखिए

2. (1) भाग 3.3 देखिए

3. (1) भाग 4.4 देखिए

4. (1) भाग 4.6 देखिए

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भट्टाचार्य, मोहित, 1987 : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन; दी वर्ल्ड प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, कलकत्ता।

भट्टाचार्य, मोहित, ''न्यू हौराइजन्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन नई दिल्लीः जवाहर पब्लिशर्स, 2015।

गोलेमब्यिूस्की, राबर्ट टी. 1977 : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डेवलपिंग डिसीप्लिन; (2) खण्ड) मारसिल बेकर, न्यूयार्क।

निकोलस हैनरी, 2013ः पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पब्लिक अफेयर्स, नई दिल्ली, पीएचआई लर्निंग।

निग्रो, फ्लेक्स ए., तथा निग्रो लायड जी. : 1980 : मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, हारपर एण्ड रो, न्यूयार्क।

इकाई– 4

तुलनात्मक लोक प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विश्लेषण के स्तर

4.4 तुलनात्मक अध्ययनों का क्षेत्र

4.4.1 अन्तर–संस्थागत विश्लेषण

4.4.2 बहु–राष्ट्रीय विश्लेषण

4.4.3 बहु–सांस्कृतिक विश्लेषण

4.4.4 विभिन्न कालात्मक विश्लेषण

4.5 तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों की प्रकृति

4.4.1 आदर्शात्मक से अनुभवात्मक

4.4.2 भाव–चित्रात्मक से विधि सम्बन्धी

4.4.3 गैर पारिस्थितिक से पारिस्थितिक

4.6 तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र

4.6 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व

4.7 तुलनात्मक लोक प्रशासन में संकल्पनात्मक उपागम

4.7.1 नौकरशाही या अधिकारीतंत्रात्मक उपागम

4.7.2 व्यवहारवादी उपागम

4.7.3 सामान्य उपागम

4.7.4 पारिस्थितिक उपागम

4.7.5 संरचनात्मक–कार्यात्मक उपागम

4.7..6 विकासवादी उपागम

4.8 सारांश

4.9 प्रमुख शब्दावली

4.10 बोध प्रश्न

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

अध्याय का उद्देय :

- तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व को समझना,
- तुलनात्मक अध्ययन की प्रकृति और उसके क्षेत्र को बता सकना,
- तुलनात्मक लोक प्रशासन में संकल्पनात्मक दृष्टिकोणों को बता सकना है।

4.2 प्रस्तावना

प्रशासनिक प्रणालियों की तुलना की एक लंबी परम्परा रही है। परन्तु प्रशासनिक अध्ययन के इस पहलू पर ध्यान लगभग 60 वर्ष से ही गया है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात एवं एशिया व अफ्रीका में नये राष्ट्र के उदय के साथ ही लोक प्रशासन का अर्थ्र विश्व के विभिन्न देशों में कार्यरत सरकारी प्रशासनिक प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति अनेक शाखाओं और श्रेणियों में विभाजित है जो संकीर्ण अध्ययन से लेकर अधिक विस्तृत विश्लेषणों तक फैला हुआ है। तुलनात्मक लोक प्रशासन को समझने के लिए इस विषय में विद्वानों द्वारा किए गए तुलनात्मक लोक प्रशासनिक चयनों के रूपों पर दृष्टिपात करना वांछनीय होगा।

1960 में लोक प्रशासन के विभिन्न नमूने विभिन्न देशों में नियंत्रक और लेखा परीक्षक की रिपोर्ट के बाद स्थापित होने शुरू हुए।

तुलनात्मक (लोक) प्रशासनिक अध्ययनों में विश्लेषण की इकाई एक प्रशासनिक प्रणाली होती है। इसलिए ध्यान या तो सम्पूर्ण प्रशासनिक प्रणाली पर या उसके विभिन्न भागों पर केन्द्रित होता है। संक्षेप में, तुलना की विषय वस्तु निम्नलिखित में से कोई भी एक या सभी होंगे।

1. प्रशासनिक प्रणाली का परिवेश
2. सम्पूर्ण प्रशासनिक प्रणाली
3. पदसोपान, कार्य विभाजन, विशेषता, सत्ता उत्तरदायित्व का ताना–बाना, विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन, नियंत्रण व्यवस्था व कार्य प्रणाली को केन्द्र बिन्दु बनाकर प्रशासनिक प्रणाली की औपचारिक संरचना
4. एक प्रशासनिक ढांचे में अनौपचारिक संगठन का स्वरूप जिसमें मानव वर्गों की प्रकृति, व्यक्तियों के बीच परस्पर सम्बन्ध, अभिप्रेरण प्रणाली, मनोबल का स्तर, अनौपचारिक संचार का स्वरूप व ृत्व की प्रकृति, नेतशामिल होती है
5. व्यक्तियों की भूमिकाएं
6. संगठनात्मक प्रणाली और व्यक्तियों के व्यक्तित्व के बीच अन्तःक्रिया
7. संगठन की वे नीति व निर्णयात्मक प्रणालियां जिनके माध्यम से उसके विभिन्न भाग आपस में जुड़ते हैं या जो उसके विभिन्न भागों को जोड़ती है
8. संचार–प्रणाली जिसमें पुनर्निवेश या प्रतिपुष्टि की क्रियाविधि भी शामिल है
9. प्रशासनिक प्रणाली का कार्य निष्पादन

ऊपर की बातों से ज्ञात होता है कि प्रशासनिक प्रणाली एक सरल तत्व नहीं है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन एक अलग क्षेत्र नहीं है। अपितु यह राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन के दो विषयों के बीच एक कड़ी है।

4.3 विश्लेषण के स्तर

तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन तीन विश्लेषणात्मक स्तरों– बृहत्, मध्यम क्षेत्र एवं सूक्ष्म पर किए जा सकते हैं। बृहत् अध्ययनों का केन्द्र बिन्दु सम्पूर्ण प्रशासनिक प्रणालियों का उनके सही पारिस्थितिक संदर्भ में तुलना करना है। उदाहरण के लिए, भारत व ग्रेट ब्रिटेन की प्रशासनिक प्रणालियों की तुलना बृहत् अध्ययन होगा जिसमें दोनों देशों की प्रशासनिक प्रणालियों के सभी महत्वूपर्ण भागों व पहलुओं का विस्तृत विश्लेषण सम्मिलित होगा इसका क्षेत्र व्यापक होगा। यद्यपि बृहत् अध्ययन बहुत ही कम होते हैं, परन्तु ऐसा करना असंभव नहीं है। सामान्यतः बृहत स्तर पर किये जाने वाले अध्ययनों और उसके बाह्य परिवेश के बीच सम्बन्धों को उभारा जाता है। मध्यम स्तर अध्ययन प्रशासनिक प्रणाली के कुछ महत्वपूर्ण भागों पर किये जाते हैं जिनका आकार पर्याप्त विस्तृत और कार्य प्रणाली व्यापक होती है। उदाहरण के लिए, दो या अधिक देशों की उच्च नौकरशाही की संरचना की तुलना या दो या अधिक राष्ट्रों के कृषि प्रशासन की तुलना या विभिन्न देशों में स्वायत्त शासन की तुलना मध्यम स्तर के अध्ययन के उदाहरण हैं।

सूक्ष्म अध्ययन किसी एक संगठन का दूसरे संगठन में उसके प्रति रूप की तुलना से सम्बन्धित है। सूक्ष्म अध्ययन प्रशासनिक प्रणाली के किसी छोटे भाग का विश्लेषण हो सकता है जैसे दो या अधिक प्रशासनिक संगठनों में भर्ती या प्रशिक्षण की प्रणाली का अध्ययन सूक्ष्म व्यावहारिक होते हैं। तथा इस प्रकार के बहुत से अध्ययन लोक प्रशासन के विद्वानों ने किए हैं। आज के तुलनात्मक लोक प्रशासन में तीनों प्रकार के अध्ययन किए जाते हैं। दूसरा प्रासंगिक प्रश्न यह है कि तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों की सीमा या क्षेत्र क्या है? इस क्षेत्र में सामान्यतः किस प्रकार के अध्ययन आते है? वास्तव में तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि ज्ञान की इस शाखा में विविध प्रकार के विश्लेषण शामिल किये जाते हैं।

4.4 तुलनात्मक अध्ययनों का क्षेत्र

तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन मुख्य रूप से निम्न प्रकार का है:–

4.3.1 अन्तर–संस्थागत विश्लेषण

इसमें दो या अधिक प्रशासनिक प्रणालियों का विश्लेषण शामिल होता है। उदाहरणार्थ, भारत सरकार के गृह–मंत्रालय की संरचना व कार्य–विधि की तुलना रक्षा मंत्रालय के साथ करना अन्तर–संस्थागत विश्लेषण होगा। इस प्रकार की तुलनाएं किसी प्रशासनिक संगठन के संपूर्ण रूप से या उसके विभिन्न भागों को लेकर की जा सकती है।

4.3.2 बहु–राष्ट्रीय विश्लेषण

जब किसी देश में कार्यरत विभिन्न प्रशासनिक प्रणालियों या उनके भागों की तुलना विभिन्न राष्ट्रों की स्थितियों में की जाती है तो वह

बहु–राष्ट्रीय विश्लेषण कहा जाता है। उदाहरण के लिए चीन, थाइलैण्ड और तंजानिया की उच्च सिविल सेवाओं में भर्ती की तुलना करना बहु–राष्ट्रीय विश्लेषण कहलायेगा।

4.3.3 बहु–सांस्कृतिक विश्लेषण

प्रशासनिक प्रणालियों के बहु–राष्ट्रीय विश्लेषण में जब भिन्न–भिन्न संस्कृतियों वाले देश सम्मिलित हों तो वह बहु–सांस्कृतिक विश्लेषण कहलायेगा। जैसे सोवियत रुस (एक समजावादी देश) और अमरीका (एक पूंजीवादी व्यवस्था) की प्रशासनिक प्रणाली की तुलना करना बहु–सांस्कृतिक विश्लेषण कहलायेगा। तथा एक विकसित देश (जैसे फ्रांस) की एक विकासशील (जैसे एल्जीरिया) के साथ एक विकासशील प्रजातांत्रिक देश (उदाहरण के लिए फिलीपीन्स) व विकासशील साम्यवादी शासन (जैसे वियतनाम) की तुलना भी बहु–सांस्कृतिक तुलना में सम्मिलित हैं। इस प्रकार ''बहु–सांस्कृतिक श्रेणी में सांस्कृतिक शब्द का व्यापक अर्थ है और एक निश्चित प्रणाली व उसके वातावरण की विशिष्ट राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताओं का सामूहिक रूप है।''

4.3.4 विभिन्न कालात्मक विश्लेषण

इस प्रकार की तुलना में विभिन्न कालों की प्रशासन प्रणालियां विश्लेषण के लिए शामिल की जाती हैं। उदाहरण स्वरूप अशोक के शासन काल की प्रशासनिक प्रणाली व अकबर के शासन की प्रशासनिक प्रणाली की तुलना विभिन्न कालात्मक विश्लेषण है। इसी प्रकार प्राचीन रोम व आधुनिक इटली की प्रशासनिक प्रणालियों की तुलना या जवाहरलाल नेहरु और इन्दिरा गांधी के समय में प्रचलित प्रशासनिक पद्धतियों की तुलना विभिन्न कालात्मक विश्लेषण के शीर्षक में आता है।

विभिन्न कालात्मक विश्लेषण अन्तर्संस्थागत, अन्तर्राष्ट्रीय, बहु–राष्ट्रीय या बहु–सांस्कृति हो सकता है। विभिन्न कालात्मक अध्ययनों में निश्चिंतता या सुस्पष्टता संभव नहीं है क्योंकि विभिन्न अवधियों या युगों के प्राप्त ऐतिहासिक स्रोतों की प्रकृति में भिन्नताएं होती हैं। परन्तु इस प्रकार के अध्ययनों के द्वारा कुछ सामान्य निष्कर्ष वर्तमान स्रोतों के आधार पर निकाले जा सकते हैं। एन. रफायली ने तुलनात्मक आधार पर लोक प्रशासन के उस सिद्धांत के रूप में उल्लेख किया गया है जो राष्ट्रीय व्यवस्थाओं में विविध प्रकार की संस्कृतियों से सम्बद्ध और वास्तविक आंकड़ों द्वारा उनका विस्तार और परीक्षण किया जा सकता है। राबर्ट जैक्सन ने इसकी परिभाषा अध्ययन के उस चरण के रूप में की है जिसका सम्बन्ध सार्वजनिक कार्यों की प्रशासनिक क्रिया में सम्मिलित संरचनाओं व प्रक्रियाओं की बहु–सांस्कृतिक तुलनाओं से है।

4.4 तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों की प्रकृति

कुछ विद्वानों का विश्वास है कि तुलना किसी विश्लेषण का अन्तर्निहत भाग है और जब हम किसी सामाजिक समस्या या प्रश्न की परीक्षा करते हैं तो हम तुलनात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग किए बगैर ऐसा नहीं कर सकते। प्रसिद्ध समाज विज्ञानी दुर्खीम ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है।

इसके अतिरिक्त इसेन्सटॉड का विश्वास है कि सामान्यतः सामाजिक शोध व तुलनात्मक शोध में कोई भेद नहीं है क्योंकि दोनों की पद्धतियां एक जैसी हैं। दूसरी ओर कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि तुलनात्मक शोध का

विशेष केन्द्र बिन्दु एक तकनीक है। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले तुलनात्मक राजनीति और प्रशासन पर अनेक अध्ययन किए गए थे लेकिन वे अध्ययन मुख्य रूप से वर्णात्मक और आदर्शवादी थे। फ्रेड रिग्स, जो तुलनात्मक प्रशासन का अग्रणी या सर्वोपरि विद्वान है, ने टिप्पणी करते हुए कहा था कि लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में तीन प्रवृत्तियां देखी जा सकती थीं: (1) आदर्शात्मक से अनुभावात्मक (2) भाव चित्रात्मक से विधि सम्बन्धी तथा (3) गैर पारिस्थितिक से पारिस्थितिक इन प्रवृत्तियों का संक्षेप में वर्णन निम्न प्रकार है:

4.4.1 आदर्शात्मक से अनुभवात्मक

लोक प्रशासन के परम्परागत अध्ययनों पर प्राचीन उपागम का अत्यधिक प्रभाव था। इन अध्ययनों में उत्तम प्रशासन पर बल दिया गया था जो कुछ आदर्श सिद्धांतों पर आधारित था। कार्य कुशलता एवं अर्थव्यवस्था को सभी प्रशासनिक प्रणालियों का प्राथमिक उद्देश्य माना गया था और औपचारिक संगठन के कुछ निश्चित सिद्धान्त होते थे जो इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक थे। इसलिए मुख्यतः पश्चिमी प्रजातांत्रिक विश्व के कुछ प्रशासनिक आदर्शों को, अन्य सभी प्रशासनिक प्रणालियों के लिए उपयोगी समझा गया। अनेक विकासशील देशों का उदय तथा विश्व के विभिन्न भागों में साम्यवादी प्रणालियों की सफलता के साथ ही यह स्पष्ट हो गया कि लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए सीमित संस्कृतिबद्ध आदर्श उपागम पर्याप्त नहीं है। व्यवहारवादी उपागम ने तथ्यों तथा वास्तविकता के अध्ययन के महत्व को विशेष रूप से उजागर किया तथा इसलिए द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययनों में विभिन्न देशों व संस्कृतियों में विद्यमान प्रशासनिक वास्तविकता के अध्ययन को और अधिक महत्व दिया जाने लगा। इन अध्ययनों की रुचि प्रशासनिक प्रणालियों के संरचनात्मक स्वरूप तथा व्यवहार सम्बन्धी तथ्यों का पता लगाने में अधिक थी अपेक्षाकृत प्रत्येक प्रणाली के लिए यह बताने में कि उनके लिए उत्तम क्या है?

इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि पिछले लगभग दो दशकों में कुछ प्रशासनिक अध्ययनों की प्रकृति को दो महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों ने प्रभावित किया है। प्रथम, विकास प्रशासन की अवधारणा, जिसका केन्द्र प्रशासनिक प्रणाली का ध्येयोन्मुख होना है, मुख्य रूप से आदर्शात्मक अवधारण है। यद्यपि यह वास्तविकता को ध्येयोन्मुखता का आधार मानती है, 1960 के दशक के पूर्वाद्ध से शोध के केन्द्र बिन्दु के रूप में विकास प्रशासन का उदय होने के साथ ही तुलनात्मक लोक प्रशासन (तुलनात्मक विकास प्रशासन के क्षेत्र सहित) ने विश्लेषण के आदर्शात्मक व अनुभवात्मक तत्वों के बीच संश्लेषण को विकसित किया है।

दूसरा आन्दोलन, जिसने तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों की प्रकृति को प्रभावित किया है, वह है ''नवीन लोक प्रशासन'' जिसने एक प्रशासनिक प्रणाली द्वारा आदर्शात्मक उद्देश्य की प्राप्ति पर बल दिया और इस प्रकार लोक प्रशासन के ''है'' और ''चाहिए'' पहलुओं के बीच की खाई को पाटने का प्रयास किया। 1960 के दशक के उत्तरार्ध में, नवीन लोक प्रशासन ने ''उत्तर व्यवहारवादी'' प्रवृत्ति को अपनाया और बहुत से प्रशासनिक विश्लेषणों पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।

4.4.2 भाव–चित्रात्मक से विधि सम्बन्धी

रिग्स ने भाव चित्रात्मक व विधि सम्बन्धी शब्दों का प्रयोग विशेष सन्दर्भ में किया है। भाव–चित्रात्मक उपागम में किसी अन्य विषय, जैसे किसी

ऐतिहासिक घटना या किसी एजेंसी का अध्ययन, किसी देश या किसी सांस्कृतिक क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

दूसरी ओर विधि सम्बन्धी उपागम में साधारणीकरण तथा सिद्धान्त को विकसित करने का प्रयत्न किया गया है जो प्रशासनिक प्रणालियों के व्यवहार की नियमितताओं के विश्लेषण पर आधारित हों। इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन के पहले के अध्ययन जिनकी प्रकृति भाव–चित्रात्मक थी, में अलग–अलग राष्ट्रों या संस्थाओं के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया गया था और उनका दृष्टिकोण मुख्य रूप से वर्णनात्मक था। विभिन्न राष्ट्रों और प्रणालियों की तुलना करने का कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया गया था। सामान्यतः तुलनात्मक सरकारी प्रशासन के ग्रंथ में भिन्न–भिन्न राष्ट्रों पर अलग–अलग अध्याय लिखे गये थे जिनमें ऐसे राष्ट्रों की प्रशासनिक प्रणालियों के सन्दर्भ में समानताओं या विभिन्नताओं पर दृष्टि डालने का कोई प्रयास नहीं किया गया था। इस प्रकार ये अध्ययन केवल नाम मात्र को ही तुलनात्मक थे और सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया में या भिन्न व्यवस्थाओं में प्रशासनिक प्रणालियों के कार्य–सम्पादन के सम्बन्ध में साधारणीकरण को विकसित करने में सहायक नहीं थे।

विधि सम्बन्धी अध्ययन में विभिन्न प्रशासनिक प्रणालियों के तुलनात्मक अध्ययन का इस प्रकार विश्लेषण किया गया है जिससे परिकल्पना तथा सिद्धान्त के निर्माण करने में सहायता मिले। इस प्रकार के अध्ययनों का उद्देश्य भिन्न–भिन्न राष्ट्रों व संस्कृतियों में विद्यमान विविध प्रशासनिक प्रणालियों के बीच समानताओं व असमानताओं पर दृष्टिपात करना और विविध स्तरों पर और भिन्न–भिन्न व्यवस्थाओं में कार्यरत प्रशासनिक प्रणालियों के बारे में कुछ सामान्यीकरण स्थापित करना है।

यहां यह ध्यान देने की बात है कि विधि सम्बन्धी अध्ययनों पर यूरोप या एशिया की अपेक्षा संयुक्त राज्य अमरीका में अधिक बल दिया जाता है। आजकल तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों का अधिकांश भाग भाव–चित्रात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये अध्ययन भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के ज्ञान में योगदान करते हैं। विश्लेषण या सिद्धान्त निर्माण के लिए भी तथ्यों तथा विवरण को आधारभूत बनाना होता है और इसलिए तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों की वर्तमान अवस्था में भाव–चित्रात्मक व विधि सम्बन्धी अध्ययनों के सहअस्तित्व को स्वीकार करना होगा।

4.4.3 गैर पारिस्थितिक से पारिस्थितिक

तुलनात्मक लोक प्रशासन के परम्परावादी अध्ययन मुख्यतः गैर–पारिस्थितिक थे। इन अध्ययनों में प्रशासनिक प्रणाली के पर्यावरण का उल्लेख केवल आकस्मिक रूप से ही किया गया है। प्रशासनिक प्रणाली और दूसरे पर्यावरण के बीच सम्बन्धों की जांच करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया। इस प्रकार विभिन्न प्रशासनिक प्रणालियों के बीच भिन्नताओं के स्रोतों को जानना कठिन हो गया था। फिर भी, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद किए गए अध्ययन निश्चित रूप से विभिन्न देशों व संस्कृतियों में प्रचलित पर्यावरण व्यवस्था के बीच समानताओं व असमानताओं पर दृष्टिपात करते रहे और एक तरफ पर्यावरण का प्रशासनिक प्रणाली पर प्रभाव तथा दूसरी ओर प्रशासनिक प्रणाली पर पर्यावरण के प्रभाव का परीक्षण करने का प्रयास करते रहे हैं। फ्रेड रिग्स के द्वारा प्रचारित किया गया यह उपागम लोक प्रशासन के अध्ययन में महत्वपूर्ण विकास माना जाता है।

यहां यह देखा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात के लोक प्रशासन के अधिकतर तुलनात्मक अध्ययनों में प्रशासनिक प्रणालियों के पर्यावरण की चर्चा होती रही है, परन्तु अब भी लोक प्रशासन पर पर्यावरण के प्रभाव का विश्लेषण करने पर विशेष बल दिया जाता है। प्रशासनिक प्रणाली के पर्यावरण पर प्रभाव का विश्लेषण अभी भी अपर्याप्त है फिर भी, महत्व या बल में परिवर्तन देखने योग्य है और समकालीन तुलनात्मक प्रशासनिक विश्लेषण में परिवेशीय उन्मुखता की जड़ें अधिक मजबूत होती जा रही हैं।

यहां पर यह कहा जा सकता है कि जब 1962 में रिग्स ने ये तीन प्रवृत्तियां प्रस्तुत की थीं, तो वह तथ्य के प्रति सचेत था कि तुलनात्मक अध्ययनों में नये व पुराने का सह–अस्तित्व अवश्यम्भावी है। तद्नुरूप आज तुलनात्मक प्रशासन के साहित्य में आदर्शात्मक और अनुभवात्मक, भाव–चित्रात्मक व विधि सम्बन्धी तथा गैर–पारिस्थितिक व पारिस्थितिक उपागम साथ–साथ अस्तित्व में हैं।

4.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र

20वीं तथा 21वीं सदी के प्रारम्भ में लोक प्रशासन का क्षेत्र अत्यधिक बढ़ गया है। लोक प्रशासन का महत्व, रुसी क्रान्ति की सफलता, द्वितीय विश्व युद्ध के समय तथा उसके पश्चात राज्य की बढ़ी हुई भूमिका, अधिकांश देशों में प्रारम्भ किए गए कल्याणकारी कार्यक्रम या उपाय तथा बड़ी संख्या में विकासशील देशों के उदय होने के कारण काफी बढ़ गया है। आज लोक प्रशासन मानव जीवन के लगभग सभी पक्षों को प्रभावित करता है। अमरीका जैसे पूंजीवादी देश में भी सरकार की भूमिका का कारगर रूप में विस्तार हुआ है। कुल मिलाकर राज्य या सरकार की इस बढ़ी भूमिका का परिणाम यह हुआ है कि बड़ी संख्या में लोक प्रशासन की विशेषीकृत शाखाओं का विकास हुआ है। इनमें से कुछ शाखायें है– आर्थिक प्रशासन, सामाजिक प्रशासन, शैक्षिक प्रशासन, स्वास्थ्य प्रशासन, परिवहन प्रशासन, अंतरिक्ष प्रशासन इत्यादि। इसके अतिरिक्त राज्य प्रशासन, शहरी प्रशासन, ग्रामीण प्रशासन, वित्त प्रशासन व कार्मिक प्रशासन ऐसे क्षेत्र हैं जो सरकार के शब्दकोश के अभिन्न अंग बन गए हैं। इसलिए, जब हम विभिन्न राष्ट्रों या संस्कृतियों में विद्यमान प्रशासनिक प्रणालियों की तुलना करते हैं, तब हम या तो संपूर्ण प्रशासनिक प्रणालियों या इन प्रणालियों के महत्वपूर्ण भागों की तुलना कर सकते हैं। आज, हम तुलनात्मक शैक्षिक प्रशासन, तुलनात्मक स्वास्थ्य प्रशासन, तुलनात्मक आर्थिक प्रशासन, तुलनात्मक सामाजिक प्रशासन तथा अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों के बारे में बहुत से अध्ययन पाते हैं। इसके अतिरिक्त तुलनात्मक शहरी प्रशासन तथा तुलनात्मक ग्रामीण प्रशासन पर अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। यह स्पष्ट है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र अपने उत्पत्ति विषय अर्थात लोक प्रशासन के समान ही विस्तृत है या जो कुछ भी प्रशासनिक है, उसकी तुलना की जा सकती है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र की चर्चा करते समय हमें प्रशासन की केवल विशेषीकृत शाखाओं पर ही ध्यान नहीं देना है बल्कि इस बात पर पुनः बल देने की आवश्यकता है कि तुलनात्मक अध्ययन बृहत, मध्यम स्तर तथा सूक्ष्म स्तर पर किए जा सकते हैं। ये अन्तर्संस्थागत, बहुराष्ट्रीय, बहु–सांस्कृतिक और बहु–समयात्मक हो सकते हैं।

संक्षेप में, तुलनात्मक लोक प्रशासन शास्त्रीय युग के सैद्धान्तिक झुकाव से हटकर एक नूतन काल की तरफ अग्रसर हुआ है। जिसमें नीति एवं प्रबन्धन की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया जा रहा है।

4.6 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व

आज तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व सर्वमान्य है। दो तत्व हैं जो तुलनात्मक अध्ययन को महत्वपूर्ण बनाते हैं। प्रथम तत्व लोक प्रशासन का सैद्धान्तिक अध्ययन है। यह विश्वास किया जाता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन के माध्यम से उन प्राक्कलनों, सामान्यीकरण, प्रतिमानों व सिद्धांतों का निर्माण किया जा सकता है जो सामूहिक रूप से लोक प्रशासन के वैज्ञानिक अध्ययन में सहायता कर सकते हैं। प्रशासन के रुढ़िवादी सिद्धान्तों को मान्यता नहीं दी जाती और इसलिए आज यह विश्वास किया जाात है कि विभिन्न राष्ट्रों व संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययनों से उभरते हुए प्रशासनिक संरचना एवं व्यवहार से सम्बन्धित सामान्यीकरण ऐसी सैद्धान्तिक संकल्पनाएं बनाने में सहायता कर सकते हैं जो लोक प्रशासन के अध्ययन को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर सकें। यह उल्लेखनीय है कि बहुत पहले 1947 में एक सुप्रसिद्ध राजनीति वैज्ञानिक रॉबर्ट डहल, ने कहा था कि तुलनात्मक उपागम का प्रयोग किए बिना लोक प्रशासन के विज्ञान के विषय में सोचा भी नहीं जा सकता।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य अनुभवात्मक विश्व की प्रासंगिकता से सम्बन्धित है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के माध्यम से प्रशासन नीति–निर्माता व शिक्षाविद् किसी खास प्रशासनिक संरचनाओं और विभिन्न पर्यावरणीय स्वरूपों की सफलता या असफलता के कारणों की जांच कर सकते हैं। तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से यह पता लगाना रोचक है कि पर्यावरण के कौन से महत्वपूर्ण तत्व प्रशासन को प्रभावशाली बनाने में सहायता करते हैं और कौन–कौन सी प्रशासनिक संरचनाऐं किस प्रकार की पर्यावरणीय व्यवस्था में ठीक तरह से और सफलतापूर्वक कार्य करती है। अंत में, प्रशासक या नीति–निर्माता, लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययनों के माध्यम से प्रशासनिक सुधारों की प्रक्रियाओं और नीतियों के बारे में गहरी जानकारी प्राप्त कर सकता है। वह विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अपनाये गये प्रशासनिक सुधारों की संचनाओं पर दृष्टिपात कर सकता है। तथा उसके अपने देश के हित में सहायक हो सकने वाली नीतियों और पद्धतियों का परीक्षण कर सकता है। दूसरे शब्दों में, तुलनात्मक लोक प्रशासन के माध्यम से, हम विभिन्न राष्ट्रों में प्रयोग में लाई जाने वाली प्रशासनिक प्रणालियों के बारे जानकारी प्राप्त करते हैं और फिर उन प्रणालियों को अपनाते हैं जो हमारे अपने राष्ट्रों तथा प्रणालियों के लिए उचित हैं।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व, लोक प्रशासन के व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक अध्ययन के संदर्भ में, इसकी शैक्षणिक उपयोगिता में तथा दूसरी प्रशासनिक प्रणालियों से सम्बन्धित ज्ञान में सुधार करने में है जिससे भिन्न–भिन्न राष्ट्रों में उचित प्रशासनिक सुधार तथा परिवर्तन किये जा सकें।

4.7 तुलनात्मक लोक प्रशासन में संकल्पनात्मक उपागम

आज तुलनात्मक लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र की विशेषताओं को बताने वाले अनेक उपागम, प्रारूप व सिद्धान्त हैं। विशेषतः द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् तुलनात्मक प्रशासनिक विश्लेषण के क्षेत्र में बहुत से उपागमों का उदय हुआ है। काफी सीमा तक यह प्रयास तुलनात्मक नृविज्ञान, तुलनात्मक समाजशास्त्र व तुलनात्मक राजनीति में हुए विकासों के रूपान्तरण पर अधारित है। विभिन्न उपागमों का अध्ययन निम्न प्रकार है :

4.7.1 नौकरशाही या अधिकारीतंत्रात्मक उपागम

उपागमों में सर्वाधिक प्रभावशाली मैक्स वेबर का आदर्श रूप अधिकारीतंत्रात्मक प्रतिमान है। पदसोपान, विशेषज्ञता, निश्चित भूमिका, योग्यता के अनुसार भर्ती, वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार पर पदोन्नति, जीवन वृत्ति विकास, प्रशिक्षण, अनुशासन, निजी एवं सरकारी साधनों के बीच पृथक्करण इत्यादि इसकी संरचनात्मक विशेषताएं हैं। इस प्रारूप में तार्किकता व कार्यकुशलता पर बल दिया गया है।

वेबर के अधिकारीतंत्रात्मक प्रारूप में अनेक तुलनात्मक अध्ययन किए गए हैं। इस क्षेत्र के उल्लेखनीय विद्वानों में माइकल क्रोजियर (फ्रांस पर), रायलेयर्ड (सोवियत रुस पर) मोरो वर्जर (मिश्र पर) शामिल हैं। एक आदर्श प्रतिमान की पद्धति सम्बन्धी सीमाएं एवं तार्किक वैधिक शक्ति प्रणाली का निश्चित संदर्भ नौकरशाहियों के तुलनात्मक अध्ययन में वैबरीय प्रतिमान के प्रयोग पर बाधा उत्पन्न करते हैं। फिर भी विकसित देशों की नौकरशाहियों के विश्लेषण के लिए यह प्रतिमानों को आज भी व्यापक रूप से उपयोगी समझा जाता है। डवाईट वाल्डो के अनुसार वेबरीय नौकरशाही प्रमिमान के अनुसार लोक प्रशासन का एक आदर्श उदाहरण मानता है।

विशेष रूप से द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात तुलनात्मक प्रशासनिक विश्लेषण के क्षेत्र में अनेक उपागमों का उदय हुआ। काफी सीमा तक यह प्रयास तुलनात्मक नृविज्ञान, तुलनात्मक समाजशास्त्र और तुलनात्मक राजनीति में हुए विकासों के रूपांतरण पर आाधारित हैं।

4.7.2 व्यवहारवादी उपागम

व्यवहारवादी उपागम में तथ्यो, आंकड़े एकत्र करने व विश्लेषण करने की क्लिष्ट वैज्ञानिक पद्धति, परिमाणन, प्रयोग, परीक्षण, सत्यापन और आन्तरिक अनुशासन पर बल दिया गया है। यह प्रशासनिक व्यवस्थाओं में मानव व्यवहार के विश्लेषण पर ध्यान केन्द्रित करता है।

4.7.3 सामान्य उपागम

इसके अतिरिक्त सामान्य उपागम में प्रशासनिक प्रणाली को समाज की उप व्यवस्था माना गया है। यह प्रशासनिक प्रणाली के विभिन्न भागों (औपचारिक संगठन, अनौपचारिक संगठन), भूमिकाएं, व्यक्तियों पर दृष्टिपात करता है और उन भागों के बीच परस्पर सम्बन्धों का परीक्षण करता है। इसके अतिरिक्त, इस उपागम में प्रशासनिक प्रणाली और उसके बाह्य वातावरण के बीच गतिशील या व्यावहारिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया गया है।

4.7.4 पारिस्थितिक उपागम

तुलनात्मक लोक प्रशासन के सर्वाधिक प्रसिद्ध उपागमों में से एक है पारिस्थितिक उपगाम जिस पर फ्रेड रिग्स ने काफी बल दिया है। इस उपागम में प्रशासनिक प्रणाली और उसके बाह्य वातावरण के बीच परस्पर सम्बन्धों का परीक्षण किया गया है। इस प्रकार, पारिस्थितिक उपागम में प्रशासनिक प्रणाली की संरचना एवं व्यवहार पर राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था तथा सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रभाव और इन पारिस्थितिक संरचनाओं पर प्रशासनिक प्रणाली के प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है।

4.7.5 संरचनात्मक–कार्यात्मक उपागम

एक सम्बन्धित उपागम, जिसे नृविज्ञान व समाजशास्त्र से लिया गया है, संरचनात्मक–कार्यात्मक उपागम है। इसके अनुसार संरचना व्यवहार का वह रूप होता है जो किसी सामाजिक व्यवस्था की मानक विशेषता बन जाता है। इसके अतिरिक्त, कोई कार्य किसी एक संरचना का दूसरी संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव तथा विभिन्न संरचनाओं के बीच परस्पर सम्बन्धों को दर्शाता है।

फ्रेड रिग्स ने समाजों और उनकी प्रशासनिक प्रणालियों के अपने विश्लेषण में पारिस्थितिक व संरचनात्मक–कार्यात्मक उपागामों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। 1957 में कृषि पर आधारित औद्योगिक प्रणाली के प्रतीकात्मक वर्गीकरण का विकास किया गया था। उसके बाद, 1959 में उसके स्थान पर अनेक कार्य करने वाले विशिष्ट समाजों की रचना की गई। पिछले लगभग 50 वर्षों से, रिग्स का प्रिज्मीय या सांक्षेत्रिक समाज और उसकी प्रशासनिक प्रणाली जिसे ''साला'' कहा जाता है, का आदर्श तुलनात्मक लोक प्रशासन में आधुनिक सिद्धांत निर्माण पटल पर छाया हुआ है। आलोचनाओं एवं कुछ अंतर्निहित विधि सम्बन्धी सीमाओं के बावजूद भी सांक्षेत्रिक साला आदर्श ने विकासशील देशों में विद्यार्थियों और लोक प्रशासन के प्रयोग कर्ताओं को आकर्षित किया है। रिग्स के अनुसार प्रिज्मीय या सांक्षेत्रिक समाज की विशेषता यह है कि उसमें संरचनात्मक भिन्नता की मात्रा अधिक होती है तथा उसी सीमा तक एकीकरण (सहयोग) परिलक्षित होता है। विषमता, औपचारिकतावाद और अतिव्याप्ति प्रिज्मीय या सांक्षेत्रिक समाज तथा उसके ''साला'' की विशेषताऐं हैं और अतिव्यापित के 5 आयाम हैं, बहु–समुदाय, बहु–आदर्शवाद, बाजार–कैंटीन प्रतिमान, शक्ति बनाम नियंत्रण तथा भाई–भतीजावाद। ये विशेषताएं प्रिज्मीय समाज की राजनीति, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक प्रणालियों से सम्बद्ध हैं।

4.7.6 विकासवादी उपागम

यह उपागम एक गतिशील प्रशासनिक प्रणाली की कुछ विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित करता है जैसे ध्येय–उन्मुखता, परिवर्तन–उन्मुखता, प्रगतिशीलता, नवीनीकरण, भागीदारी और अनुक्रियात्मकता।

उपर्युक्त के अतिरिक्त तुलनात्मक प्रशासनिक विश्लेषण के और भी अनेक उपागम हैं। इनमें डोरसी का सूचना कार्यशक्ति प्रतिमान शामिल है। फिर भी, अन्य प्रतिमान वेबर के नौकरशाही प्रतिमान तथा रिग्स के सांक्षेत्रिक या प्रिज्मीय प्रतिमान और विकास प्रशासन की संकल्पना की व्यापकता एवं मान्यता का मुकाबला नहीं कर पाये हैं।

ऐसा लगता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन में प्रयोगात्मक चरण अब और अधिक प्रभावशाली नहीं रहा है, लेकिन फिर भी लोक प्रशासन के विद्वानों में विविधि प्रकार के प्रशासनिक स्वरूपों या अभिरचनाओं को समझने का उत्साह जीवित है। इसलिए आने वाले समय में तुलनात्मक लोक प्रशासन के नये–नये आयामों के विकसित होने की आशा है।

4.8 सारांश

तुलनात्मक उपागम समाज–विज्ञान के क्षेत्र में खोज का एक अभिन्न अंग है विधिवत् समाज–विज्ञान अनुसंधान की कोई भी क्रिया तुलनात्मक अध्ययन के अभाव में पूर्ण नहीं हो सकती। इस इकाई में, हमने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व का परीक्षण किया है। हमने

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के प्रति भिन्न–भिन्न उपागमों का भी परीक्षण किया है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का एजेण्डा अब यू0एस0 की विदेशी सहायता धनराशि के प्रवाह से निर्धारित नहीं होता है। अब एप्लाइड लोक प्रशासन अध्ययनों के लिए वित्तीय सहायता अनेकों देशों से आती है, प्रमुखतः यून0एन0डी0पी0, वर्ल्ड बैंक एवं आईएमएफ जैसे प्रतिष्ठानों से।

4.9 प्रमुख शब्दावली

बाजार–कैंटीन : सांक्षेत्रिक या प्रिज्मीय समाज में आर्थिक स्थिति या दृश्य।

विवर्तनीय : एक ऐसी सामाजिक प्रणाली जिसमें सभी संस्थाएं बहुत सुनिश्चित या विशिष्ट होती हैं।

औपचारिक : क्या किया जाना चाहिए, के सम्बन्ध में संविधानों, कानूनों, नियमों और विनियमों द्वारा अभिव्यक्त सरकारी मानदंड/सिद्धांत।

कार्यात्मक रूप से विवर्तनीय : एक संरचना जो बहुत से कार्यों को सम्पन्न करती है।

फ्यूज : एक सामाजिक प्रणाली जिसमें सभी संरचनाएं काफी अधिक मात्रा में अलग– अलग रूपों का एक साथ प्रचलन।

विषमता : प्रणालियां, क्रियाओं या व्यवहारों तथा दृष्टिकोणों के बिल्कुल भिन्न–भिन्न रूपों का एक साथ प्रचलन।

अतिव्याप्ति : जिस सीमा तक प्रशासनिक व्यवहार का निर्धारण वास्तव में गैर–प्रशासनिक मानकों या आधारों जैसे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक या अन्य कारकों द्वारा किया जाता है।

बहु–सामुदायिक : अनेक समुदायों से बना समाज।

बहुल–कार्यात्मक : वह संरचना बहुल कार्यात्मक कहलाती है जो किसी संघ की अपेक्षा अधिक अनेक कार्यों को सम्पन्न करती है परन्तु एक परम्परावादी परिवार की तुलना में अधिक विशिष्ट होती है।

बहु–आदर्शात्मक : सांक्षेत्रिक या प्रिज्मीय समाज की या पौराणिक प्रणाली की विशेषता।

प्रिज्मीय या सांक्षेत्रिकता : मिश्रित एवं विर्तनीय प्रतिमानों के बीच की स्थिति।

साला : प्रिज्मीय या सांक्षेत्रिक ब्यूरो।

संरचना : व्यवहार का वह स्वरूप जो किसी सामाजिक प्रणाली की मानक विशेषता बन गया हो।

उपागम : इसे अभिगम या दृष्टिकोण भी कहा जाता है।

4.10 बोध प्रश्न

1. (1) तुलनात्मक लोक प्रशासन में विश्लेषण की इकाइयां कौन सी है?

   (2) बहु–सांस्कृतिक विश्लेषण क्या है?

   (3) विभिन्न कलात्मक विश्लेषण क्या है?

2. (1) आदर्शात्मक तथा अनुभवात्मक अध्ययनों में भेद कीजिए।

   (2) पारिस्थितिक अध्ययन गैर–पारिस्थितिक अध्ययनों से किस प्रकार भिन्न है।

3. (1) तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र क्या है?

   (2) प्रशासनिक सुधारों के लिए तुलनात्मक अध्ययन किस प्रकार प्रासंगिक है?

4. नौकरशाही उपागम का वर्णन कीजिए।

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) भाग 4.1 देखिए

   (2) उपभाग 4.3.3 देखिए

   (3) उपभाग 4.3.4 देखिए

2. (1) उपभाग 4.5.1 देखिए

   (2) उपभाग 4.4.3 देखिए

3. (1) भाग 4.5 देखिए

   (2) भाग 4.7 देखिए

4. उपभाग 4.7.1 देखिए

4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अरोड़ा, रमेश के., 1985, कम्परेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, एसोशियेटिव पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

फेरेल हीडी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशनः ए कम्परेटिव पर्सपैक्टिव, 6वां एडिशन न्यू यॉर्क : सीआरसी प्रेस, 2001।

रफायली, निमरॉड, रीडिंग्स इन कम्परेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, एलिन एण्ड बकोनी, बॉस्टन।

रिग्स, फ्रेड, 1964, एडमिनिस्ट्रेशन इन डवेलपिंग कंट्रीजः द थ्योरी ऑफ प्रिज्मेटिक सोसाइटी, हफ्टन मिफिन बॉटन।

इकाई– 5

विकास प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 विकास प्रशासन का अर्थ

5.3 विकास का प्रशासन

5.4 प्रशासन का विकास अथवा प्रशासनिक विकास

5.5 परम्परागत प्रशासन एवं विकास प्रशासन में अन्तर

5.5.1 पंरपरागत :

5.5.2 विकास प्रशासन

5.6 विकास प्रशासन के तत्व

5.6.1 परिवर्तन अभिमुखीकरण

5.6.2 लक्ष्य अभिमुखीकरण

5.6.3 प्रगतिवाद

5.6.4 नियोजन

5.6.5 नवीनतावाद

5.6.6 संगठनात्मक प्रक्रियाओं में लचीलापन

5.6.7 उच्चकोटि की प्रेरणा

5.6.8 लाभ–भोगी अभिमुखीकरण

5.6.9 सहभागिता

5.6.10 प्रभावी एकीकरण

5.6.11 सामना करने की क्षमता

5.7 विकास प्रशासन के साधन

5.7.1 प्रशासनिक तंत्र

5.7.2 राजनैतिक संगठन

5.7.3 ऐच्छिक संस्थाऐं

5.7.4 जन संगठन

5.8 विकास प्रशासन का महत्व

5.9 सारांश

5.10 प्रमुख शब्दावली

5.11 बोध प्रश्न

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य

- विकास प्रशासन का अर्थ एवं इसके तत्व समझना,
- विकास प्रशासन और प्रशासनिक विकास में विभेद कर सकना, और
- विकास प्रशासन और परम्परागत प्रशासन के लक्षण समझना है।

5.2 प्रस्तावना

यह प्रचलित मत है कि विकास प्रशासन की संकल्पना द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनेक विकासशील देशों के उदय के साथ विकसित हुई। यह केवल आंशिक सत्य है। इस संकल्पना में व्यापक अर्थ निहित हैं और इसका जो विकास हुआ है वह विकासशील देशों की स्थितियों तक ही सीमित नहीं है। इस संकल्पना का उल्लेख वैसे 1950 के दशक के मध्य में प्रकाशित ''इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'' के प्रारम्भिक अंकों में मिलता है। इसका नियमित प्रयोग 1960 के दशक के प्रारम्भिक वर्षो में संयुक्त राज्य अमेरिका में शुरु हुआ। फ्रैंकलिन रुजवेल्ट की नई नीति के अधीन स्थापित बड़े पैमाने के अमरीकी लोक निगम ''टेनेस वैली अथारिटी'' से प्राप्त अनुभव को भी ''विकास प्रशासन'' की संज्ञा दी गई थी। और बाद में कई प्रशासनिक अनुभवों को, विशेषकर विकासशील देशों से सम्बन्धित अनुभवों को, ''विकास प्रशासन'' शीर्षक के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया। विकासशील देश अपनी प्रशासनिक क्षमताओं को उन्नत करने की समस्याओं के बारे में चिन्तित रहे थे ताकि वे विकासात्मक उद्देश्यों के लिए प्राप्त विदेशी सहायता का उपयोग अधिक विवेक पूर्ण ढंग से कर सकें। इस प्रकार विकास प्रशासन की अवधारणा के विकास में बहुत से कारक सहायक रहे हैं।

समावयववयुक्त, आयोजित तथा कुशलतापूर्वक निर्देशित सरकारी कामकाज द्वारा परिवर्तन लाना विकास प्रशासन का सार है। कुछ समय पहले अधिकांश विकासशील देशों की सरकारों ने अपना ध्यान ऐसे विकास पर केन्द्रित किया है जिसमें जनता की सहभागिता हो और जिसमें परिवर्तन नियोजित हो। प्रशासनिक उद्विग्नता में आये विकास के उद्देश्यों के इस झुकाव के साथ लोक प्रशासन के अनुसन्धानकर्ता एवं उसके अध्येयता इस बात पर मजबूर हो गये हैं कि वे और प्रशासनिक सिद्धान्तों में आये अंतराल को पाट सकें। सरकार के बढ़ते हुए जनकल्याणकारी दायित्वों ने परम्परागत सिद्धान्तों की परिसीमा पर प्रकाश डाला है।

वर्तमान परिस्थितियों में प्रशासन का सार है भिन्न प्रकार के प्रशासनिक संस्थानों की रूपरेखा बनाना एवं आचरण में परिवर्तन की क्षमता लाना, इस

परिवर्तन को प्रोत्साहित करने की क्षमता तथा एक ऐसी प्रणाली को जन्म देना जो इस परिवर्तन का परिपालन कर सके।

वर्तमान परिस्थितियों में प्रशासन का सार इस बात पर निर्भर करता है कि वह भिन्न प्रकार के प्रशासनिक संस्थानों की रूपरेखा एवं आचरण में परविर्तन लाने, ऐसे परिवर्तनों को अपनाये जाने तथा एक ऐसी प्रणाली को जन्म देने में सक्षम हैं कि नहीं जो इस परिवर्तन का परिपालन कर सके। इन सब बातों की मांग है कि विकास कार्यों में जुटे हुए सारे संस्थान इस दिशा में किये जा रहे प्रयासों को नवशक्ति प्रदान करें। अतः अध्ययन–विषय के रूप में तथा इस रूप में भी कि यह विकास के उद्देश्यों को वास्तविक रूप में प्राप्त करने का एक माध्यम है, विकास प्रशासन का महत्व और भी बढ़ जाता है।

5.3 विकास प्रशासन का अर्थ

विकास प्रशासन की कोई एक समान परिभाषा नहीं है जो सबको स्वीकार्य हो किन्तु फिर भी विकास प्रशासन की कुछ ऐसी मौलिक विशिष्टताओं की रूपरेखा बनाई जा सकती है जो सबको स्वीकार्य हो जिसकी उपयुक्तता एक समान हो। विकास प्रशासन की संकल्पना को भली–भांति समझने के लिये हमें इस संकल्पना के अर्थ को समझने का प्रयत्न करना होगा। हमें यह जान लेना चाहिये कि विकास का प्रशासन क्या है और प्रशासन का विकास क्या है।

5.4 विकास का प्रशासन का महत्व व भूमिका

विकास प्रशासन की धारणा ने विकास की कठिनाइयों के व्यापक विश्लेषण के साधन के रूप में काम किया एवं इन चुनौतियों से निपटने के लिए अपेक्षित गुण के रूप में काम किया। विकास के बहुपक्ष और निपुणता, रवैया, व्यवहार तथा आवश्यक संरचना सम्बन्धी प्रशासनिक निवेशों पर बल ने स्पष्ट रूप से परिवर्तन एवं विकास के बहु–अनुशासनिक अनुबन्धों का अर्थ बढ़ाया है। विकास प्रशासन के ये विषय लोक प्रशासन के विद्वानों तथा कर्ताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करने में सफल रहे कि लोक प्रशासन की पश्चिमी नीतियां एवं धारणाएं तृतीय संसार के देशों में शायद पूर्ण रूप से उपयुक्त न रहें, चूंकि इन देशों की कठिनाईयों का स्वरूप विकसित देशों की कठिनाईयों के स्वरूप से भिन्न है। इसीलिए इनके सुझाव के लिए भी भिन्न प्रशासनिक क्षेत्रों की आवश्यकता है।

प्रशासन के पर्यावरण पर विकास प्रशासन का बल न केवल विकास के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक–सांस्कृतिक पहलुओं के संक्रमण पर प्रकाश डालता है अपितु विकास प्रशासन की सजीव विशेषताओं पर भी ध्यान देता है। यह राष्ट्र के सामने नए पर्यावरण की उभरती हुई बहुपक्षीय चुनौतियों का सामना करने के लिए देशी प्रशासनिक प्रक्रिया, कार्यक्रम और तकनीक के विकास पर जोर देता है। राष्ट्र समाज में जीवन स्तर को बेहतर करने के लिए नेतृत्व प्रदान करता है।

विकास प्रशासन इसके अतिरिक्त, नये परिपेक्ष्य और अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता पर भी बल देता है। यह प्रशासन में लोकतांत्रिक भाव को बढ़ावा देता है और सामाजिक परिवर्तन के लिए विकास कार्यों के प्रबन्ध में जनता के सहयोग और सहभागिता को एक तकनीक के रूप में सम्मिलित करता है। विचार, कार्य, संगठन और व्यवहार में नवीनता विकास प्रशासन का मूल तत्व है। यह समूह प्रदर्शन के उच्च स्तर, समूहों में अन्तर सहयोग और भागीदारी प्रबन्ध पर बल देता है। यह लक्ष्य प्राप्ति और पर्यावरण में परिवर्तन और

अन्दरूनी आवश्यकताओं को समझने के लिए, निरन्तर नवाचार पर प्रकाश डालता है।

विकास प्रशासन का अध्ययन इस बात को बिल्कुल स्पष्ट करता है कि राजनीति–प्रशासन द्विभाजन एक मिथक है और बढ़ती हुई तकनीक ज्ञान और विज्ञान के इस युग में राजनीति और प्रशासन का कार्यात्मक द्विभाजन न तो आवश्यक है और न ही संभव है।

5.4 विकास का प्रशासन

विकास सामन्यता किसी देश में विशेषकर विकासशील देशों में सरकार के उद्देश्यों तथा कार्यों में सर्वाधिक महत्व रखता है। ऐसे देशों में मानव अथवा द्रव्य साधनों के अभाव के कारण उपलब्ध साधनों के उपयुक्त प्रयोग की आवश्यकता का महत्व और भी बढ़ जाता है। इस प्रकार विकास प्रशासन एक ऐसा साधन बन जाता है जिसके द्वारा सरकार देश की अर्थव्यवस्था में परिमाणात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन ला सकती है। कोई भी सरकार केवल प्राथमिकतायें ही निर्धारित नहीं करती अपितु इन प्राथमिकताओं की प्राप्ति के लिये भी प्रयत्न करती है। यह कहा जा सकता है कि वेडनर पहला आदमी था जिसने विकास प्रशासन की परिभाषा का संप्रत्यात्मक स्पष्टीकरण किया किन्तु रिग्स, फैरल हैडी, मान्टगोमरी, गांट, पाई, पनानडिकर जैसे अनेक प्रसिद्ध विद्वानों ने भी अपने तरीकों से इस शब्द को परिभाषित करने का प्रयत्न किये। तथापि इस शब्द के भिन्न अर्थों अथवा परिभाषाओं का विश्लेषण करने से पहले यह बता देना उचित होगा कि सारे प्रसिद्ध विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि विकास प्रशासन देश की अर्थव्यवस्था का नियेाजित रूप से रूपांतरण करने की दिशा में एक प्रयास है, जिसमें केवल प्रशासन का क्षेत्र ही सम्मिलित नहीं है अपितु कार्यनीति का निर्धारण तथा समूचा समाज इससे जुड़ा हुआ है। यह आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक जैसे सभी विकास क्षेत्रों में आने वाले परिवर्तनों का समाकलन करने की ओर एक प्रयास भी है। इसलिए विकास को केवल उत्पादन प्रक्रिया की दृष्टि से ही नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी इसमें शामिल है।

सरकार अपनी प्रशासनिक प्रणाली द्वारा विकास कार्यों में अग्रणी भूमिका निभाती है। यह भूमिका निभाने में सरकार के प्रशासन से एक ऐसी सुस्पष्ट सहायता की आवश्यकता पड़ती है जिसमें स्वेरडलो के कथनानुसार विकासशील देशों की समस्याओं को विशेष रूप से समझना शामिल है। इन सबका विभिन्न स्तरों पर आभास हो सके ऐसा आवश्यक है। दूसरे शब्दों में अधिकारी को चाहिये कि भिन्न प्रकार के निर्णय पर्याप्त मात्रा में ले, भिन्न प्रकार की नीतियां पर्याप्त रूप से अपनाये और अनेक प्रकार की गतिविधियों में पर्याप्त रूप से भाग ले ताकि विकास प्रशासन के भिन्न नाम प्राधिकृत हो सकें। इस प्रकार सरल शब्दों में विकास प्रशासन को सरकारी प्रशासन का क्रियात्मक भाग कहा जा सकता है। यह कार्य–अभिमुखी है तथा विकास के उद्देश्यों की सुगम प्राप्ति के लिये प्रशासन को केन्द्र में रखता है। हैरीजे फ्रेडमेन की दृष्टि में विकास प्रशासन का अर्थ है :

1.0 ऐसी कार्ययोजनाओं का परिपालन जिनका अभिप्राय आधुनिकता (सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति तथा राष्ट्र निर्माण) लाना है।

2.0 प्रशासनिक प्रणाली के अन्दर ऐसे परिवर्तन जो इस प्रणाली की कार्य योजनाओं के परिपालन की क्षमता को बढ़ाते हैं। हैन बीन ली के अनुसार विकास प्रशासन किसी सरकार अथवा संगठन को संचालित करता है जिसके फलस्वरूप उत्पादन को बल प्रदान करने के लिए नए

एवं निरन्तर चल रहे परिवर्तनों के अनुसार अपने आप को ढालने अथवा कार्य करते रहने की सरकार एवं संगठन की क्षमता बढ़ जाती है। गांट ने कहा है कि विकास प्रशासन ''लोक प्रशासन का वह पहलू है जिसमें ध्यान इस बात पर केन्द्रित होता है कि लोक संस्थानों की व्यवस्था एवं प्रशासन इस प्रकार से किया जाए जिससे सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के लिए बनाई गई कार्ययोजनाओं को बल मिले। इसका मुख्य उद्देश्य परिवर्तन को संभव एवं आकर्षक बनाना है।'' इस प्रकार विकास प्रशासन के दो मूल तत्व हैं:

(i.) नौकरशाही प्रक्रिया जो उपलब्ध प्रतिभा एवं निपुणता का युक्ततम प्रयोग कर सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति को शुरु करती है एवं इसे सुविधाजनक बनाती है,

(ii.) विकास प्रक्रिया को तेज करने के लिए विकास प्रशासन अपना ध्यान प्रशासनिक दक्षता की गतिशीलता एवं जनता की आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं पर एकाग्रचित्त रखता है। यह योजनाओं कार्यक्रमों, नीतियों एवं परियोजनाओं के निरूपण एवं कार्यान्वयन से सम्बन्धित है। नियोजित परितर्वन लाने में यह मूलभूत भूमिका निभाता है अर्थात् इसका सम्बन्ध योजनाएं बनाने, समन्वय, नियंत्रण तथा योजनाओं एवं कार्ययोजनाओं के पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन से है। इसका सम्बन्ध केवल उन नीतियों के अनुप्रयोग से ही नहीं है जो विद्यमान परिस्थितियों में राजनीतिक प्रतिनिधि निर्धारित करते हैं बल्कि यह उन प्रयासों को प्रस्तुत करने से भी जुड़ा हुआ है जो जनता के हितों के लिए विद्यमान परिस्थितियों को परिवर्तित करने के लिए किये जाते हैं। विकास प्रशासन निम्नलिखित को उपलक्षित करता है:

1. सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में तीव्र सुधार लाने के लिए कार्य योजनाओं को क्रियान्वित करना,

2. प्रशासनिक प्रणाली के अन्दर ही ऐसे परिवर्तन लाना जिनसे इस प्रकार की कार्य योजनाओं के कार्यान्वयन की क्षमता बढ़े।

संक्षिप्त रूप में यह कहा जा सकता है कि विकास प्रशासन के उद्देश्य इस प्रकार हैं :

(i) विकास के जरिए नवीन रणनीतियों का अनुप्रयोग,

(ii) जनसाधारण के स्तर पर विकास पर बल विकास का एक आवश्यकता अभिमुखी एवं आत्मनिर्भरता–अभिमुखी प्रक्रिया होना आवश्यक है।

(iii) इस बात पर बल की सामाजिक विकास एवं मानव पूंजी इसका एक मुख्य स्रोत है,

(iv) सुस्पष्ट एवं न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हेतु अगाध एवं द्रुतगामी परिवर्तन।

(v) विकास को केवल प्रौद्योगिक समस्या के रूप में ही नहीं अपितु एक सैद्धान्तिक नियम के रूप में भी देखा जाना चाहिए।

(vi) राजनीति तथा प्रशासन के बीच युग्मशीलता के स्थान पर समरूपता की पहचान तथा इसका मुख्य रूप से वर्णन।

(vii) दुष्प्राप्य साधनों का प्रभावशाली एवं कुशल प्रयोग।

(viii) ऐसी राजनीति जो एक ऐसे प्रशासनिक वातावरण को जन्म दे जो जनसंख्या की मौलिक आवश्यकताओं की ओर पूर्वाभिमुख हो।

(ix) प्रशासनिक यंत्र प्रणाली को कार्ययोजनाओं एवं परियोजनाओं पर निष्पक्ष एवं बिना किसी भय के अपने विचार एवं मत अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता।

5.5 प्रशासन का विकास अथवा प्रशासनिक विकास

विकास प्रशासन का कुशल एवं प्रभावशाली होना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विकास प्रशासन को अपनी प्रशासनिक योग्यताओं तथा संरचनात्मक एवं व्यवहारिक परिवर्तन के क्षेत्र को विस्तृत करना चाहिए। प्रशासन के इसी पहलू को प्रशासन का विकास अथवा प्रशासनिक विकास कहते हैं। सरल शब्दों में इसका अर्थ है प्रशासनिक सुव्यवस्थीकरण एवं संस्थान निर्माण द्वारा प्रशासनिक प्रणाली का विकास करना। इस संकल्पना के पीछे उद्देश्य केवल प्रशासनिक प्रक्रिया एवं उपकरणों का परिवर्तन करना मात्र ही नहीं बल्कि पूरे प्रशासन में ऐसे मौलिक परिवर्तन लाना है जिसमें 1. राजनीतिक विकास, 2. आर्थिक उत्पादन, तथा 3. सामाजिक परिवर्तन लाए जा सके। प्रशासन का विस्तार सामाजिक उद्देश्यों के अनुकूल होना चाहिए।

प्रशासनिक विकास का अर्थ प्रशासन में सांस्कृतिक परिवर्तन लाना भी है। औपनिवेशिक प्रशासनिक संस्कृति विकासशील देशों के परिवर्तित सामाजिक एवं राजनीतिक आचार के उपयुक्त नहीं है। ब्रिटिश विरासत ने प्रशासन पर प्रतिकूल असर डाला है। पुलिस एक्ट 1861 जैसे अप्रयुक्त विधेयक हमें परिवर्तन के पथ पर नहीं ले जा सकते। प्रशासनिक विकास का उद्देश्य होना चाहिए एक ऐसी योग्यता को जन्म देना जिसके बल पर हम अपने आपको आ रहे अथवा आने वाले परिवर्तनों के अनुरूप ढाल सकें। प्रशासनिक विकास का मुख्य लक्ष्य है कार्य व्यवस्थापन पर ध्यान रखते हुए प्रशासन का गुणात्मक एवं परिणात्मक रूपानतरण करना। यह शब्द प्रशासन में ऐसे प्रौद्योगिक परिवर्तन की ओर भी संकेत करता है जिससे प्रशासन की नई पद्धतियों को अपनाया जा सके। इस प्रकार प्रशासनिक विकास अपना ध्यान प्रशासन के अनुमूलनशीलता, स्वायत्तता एवं संबद्धता पर केन्द्रित करता है।

संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि प्रशासनिक विकास निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित है:

1. प्रशासनिक प्रणाली को ऐसे निर्णय लेने की क्षमता जिनसे पर्यावरण की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके और जो बड़े राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सके।

2. कर्मचारियों के व्यवसायीकरण तथा कार्यों के आकार, विशिष्टीकरण एवं विभाजन में बढ़ोत्तरी।

3. उपलब्ध साधनों के युक्ततम उपयोग में बढ़ती हुई प्रभावशीलता का प्रतिरूप तथा आवश्यकता पड़ने पर साधनों का और अधिक विस्तार।

4. प्रशासनिक सामर्थ्य/योग्यता एवं क्षमता में बढ़ोत्तरी।

5. बाहरी अभिप्रेरणा, उद्योग–तकनीक के हस्तांतरण एवं प्रशिक्षण द्वारा नौकरशाही का आधुनिकीकरण कर विद्यमान प्रशासनिक क्रियाविधि का एक नई यंत्र प्रणाली में रूपांतरण।

6. अभिक्रम, अभ्यास इत्यादि के स्थान पर ऐसे गुणों की स्थापना जो वास्तविक आवश्यकताओं पर निर्धारित हो।

7. पर्याप्त मात्रा में प्रशिक्षित मानव शक्ति तैयारी की विदेशी विशेषज्ञों पर निर्भरता को कम करना।

8. विकास अभिक्रम को प्रोत्साहन देना।

9. प्रशासन का पुनः नियोजन एवं युक्तिकरण।

10. आधुनिकीकरण को संस्कृति संबद्ध बनाना।

11. स्थापित संस्थाओं का पुनर्विन्यास तथा उनके प्रशासनिक अधिकारों को प्रत्यायुक्त करना।

12. ऐसे प्रशासकों का प्रबन्ध करना जो सामाजिक एवं आर्थिक सुधारों से जुड़ी कार्ययोजनाओं को स्फूर्ति देने तथा उनका संचालन करने में मार्गदर्शन करा सके, नेतृत्व प्रदान कर सके।

विकास प्रशासन के उपकरण के रूप में प्रशासनिक विकास के अर्थ एवं महत्व को कैडन ने इन थोड़े से शब्दों में बड़े सुन्दर ढंग से बताया है कि किसी भी देश में प्रशासनिक सुधार विकास के अनिवार्य उपकरण होते हैं चाहे परिवर्तन की गति एवं दिशा कोई भी हो। नई नीतियों, योजनाओं एवं धारणाओं का कार्यान्वयन करने में प्रशासनिक क्षमता का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। नौकरशाही द्वारा व्यवस्थित एवं अन्य परम्परागत तथा सुधार सम्बन्धी संस्थानों, संरचनात्मक विकल्प तथा पर्यावरण–सम्बन्धी बाधाओं की समाप्ति प्रशासनिक क्षमता में सुधार लाने के लिए आवश्यक है। इसके लिए व्यक्तिगत एवं सामूहिक मनोवृत्ति एवं अनुष्ठान में परिवर्तन करना आवश्यक होगा। नौकरशाही का व्यवहारिक प्रतिरूप विकास प्रशासन के लिए उतना ही निर्णायक एवं महत्वपूर्ण है जितना कि संस्थान तथा विन्यास। प्रशासनिक विकास का उद्देश्य प्रशासन के उस पिछड़ेपन को समाप्त करना है जो योजना बनाने तथा आर्थिक एवं सामाजिक सुधार के लिए बनाई गई हैं, समायोजित कार्ययोजनाओं को कार्यान्वित करने में सरकार के लिए बड़ी बाधा उत्पन्न हो जाती है। विकास प्रशासन की रुचि मुख्यता ऐसी विकास कार्ययोजनाओं का रूपांकन एवं संचालन करना है जो विकास उद्देश्यों को पूरा कर सके। यह एक ऐसा प्रशासन है जो कुछ स्पष्ट एवं विशेष रूप से उल्लिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुकूल है। इस प्रकार यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो कुछ पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति से अभिप्रेरित है तथा उससे पूर्वाभिमुख है।

वस्तुतः विकास का प्रशासन और प्रशासन का विकास दो ऐसी संकल्पनाएं हैं जिनका परस्पर सम्बन्ध है। यह दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर हैं। विकास का प्रशासन उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि प्रशासनिक विकास। विकास के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह अनिवार्य है कि साधनों का कुशल मूल्यांकन किया जाए, योजनाओं का कुशल सूत्रीकरण, मूल्यांकन एवं कार्यान्वयन हो, जनता का पर्याप्त आवेष्टन हो, आत्मनिर्भरता हो तथा प्रौद्योगिक परिवर्तन पर अधिक बल दिया जाए। इसके अतिरिक्त विकसित नौकरशाही, प्रशासन में सत्यनिष्ठा, अभिक्रम, नवोन्मेष, अधिकारों का प्रत्यायोजन तथा निर्णय लेने के अधिकारों के विकेन्द्रीकरण जैसे उपायों की भी आवश्यकता है। प्रशासनिक परिवर्तन एवं सुधार के बिना प्रशासनिक विकास संभव नहीं है, दोनों संकल्पनाएं एक दूसरे को धारा प्रवाह करती हैं। रिग्स के अनुसार, विकास प्रशासन एवं प्रशासनिक विकास का पारस्परिक रिश्ता वैसा ही है जैसा कि मुर्गी एवं अंडे का। यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि कौन सी संकल्पना दूसरे से वरिष्ठ है।

5.6 परम्परागत प्रशासन एवं विकास प्रशासन में अन्तर

गांट, हेडी तथा अन्य बहुत सारे विद्वानों ने विकास प्रशासन की संकल्पना परम्परागत प्रशासन से भिन्न की है। वे कहते हैं कि यह दोनों प्रकार के प्रशासन अभिप्राय, संरचना एवं व्यवस्थापन, अभिवृत्ति, योग्यता शैली तथा विधि के क्षेत्रों में एक दूसरे से भिन्न हैं। यही जान गुनेत्न के इस अवलोकन का निहित अर्थ भी है कि ''अनुकूलनात्मक समन्वय के लिए विकास दृश्य लेख में बढ़ते हुए बदलाव को ज्ञान तथा निपुणता में अधिक विविधता एवं विशिष्टीकरण तथा ऊंचे स्तर की प्रबंधकीय योग्यता आवश्यक है। प्रशासन को तीव्र गति प्रदान करने के लिए हमें प्रशासकों की ऐसी नई जाति की आवश्यकता है जिनमें उच्च्व स्तरीय योग्यता एवं दर्शनशक्ति हो और जिनमें लक्ष्य प्राप्ति के लिए आवेश हों। इसके अतिरिक्त ऐसे प्रशासकों की भी आवश्यकता है जो खतरा मोल ले सकें तथा नवीन प्रक्रियाओं को प्रस्तुत कर सकें। इस बात की भी आवश्यकता है कि हमारे अंदर समाज के गरीब वर्ग के कल्याण के प्रति अधिक भावुकता तथा राजनीतिक प्रक्रिया के प्रति अधिक संवेदनशील हो। परिणामस्वरूप विकास प्रशासन में भिन्न विशिष्टताएं होना आवश्यक है, तथा विकास प्रशासन उन उपेक्षित गुणों पर आधारित न हो जिन पर सामान्य प्रशासन परंपरागत प्रशासन तथा कानून एवं व्यवस्था प्रशासन पर ही आधारित हो। एस0पी0 वर्मा एवं एस0के0 शर्मा ने परंपरागत प्रशासन एवं विकास प्रशासन के बीच भेद को इस प्रकार बताया है:

5.6.1 पंरपरागत :

(i) यह एक व्यवस्थापकीय प्रशासन है। (सामान्य परिचालन)

(ii) यह प्रशासन दक्षताभिमुखी एवं अर्थव्यवस्थाभिमुखी है। (व्यक्तिगत कौशल पर बल)

(iii) कार्याभिमुखीकरण तथा नियम एवं प्रकिया से अनुकूलता। (खतरा न उठाने, सुरक्षा, आराम प्रतिष्ठा एवं अधिकारों के प्रति उद्विग्न)

(iv) तीव्र एवं विस्तृत सोपानक्रमिक संरचना। (यथानियम एवं प्राधिकृत अविश्वास का वातावरण)

(v) निर्णय लेने की प्रक्रिया का केंद्रीयकरण। (समस्याओं के समाधान में पिछले अनुभव मुख्य मार्गदर्शक)

(vi) यथापूर्व स्थिति को बनाये रखने पर बले (प्रबंधात्मक परिवर्तन का प्रतिरोध)

5.6.2 विकास प्रशासन

इस प्रशासन के नये कार्य एवं समस्याएं अप्रत्याशित हैं। (तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा पर्यावरण)

यह प्रबंधात्मक विकास एवं लक्ष्य प्राप्ति में प्रभावशीलता के अनुकूल हैं। (सामूहिक कौशल एवं अंतर्संग्रह सहयोग पर बल)

संबंधोभिमुखी, जिसमें कार्ययोजना के ऊंचे स्तर पर बल। (खतरा उठाने में तत्परता जिससें परिवर्तन एवं नवोन्मेष को प्रोत्साहन मिलता है)

लक्ष्य प्राप्ति की आवश्यकतायें इसकी संरचना का स्वरूप बनाती हैं। (लचीलापन तथा निरंतर परिवर्तित हो रही भूमिकायें, पारस्परिक आस्था एवं आत्मविश्वास)

निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रशस्त

(समस्याओं के समाधान में अनुभवमूलक तरीके तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में उत्कृष्ट सहायक साधनों का प्रयोग)

पर्यावरण की आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर प्रबंधात्मक विकास। (ऐसे व्यवस्थाभिमुखी प्रशासन का विकास के प्रति प्रक्रिया, अनुकूलनशील हो एवं भविष्यवाद से संबंधित हो)

पंरपरागत प्रशासन को ऐसे प्रशासन के रूप में देखा गया है जो सामाजिक स्थिरता को बनाए रखने में एवं सरकारी कामकाज की सारी कानूनी आवश्यकताओं को पूरा करने से जुड़ा है। मुख्यतः इस प्रकार का प्रशासन अपने आपको कानून और व्यवस्था बनाए रखने, राजस्व वसूल करने तथा वैधानिक आवश्यकताओं के अनुसार राष्ट्रीय जीवन को व्यवस्थित करने तक ही सीमित रखता है। विकास प्रशासन तथा पंरपरागत प्रशासन की अलग–अलग पहचान के पीछे जो धारणा है वह कि नए उभरते राष्ट्रों में प्रशासन अपना ध्यान कानून और व्यवस्था के मूल्यों से हटा कर विकास मूल्यों की ओर मोड़ ले। इस प्रकार ''जनता की सहायता एवं सहयोग से जनता के लिए ही नियोजन'' विकास प्रशासन का यह गुणात्मक लक्ष्य ही इसकी पहचान को लोक प्रशासन के परिमाणात्मक लक्ष्यों से भिन्न बनाता है। इसका यह परिणात्मक लक्ष्य है नियमानुसार काम करना। एक और बात जो विकास प्रशासन की अपनी एक अलग पहचान बनाती है वह यह है कि यह प्रशासन ''निष्क्रिय प्रणाली नहीं है''। केंद्रीय संरचना से भी अधिक महत्वपूर्ण है विशेषज्ञों से संबद्धता, तथा जनसाधारण स्तर से इसका रिस्ता। यद्यपि कुछ ऐसी तकनीकी एवं व्यवहार संबंधी पद्धतियां हैं जो हर प्रकार की व्यवस्था में समान हैं किन्तु विकास प्रशासन में साधनों को सीमित वृद्धि के उद्देश्य पर केंद्रित करने से पहले बाहरी संबंधों को आशावादी बनाना होगा। विकास प्रशासन कार्याविधि एवं संरचना से अधिक मनोवृत्ति एवं प्रक्रिया से संबंधित है।

तथापि वुड, जैसे कई विद्वान हैं जो प्रशासन को ऐसे सुस्पष्ट वर्गों में विभाजित करने के पक्ष में नहीं हैं। वुड को नीचे लिखे कारणों से इस द्विभाजन पर आपत्ती हैः

1. सरकारी कर्मचारियों का विकास करने वाले एवं विकास न करने वाले इन दो वर्गो में विभाजित करके एक वर्ग के कर्मचारियों के सम्मान को क्षति तथा दूसरे वर्ग के कर्मचारियों को लाभ एवं महत्व पहुंचा सकती है जिसके फलस्वरूप प्रशासन में नैतिक पतन आ सकता है।
2. नवीन अभिकल्पना एवं नवोन्मुख के उपेक्षा की संभावना।
3. ''विकास'' इस शब्द–पद का विश्लेषण पर्याप्त नहीं है। एक ओर तो इसको कानून और व्यवस्था एवं राजस्व वसूल करने वाले काल्पनिक तथाकथित प्रशासन का संवर्धन माना जाता है और दूसरी ओर ऐसा प्रतीत होता है इसका स्वतंत्रता एवं उपनिवेश के बाद की स्थिति से विशेष संबंध है। इन दोनों की समानता वी0ए0 पाई पांडिकर द्वारा प्रस्तुत इन तथ्यों से भी जानी जा सकती हैंः

   (i) सामान्य प्रशासन का विद्यमान ढांचा विकास प्रशासन की सुदृढ़ता एवं दुर्बलता पर निर्णायक प्रभाव डालता हैं।

(ii) सरकारी ढांचे के अंदर दोनों की सत्ता का स्रोत एक है। उदाहरणस्वरूप मंत्रीमंडल विधान मंडल के प्रति उत्तरदायित्व है।

(iii) मंडल आयुक्त एवं जिलाधीश जैसे बहुत सारे पदाधिकारी अपने सामान्य एवं विकास कार्य मिलाकर कर सकते हैं।

(iv) नागरिक प्रशासन के सारे कार्यों को एक पूर्ण इकाई के रूप में देखता एवं आंकता है तथा सामान्य एवं विकास प्रशासन में कोई भेदभाव नहीं रखता है।

द्विभाजन के प्रश्न पर मतभेद अब भी मौजूद है जिससे कारण यह भी वाद–विवाद का विषय बना हुआ है। तथापि यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि विकास कार्यों की पूर्ति के लिए प्रशासन का संपूर्ण अध्ययन आवश्यक है। नई एवं पृथक विकास अभिकरणों अथवा संस्थानों का निर्माण कानून और व्यवस्था एवं राजस्व वसूल करने वाले प्रशासन की बढ़ती हुई अक्षमता का एक और सूचक है। इसी कारण भारत के कुछ प्रांतों में विकास उपायुक्त एवं जिला विकास अधिकारी को केवल विकास प्रशासन संबंधी दायित्व ही सौंपे जाने का प्रयास किया गया है। विकास प्रशासन एवं लोक प्रशासन समानार्थक नहीं हैं, इस बात को गांट ने इन शब्दों में व्यक्त किया है:

''विकास प्रशासन का लोक प्रशासन के अन्य पहलुओं एवं विषयों से भेद किया जा सकता है, यद्यपि इसका रूप उससे पृथक एवं स्वतंत्र नहीं है। निस्संदेह कानून और व्यवस्था बनाए रखना सरकार का मुख्य कार्य दायित्व है तथा विकास के लिए मूलभूत है, यद्यपि यह विकास प्रशासन से पूर्वस्थ है और इसकी परिभाषा की परिधि में नहीं आता। इसी प्रकार शिक्षा सुविधाओं एवं अनिवार्य संचार साधनों का प्रावधान तथा न्यायिक एवं राजनायिक प्रणालियों का अनुरक्षण/पोषण विकास प्रशाासन पर अपना प्रभाव तो डालेंगे ही, किंतु उसका अविकल भाग नहीं बन पायेंगें''।

सामान्य प्रशासन की प्रचलित संरचना की प्रकृति का बड़ा प्रभाव विकास प्रशासन के कामकाज पर पड़ता है।

कानून और व्यवस्था बनाए रखने के परंपरागत दायित्व भी विकास के लिए मूलभूत हैं। जनता की बढ़ती हुई आकांक्षाओं एवं प्रशासन की बढती हुई जटिलताओं के कारण विकास प्रशासन ने उत्साहपूर्वक अनुकरण करने तथा विकास एवं कल्याण कार्यों का दायित्व अपने ऊपर ले लिया है। यह कार्य परंपरागत कार्य से सर्वथा भिन्न नहीं है। वास्तव में किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए विकास कार्य हाथ में लेने के लिए, कानून और व्यवस्था बनाये रखना एवं सुरक्षा पूर्व शर्ते हैं, परंतु विकास प्रशासन अधिक प्रशस्त, व्यापक, सहभागी, सुधार संबंधी तथा परिवर्तनाभिमुखी है। परंपरागत प्रशासन को ऐसी परिस्थितियां पैदा करनी होती हैं जिनमें विकास प्रशासन प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सके।

5.7 विकास प्रशासन के तत्व

एडवर्ड वाइडनर ने 1962 में विकास प्रशासन को ''लक्ष्य अभिमुखी'' और ''परिवर्तन अभिमुखी'' प्रशासन के रूप में निरुपित किया था। वाइडनर के अनुसार, विकास प्रशासन का सम्बन्ध विकास के लिए अधिक से अधिक नवीन प्रयोग करने से है। रिग्स के अनुसार, विकास प्रशासन उन कार्यक्रमों और परियोजनाओं को पूरा करने के संगठित प्रयासों से सम्बन्धित है, जो विकास के

उद्देश्यों की पूर्ति में संलग्न व्यक्तियों द्वारा प्रवर्तित किए जाते हैं। मार्टिन लैंडन के लिए तो विकास प्रशासन का अर्थ सामाजिक परिवर्तन लाने की कोशिश से है। वे इसे ऐसी निर्देशात्मक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, जो समय–समय पर एक निश्चित तरीके से कार्य संपादन की उम्मीद कर सकते हैं।

कई अन्य विद्वानों ने भी इस संकल्पना को परिभाषित और परिष्कृत किया है। समय के साथ इसके अर्थ का भी विस्तार हुआ है। इस कारण विकास प्रशासन की संकल्पना की ठीक–ठीक और सुस्पष्ट परिभाषा देना कठिन है। ज्यादा से ज्यादा यह समझाने की कोशिश कर सकते हैं कि इस शब्द (विकास प्रशासन) के आज के प्रयोग के अनुसार इसका क्या तात्पर्य या अर्थ है।

5.7.1 परिवर्तन अभिमुखीकरण

विकास प्रशासन परिवर्तन अभिमुखी प्रशासन है। परिवर्तन का अर्थ है किसी तंत्र या व्यवस्था का एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर गतिमान होना। परिवर्तन का विलोम है– यथापूर्व स्थिति अथवा ''जड़ता''। इसलिए विकास का प्रशासनिक तंत्र गतिशील या परितर्वनशील होता है, निश्चल या गतिहीन नहीं। विकास प्रशासन का अपना दर्शन है कि मूल्य बदलते रहते हैं। यह परिवर्तन प्रशासनिक तंत्र के लिए अपने बाहरी वातावरण का सामना करने की क्षमता बढ़ाने की एक कार्य–नीति है। इसके साथ ही यह परिवर्तन इसके आंतरिक ढांचे को क्रियाशील बनाने का साधन भी है।

5.7.2 लक्ष्य अभिमुखीकरण

जैसे कि हम ऊपर बता चुके हैं, वाइडनर की परिभाषा के अनुसार विकास प्रशासन ''लक्ष्य अभिमुखी'' प्रशासन है। कोई भी यह सीधा–सादा सवाल उठा सकता है कि क्या हर कोई प्रशासनिक प्रणाली अनिवार्यतः लक्ष्य अभिमुखी नहीं है। क्या हम प्रशासन की यह परिभाषा नहीं देते हैं कि यह एक सामूहिक मानवीय क्रियाकलाप है, जिसका उद्देश्य कुछ विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति है? हां, यह सही है कि सभी प्रशासनिक प्रणालियां इस प्रकार लक्ष्य–अभिमुखी हैं। फिर भी सामान्य लोक प्रशासन और विकास प्रशासन में अंतर यह है कि विकास प्रशासन का मुख्य ध्यान अधिक व्यवस्थित ढंग से लक्ष्यों की प्राप्ति पर है। दूसरे शब्दों में, विकास प्रशासन लोक प्रशासन का वह पहलू है, जो मुख्य रूप से लक्ष्याभिमुखी है। और जैसा कि वाइडनर ने इंगित किया है कि ये सभी लक्ष्य स्वभावतः प्रगतिशील होते हैं। इस प्रकार विकास प्रशासन प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति से सम्बन्धित है।

5.7.3 प्रगतिवाद

लक्ष्यों की ''प्रगतिशीलता'' विकास प्रशासन का सर्वमान्य लक्षण है। यह हो सकता है कि जो एक समाज के लिए प्रगतिशील हो, वह किसी दूसरे समाज के लिए प्रगतिशील न हो। फिर भी इन लक्ष्यों के प्रगतिशील स्वभाव के सम्बन्ध में अधिकांश देशों, विशेषकर विकासशील देशों में, सामान्य सहमति दिखाई देती है।

राजनीतिक प्रणालियों में ''प्रगतिवाद'' का अर्थ होगा कि लोक सरकार के कार्यों में ज्यादा से ज्यादा भाग लें, सहभागी हों। लोकतांत्रिक प्रणाली में ''भाग लेने'' या ''सहभागी होने'' का अर्थ होगा– दबाव समूहों, राजनीतिक दलों और चुनावों में स्वतंत्र मतदान प्रणाली को मजबूत बनाना तथा सरकारी मामलों

में लोकमत को अधिक आदर प्रदान करना। दूसरी ओर, किसी सर्वसत्तात्मक देश में ''सहभागिता'' वास्तविक नहीं, अधिकतर प्रतीकात्मक या सांकेतिक होगी। परन्तु दोनों प्रकार की राजनीतिक प्रणालियों में बढ़ती हुई सहभागिता से सरकारी नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों और परियोजना को बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने में आम आदमी की हिस्सेदारी अधिक होगी। इस लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत कठिन है, खासकर प्रशासनिक तंत्र के लिए। फिर भी, विकास के प्रशासनिक तंत्र से यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसी स्थितियां पैदा करे, जो विकास की प्रक्रिया में लोगों को अधिक सहभागी बनाने में सहायक हों। आर्थिक क्षेत्र में प्रगतिशील दृष्टि से तात्पर्य है कि आर्थिक विकास की गति तीव्र होगी और आय तथा सम्पत्ति का न्यायसंगत वितरण होगा। इसमें आर्थिक न्याय की दृष्टि भी सम्मिलित है, जिसके अधीन समाज के सभी वर्गों को आर्थिक विकास के समान अवसर मिलेंगे।

सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रगतिशील दृष्टि से तात्पर्य है कि समाज के सभी वर्गों को शिक्षा दी जाएगी, स्वास्थ्य सुविधाएं प्राप्त होंगी, समता और धर्म–निरपेक्षता के आधार पर सामाजिक न्याय मिलेगा और सभी सामाजिक समूहों को अपनी–अपनी विशिष्ट संस्कृति के विकास के अवसर प्राप्त होंगे।

इस प्रकार विकास प्रशासन ऐसा प्रशासन है, जिसका उद्देश्य प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक और समाजिक–सांस्कृतिक लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

5.7.4 नियोजन

नियोजन विकास प्रशासन के लिए अनिवार्य तो नहीं है, परन्तु यह (नियोजन) लक्ष्याभिमुखी परिवर्तन की संपूर्ण प्रक्रिया का अत्यन्त उपयोगी साधन है। भारतीय विद्वान, पाई पणन्दीकर, विकास प्रशासन को ''नियोजित परिर्वतन'' के प्रशासन के रूप में देखते हैं, जबकि वाइडनर का मत है कि विकास प्रशासन के लिए नियोजन एक आवश्यक शर्त हो भी सकती है और नहीं भी लेकिन, यह सत्य है कि नियेाजन एक ऐसी पद्धति है, जो मानवीय और भौतिक संसाधनों के अधिकतर उपयोग को सुसाध्य बनाती है। और निर्धन देशों में, जहां ये साधन दुर्लभ हैं, नियोजन का विशेष महत्व है। एक निश्चित अवधि में कुछ सुनिश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने के कार्यक्रम के रूप में नियोजन समय तथा विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने वाले साधनों के अधिकतम संभव उपयोग में सहायक होता है। अतएव इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि लगभग सभी विकासशील देशों ने समाजिक–आर्थिक नियोजन को विकास की रणनीति के रूप में अपनाया है। यहां तक कि विकसित समाजवादी देश भी नियोजित विकास के रचनातंत्र पर बहुत भरोसा रख रहे हैं। इसके अतिरिक्त, ग्रेट ब्रिटेन और फ्राँस जैसे पूंजीवादी विकसित राष्ट्रों में भी ''निर्देशक नियोजन'' किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

5.7.5 नवीनतावाद

समस्या समाधान के लिए विकास प्रशासन का रास्ता सिद्धान्तवादी और परम्परागत नहीं है। इसके बजाय यह उन नए ढांचों, तरीकों, प्रक्रियाओं, नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों और परियोजनाओं को जानने और अपनाने पर बल देता है जो विकास के उद्देश्यों को अधिकतम सरलता से प्राप्त करने में सहायक हों। प्रयोग और अंगीकरण विकास प्रशासन के प्रमाण चिन्ह हैं। भारत में जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (डी0आर0डी0ए0) और कमाण्ड एरिया डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन (सी0ए0डी0ए0) जैसे संगठन तथा एकीकृत ग्रामीण

विकास कार्यक्रम (आई0आर0डी0पी0) और आदिवासी क्षेत्र विकास कार्यक्रम (टी0ए0डी0पी0) जैसे कार्यक्रम इन नवीनताओं के उदाहरण हैं। उसी प्रकार कम्प्यूटर्स का इस्तेमाल, जिला आयोजन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति आदि विकास प्रक्रिया की सतत मौलिक पहुंच के उदाहरण हैं।

यह मौलिकता केवल संगठनात्मक स्तर तक सीमित नहीं है। प्रशासन में मौलिकता समूह स्तर तथा व्यक्तिगत स्तर पर भी संभव है और लक्ष्याभिमुखी परिवर्तन को प्रभावी बनाने में इसका कुल योगदान असीम हो सकता है। विकास के प्रशासनिक तंत्र पर एक ऐसा संगठनात्मक वातावरण बनाने की जिम्मेदारी है जो मौलिकता और नवीनता के अनुकूल हो।

5.7.6 संगठनात्मक प्रक्रियाओं में लचीलापन

सामान्यतया नौकरशाही प्रशासन को नियमोन्मुख प्रशासन का पर्याय माना जाता है। यद्यपि यह सत्य है कि कोई भी नौकरशाही या प्रशासन पर्याप्त नियमावली के बिना कार्य नहीं कर सकता, यह भी सत्य है कि पूर्णतया नियमोन्मुखी प्रशासन नियमों को साधन की अपेक्षा साध्य मानने के जाल में फँस सकता है। ऐसा हठधर्मी मार्ग प्रशासनिक तंत्र को जकड़ा हुआ और कठोर बना सकता है और इस प्रकार प्रशासनिक तंत्र विकास को तीव्र गति देने के अयोग्य बन सकता है। विकासोन्मुखी प्रशासन के लिए कार्य–संचालन में अनुकूलतम लचीलापन आवश्यक है। इस लचीलेपन में प्रशासक को कुछ अनोखी अथवा महत्वपूर्ण विशिष्ट प्रशासनिक परिस्थितियों में स्वविवेक से नियम लागू करने की स्वायत्तता होनी चाहिए। यद्यपि इसमें भी, लिए गए किसी भी निर्णय का उत्तरदायित्व प्रशासक पर ही होगा, तथापि संगठन के हित में प्रशासक को अपनी श्रेष्ठतम योग्यता व विवेकानुसार नियमावली को लागू करने में पर्याप्त छूट भी दी जायेगी। यह सही है कि इस तरह किसी भी विवेकाधीन अधिकार के दुरूपयोग का खतरा तो रहेगा, पर इस अल्प अपरिहार्य खतरे से विकास प्रशासन को (अपने कार्य करने हेतु अनुकूलतम) लचीला बनाने की प्रक्रिया में बाधा नहीं आनी चाहिए। अन्यथा मौलिकता और नवीनता की आदर्श धारणाएं केवल काल्पनिक कथाएं (मिथक) बनकर रह जाएंगी।

5.7.7 उच्चकोटि की प्रेरणा

प्रेरणा प्राप्त कार्मिक किसी भी ऐसे संगठन की रीढ़ है जिसका उद्देश्य निश्चित प्रगतिशील लक्ष्यों की प्राप्ति हो। विकास के प्रशासनिक तंत्र को शीर्ष, मध्य व निचले सभी स्तरों पर अत्यन्त प्रेरित कार्मिकों के दल की आवश्यकता होती है। ऐसे कार्मिकों को अभीष्ट प्रगतिशील लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए और उन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए उनमें उच्चकोटि का उत्साह होना चाहिए। उन्हें अपने संकीर्ण निहित स्वार्थों अथवा सुख साधनों के लिए समाज तथा संगठन के उच्चतम हितों की बलि नहीं देनी चाहिए।

विकास के प्रशासनिक संगठन में कार्यरत कार्मिकों को प्रेरित करने वाले कारक क्या हैं? मूलतः किसी भी ऐसे समूह पर जिसे लक्ष्यों के प्रशासनिक तंत्र को शीर्ष, मध्य व निचले सभी स्तरों पर अत्यन्त प्रेरित कार्मिकों के दल की आवश्यकता होती है। ऐसे कार्मिकों के लिए भी प्रेरणा के आधार वही रहेंगे, फिर भी इस समानता के होते हुए भी विकास के प्रशासनिक तंत्र में परिवर्तन के उदान्त परिवर्तनशील लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्मिकों में अतिरिक्त उत्साह, अतिरिक्त समर्पण और वैसा ही अध्यवसाय होना चाहिए तथा यह परिलक्षित भी होना चाहिए। यदि प्रेरित लोगों का ऐसा संवर्ग बनाना संभव नहीं हुआ तो प्रशासन के रोजमर्रा के ढर्रे पर चलने की संभावना है जिससे केवल बहुत ही थोड़ा काम हो पाएगा।

यह एक कठिन सवाल है कि विकास के प्रशासनिक संगठनों को राह दिखाने और चलाने के लिए अत्यधिक प्रेरित लोग कैसे मिलें फिर भी उचित प्रशिक्षण के द्वारा योजनाबद्ध तरीके से व्यक्तियों और समूहों को इस तरह का बनाने का यथार्थ प्रयोग करने की कोशिश की जा सकती हैं प्रेरित व्यक्तियों का एक नया वर्ग बनाने के लिए मनोवृत्ति परिवर्तन का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रभावी ढंग से प्रयुक्त किया जा सकता है।

5.7.8 लाभ–भोगी अभिमुखीकरण

विकास प्रशासन का प्रशासनिक तंत्र लाभ–भोगी अभिमुखी प्रशासन है। इसका उद्देश्य उन्हीं लोगों को अपनी सेवाओं और उत्पादन का अधिकतम लाभ पहुंचाना है, जिनके लिए संगठन बनाए जाते है। दूसरे शब्दों में विकास प्रशासन ''जन केन्द्रित'' प्रशासन है। यह अपने लाभ–भोगियों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देता है और अपने कार्यक्रम, नीतियों और कार्यकलापों की इन्हीं आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने की कोशिश करता है।

यहां प्रेरणा के अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू का उल्लेख करना उपयुक्त होगा जो किसी भी ''सेवा अभिमुखी'' या ''लाभ भोगी अभिमुखी'' प्रशासन में सर्वोपरि है। इसे विस्तार प्रेरणा कहा जाता है जिसका अर्थ है लोगों को ''मदद करने'' की प्रेरणा। मैसलो, हर्जबर्ग और मैक्लेलैंड जैसे विद्वानों ने इस संवृत्ति का विशिष्ट उल्लेख नहीं किया है पर भारतीय सामाजिक मनोवैज्ञानिक इस महत्वपूर्ण संवृत्ति को जानने और इसका विशेष उल्लेख करने में सफल रहे हैं। विस्तार प्रेरणा मान्यता यह है कि प्रत्येक मनुष्य में दूसरों के काम आने की इच्छा रहती है। लोगों में उनके समाजीकरण और अभिमुखीकरण के अनुसार इस विस्तार प्रेरणा की तीव्रता कम ज्यादा होती है। शायद यह कहने में विरोधाभास का अधिक खतरा नहीं है कि ''लाभ–भोगी–अभिमुखी'' प्रशासन में उच्चकोटि की विस्तार–प्रेरणा के कार्यकर्ता बहुत उपयोगी होंगें और वे संगठन में प्रतिक्रियाशीलता लाने के लिए प्रशासन को गतिशील बनाऐंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि विकास का प्रशासनिक संगठन ''प्रतिक्रियाशील'' संगठन है। यह उन लोगों की आवश्यकताओं, इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं के प्रति प्रतिक्रियाशील है जिनको लाभ पहुंचाना इसका अभिप्राय है। प्रतिक्रियाशीलता एक ऐसी विशेषता है जो किसी भी प्रशासनिक तंत्र के लिए लाभकारी है परन्तु विकास के प्रशासनिक तंत्र के सफल अस्तित्व हेतु यह तो मूलभूत आवश्यकता है।

5.7.9 सहभागिता

हम यह चर्चा पहले कर चुके हैं कि किसी भी समाज में प्रगतिशील राजनैतिक लक्ष्यों के लिए लोगों का सरकारी मामलों में अधिक भाग लेना अपेक्षित है। विकास के प्रशासनिक तंत्र की वास्तविकता कार्यप्रणाली में सहभागिता की धारणा का महत्व और भी बढ़ जाता है। विकास प्रशासन में विकास कार्यक्रम बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने में लोगों अथवा लाभभोगियों का सहभागी होना निहित होता है। लक्ष्य निश्चित करने, उद्देश्य निर्धारित करने, योजनाएं बनाने, कार्य की रणनीति तय करने, परियोजनाओं को क्रियान्वित करने और किए गए कार्यों का मूल्यांकन करने यानी सभी विकास प्रक्रियाओं में लाभभोगियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि भारत में विकास प्रशासन में ब्लाक स्तर और जिला स्तर आयोजन का महत्व बढ़ रहा है। लोगों की भागीदारी न केवल नीतियों और योजनाओं को यथार्थवादी तथा जमीन से जुड़ा हुआ बनाने में सहायक होती है, बल्कि यह भागीदारी जनशक्ति, समय और धन की न्यूनतम लागत पर विकास कार्यक्रमों

को क्रियान्वित करने में जनसहयोग और जन समर्थन को भी गति प्रदान करती है।

विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी तीन बातों पर निर्भर है। ये हैं :

(i) भागीदारी की योग्यता– यह योग्यता उनकी औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के स्तर पर निर्भर है।

(ii) भागीदारी की तत्परता– यह तत्परता व्यक्तियों, समूहों और समाज के सामाजिक–मनोवैज्ञानिक ढांचे पर निर्भर है।

(iii) सरकारी संगठनों द्वारा लोगों को भागीदारी के अवसर देना– अवसरों के अभाव से भागीदारी कम हो सकती है।

भागीदारी विकेन्द्रीकरण की एक महत्वपूर्ण सहगामिनी है। विकास का प्रशासनिक तंत्र कार्य व अधिकार सौंपने तथा राय–सलाह लेने की रणनीति का प्रभावी ढंग से उपयोग करता है और इस प्रकार प्रशासन को ''आधार'' उन्मुखी बनाता है। सरकारी अधिकारियों द्वारा लोगों का तत्पर सहयोग मांगा जाता है और सहयेाग के लिए उन्हें प्रेरित किया जाता है। यह सहयोग विकास प्रशासन की प्रक्रिया को सफल बनाने का एक प्रभावशाली साधन होता है।

5.7.10 प्रभावी एकीकरण

सामान्य विकासात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अधिकारियों और समूहों के दल को साथ–साथ लाने के लिए प्रशासनिक संगठन में एकीकरण करने की उच्चकोटि की क्षमता आवश्यक है। वस्तुतः उच्चकोटि का समन्वय या एकीकरण विकास प्रशासन की विशेषता है। यदि एकीकरण का स्तर नीचा है तो विकास के प्रतिफलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना रहेगी।

विकास की प्रशासनिक स्थिति में विभिन्न संगठनों और इकाईयों के बीच, विभिन्न पदों और कार्यकर्ताओं के बीच तथा लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उपलब्ध संसाधनों के बीच, विभिन्न स्तरों पर समन्वय प्रभावी करना आवश्यक है। समन्वय के अभाव में संसाधनों की बरबादी और प्रभावशीलता की कमी ही होगी।

जैसा कि सभी जानते हैं हर विकासशील समाज विशिष्ट कार्यों को शुरु करने के लिए अपने आप को सुसज्जित करने हेतु ढांचों की प्रचुरता का अनुभव करता है। परन्तु सामान्यतः होता यह है कि कार्यों और ढांचों का विशिष्टीकरण बढ़ जाता है और इनमें वांछित समन्वय भी नहीं होता है। विशिष्टीकरण और समन्वय के बीच के इस अन्तर को ''एकीकरण विलम्ब'' कहा जाता है। फ्रेड रिग्स उस समाज को ''समपार्श्वीय'' कहते हैं जहां एकीकरण (समन्वय) का स्तर विभेदीकरण (विशिष्टीकरण) के स्तर से कम हो। ''समपार्श्वीय'' समाज में– 'आई'/'डी' (आई से तात्पर्य है इन्टीग्रेशन लॉग यानि एकीकरण विलम्ब और 'डी' से तात्पर्य है डिवलपमेंट यानी विकास)।

अतः सार रूप में विकास प्रशासन अनिवार्य रूप से एक व्यक्ति–परक प्रशासन है। इसकी प्रमुख भूमिका लोगों की सेवा करना है।

5.7.11 सामना करने की क्षमता

विकास का प्रशासनिक तंत्र एक 'खुला' तंत्र है। इसे वातावरण से ही संचालन साधन निवेश प्राप्त होते हैं और यह अपने उत्पादन, यथा निर्णयों और कार्यों के माध्यम से, प्रतिक्रिया दिखाने का प्रयास करता है। निस्संदेह तंत्र और

उसके वातावरण के बीच लगातार पारस्परिक क्रिया होती रहती है और सम्बन्धों की यह पारस्परिकता विकास प्रशासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

विकास का प्रशासनिक तंत्र एक वातावरण में कार्य करता है जिसमें इसके अपने उप–ढांचे होते हैं। उदाहरणार्थ, विकास प्रशासन को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक (टेक्नोलॉजीकल सहित) वातावरणों में काम करना होता है। स्पष्टतः इन वातावरणों का प्रभाव विकास प्रशासन के कार्यो और प्रभावशीलता की प्रकृति को भी प्रभावित करता है। राजनैतिक वातावरण परिवर्तन की मांग करता है और गतिशीलता का दिशा–निर्देशन करता है; आर्थिक वातावरण प्रशासनिक तंत्र की कार्य सूची की रूपरेखा प्रस्तुत करता है और उस पर साधनों का प्रतिबन्ध या दबाव लागू करता है; सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था उस वातावरण का निर्माण करती है जिसमें विकास के प्रशासनिक तंत्र को कार्य करना है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि विकास प्रशासन केवल एक परालम्बी परिवर्ती है और वातावरण को प्रभावित करने के लिए इसका अपना कोई रचनातंत्र नहीं है। मूलतः विकास प्रशासन की प्रक्रिया पारस्परिक क्रियावादी है और इसे केवल एकदिशीय प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करना चिन्तकों की गलती होगी।

इस सन्दर्भ में एक बात स्पष्ट है, विकास प्रशासन को अपने वातावरण से पैदा होने वाली मांगों और चुनौतियों का उत्तर देना होता है। कभी–कभी ये चुनौतियां संयत और सन्तुलित होती हैं और विकास के प्रशासनिक तंत्र पर अधिक भार नहीं डालती हैं। तथापि यदा–कदा चुनौतियां गंभीर होती हैं और प्रशासनिक तंत्र की सम्मुखीकरण क्षमता यानी उनका सामना करने की सामर्थ्य पर काफी भार डालती हैं, उस सामर्थ्य का परीक्षण करती हैं। यह प्रयास वातावरण के प्रति अधिक संवेदनशीलता और प्रतिक्रिया तथा अपने प्रशासनिक ढांचों, व्यवहार और प्रक्रियाओं को मजबूत बनाने की प्रक्रियाओं के माध्यम से किया जाता है। इसे ''प्रशासनिक विकास'' कहा जाता है। विकास प्रशासन ''लक्ष्योभिमुखी'', ''परिवर्तन अभिमुखी'', प्रगतिशील, योजनाबद्ध, नवीनतावादी, लचीला, प्रेरणात्मक, लाभभोगी अभिमुखी, सहभागितावादी है और यह उच्चकोटि का एकीकृत प्रशासनिक तंत्र है जिसमें पर्याप्त सम्मुखीकरण क्षमता है।

5.8 विकास प्रशासन के साधन

विकास की समस्याएं बहुत सी हैं और विकासात्मक कार्यों की जटिलताएं भी विविध हैं। विकासात्मक लक्ष्यों को चरितार्थ करने के लिए केवल प्रशासनिक तंत्र पर निर्भर रहना अत्यधिक कठिन है इसके लिए अन्य साधनों के उपयोग की भी आवश्यकता है। हम उन चार महत्वपूर्ण साधनों का परीक्षण करेंगे जिनका उपयोग विकास के लक्ष्यों को चरितार्थ करने के लिए किया जा सकता है। वे हैं :

1. प्रशासनिक तंत्र
2. राजनैतिक संगठन
3. ऐच्छिक संस्थाएं
4. जन–संगठन

5.8.1 प्रशासनिक तंत्र

किसी भी देश का लोक प्रशासन विकास नीतियों और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने का अपरिहार्य साधन है। प्रशासनिक तंत्र विशिष्ट सेवाएं

सम्पन्न करता है और बहुत प्रकार के विकासात्मक और गैरविकासात्मक कार्य भी संभालता है। चूंकि प्रशासनिक तंत्रों में विशिष्ट निपुणता और समृद्ध अनुभव होता है इसलिए विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में इस साधन पर निर्भरता बहुत है। परन्तु लक्ष्यों की संख्या के कारण अन्य साधनों का सहयोग प्राप्त करना भी आवश्यक है।

5.8.2 राजनैतिक संगठन

राजनैतिक दल विकास कार्यक्रमों को समर्थन देने के लिए लोगों को तैयार करते हैं। राजनैतिक दल सामाजिक संघर्षों का समाधान करते हैं और विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसलिए राजनैतिक संगठन को विकास प्रशासन का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है।

5.8.3 ऐच्छिक संस्थाऐं

अर्न्तवर्तीय समाजों में हमेशा जनता और सरकारी तंत्र के बीच अन्तर रहेगा। विकास की प्रक्रिया को तेजी से आगे बढ़ाने के लिए इस खाली जगह को भरा जाना चाहिए। इस खाली जगह को भरने में ऐच्छिक संस्थाऐं बहुत ही निर्णायक और महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। प्रेरणा का उच्च स्तर, संगठन और संगठन द्वारा अपनाए जाने वाले मार्ग में लचीलापन इन संस्थाओं की राजनैतिक प्रकृति, उद्देश्यों के प्रति वचनबद्धता आदि इन संस्थाओं को विकास कार्य संभालने के योग्य साधन बनाते हैं।

5.8.4 जन संगठन

विकास में लोगों की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी (सहभागिता) अपेक्षित होती है। भागीदारी निर्णय लेने के स्तर पर, अथवा क्रियान्वयन में या लाभ वितरण में अथवा कार्यों के मूल्यांकन में हो सकती है। इसके लिए कौशल/कुशलता के साथ–साथ कार्य के प्रति समर्पण की अपेक्षा होती है और इसके लिये जन–आन्दोलन आवश्यक है। जन संगठन विकास की प्रक्रिया तथा सामाजिक परिवर्तन की गति को तेज करने में सहायक होते हैं।

हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि विकास की रणनीति केवल राष्ट्र निर्माण और सामाजिक आर्थिक प्रगति की एकांकी रणनीति पर निर्भर नहीं रह सकती है। इसके लिए हमें सभी साधनों अथवा विभिन्न–साधनों के गठजोड़ का प्रयोग करना होगा।

इसके अतिरिक्त ऐसे कई प्रशासनिक पद हैं (जैसे कि भारत में डिस्ट्रिक्ट कलेक्टर और चीफ सेक्रेटरी) जो विकासात्मक कार्यों के साथ–साथ परम्परागत कार्यों को करने में उलझे रहते हैं। उनके कार्यों को अलग–अलग करने की कोशिश ज्यादा से ज्यादा शैक्षिक प्रासंगिकता की बात होगी। दूसरे शब्दों में व्यावहारिक रूप में इनके कार्यों को अलग–अलग करना संभव नहीं है।

इसलिए सर्वाधिक स्वीकार्य मार्ग यह होगा कि विकास प्रशासन को प्रशासन का एक ऐसा प्रकार माना जाए, जिसके अपने अलग सुस्पष्ट लक्षण तो हैं पर जिसे सामान्य प्रशासन से अलग कर नहीं देखा जा सकता है।

5.9 सारांश

यहां यह कहना उचित होगा कि विकासशील देशों में परिवर्तन और प्रशासन की गतिशीलता की छानबीन के लिए विकास प्रशासन एक उपयुक्त

साधन साबित हुआ है। यह ठीक है कि प्रशासन विकास आकांक्षाओं को पूरी तरह नहीं कर सका है। परन्तु विकास प्रशासन विकास की आवश्यकताओं और प्रशासनिक प्रतिक्रियाओं में अन्तर कम करना चाहता है। यह विभिन्न देशों में विकास और पर्यावरण के क्षेत्र में कुछ समान विषयों पर भी अपना ध्यान केंन्द्रित किए हुए है। इसलिए यह विकास संगठन सिद्धांत की ओर अपना योगदान देता है। यह हमें निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने में सहायता देता है–

1. ग्राहक का स्थान क्या है?
2. उनकी आवश्यकताओं को कैसे पहचाना है?
3. एक नई सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में कौन से संरचनात्मक और व्यवहारिक परिवर्तनों की आवश्यकता है? यह व्यवस्था मानव प्रतिष्ठा, बन्धुत्व और समानता के सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए?
4. समाज और प्रशासन में आवश्यक परिवर्तन कैसे लाया जाए?
5. प्रशासनिक और राजनीतिक क्षमताओं का स्तर कैसे बढ़ाया जाए?

5.10 प्रमुख शब्दावली

दबाव समूह : एक ऐसा हितसाधक समूह जिसका केन्द्रीय सरकार पर काफी प्रभाव हो और जो अपने हितों के लिए दबाव डालने में समर्थ हों।

सर्वसत्तावादी : ऐसे राज्य को सर्वसत्तावादी कहते हैं जिसके उद्देश्य, कार्य तथा सभी संस्थाओं की सदस्यता राजय के नियंत्रक के अधीन हों।

5.11 बोध प्रश्न

1. (1) विकास प्रशासन की परिभाषा दीजिए और इसका अर्थ समझाइये।
   (2) लक्ष्य–अभिमुखीकरण क्या है?
   (3) विकास प्रशासन में सहभागिता कैसे महत्वपूर्ण है?

2. (1) प्रशासनिक विकास, विकास प्रशासन का ही एक अनिवार्य उप परिणाम है विवेचन कीजिए।
   (2) विकास प्रशासन परम्परागत प्रशासन से किस प्रकार भिन्न है?
   (3) विकास प्रशासन के साधन क्या हैं?

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) भाग 5.6 देखिए।
   (2) भाग 5.6.2 देखिए।
   (3) उपभाग 5.6.9 देखिए
2. (1) भाग 5.5.1 और 5.5.2 देखिए।

(2) भाग 6.4 देखिए।

(3) उपभाग 5.7 देखिए

5.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अरोड़ा, रमेश के 1985, कम्परेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशनः एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

रिग्स, फ्रेड (सम्पादित) 1970, फ्रंटियर्स ऑफ डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशनः कान्स एण्ड प्राबलम्स, सिरेकुस यूनिवर्सिटी प्रेस, सिरेकुस।

स्वेर्डलो, इरविंग, 1968, डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशनः कान्स एण्ड प्राबलम्स, सिरेकुस यूनिवर्सिटी प्रेस, सिरेकुस।

वर्मा एस.पी. और शर्मा एस. के. (सम्पादित) 1983, डेपलेपमेंट एडमिनिस्ट्रेशनः आई.आई.पी.ए., नई दिल्ली।

वेडनर, एडवर्ड (सम्पादित) 1970, डेपलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन इन एशियाः एन.सी. ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, दरहम।

इकाई– 6

नवीन लोक प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 फिलाडेल्फिया सम्मेलन

6.3.1 मिन्नोब्रुक सम्मेलन

6.3.2 नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएं

6.3 परिवर्तन तथा प्रशासनिक अनुक्रियाशीलता

6.3.1 तर्क–संगति

6.3.2 प्रबन्धक–कर्मचारी सम्बन्ध

6.3.3 संरचनाएं

6.3.4 लोक प्रशासन में शिक्षा

6.4 नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य

6.4.1 प्रासंगिकता

6.4.2 मूल्य

6.4.3 सामाजिक समता

6.4.4 परिवर्तन

6.5 नवीन लोक प्रशासन पर टिप्पणियाँ

6.6 सारांश

6.7 प्रमुख शब्दावली

6.8 बोध प्रश्न

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य

- नवीन लोक प्रशासन का महत्व समझ सकना,
- नवीन लोक प्रशासन का परिप्रेक्ष्य बता सकना,
- नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएं बता सकना, और

- विकासशील समाजों के लिए नवीन लोक प्रशासन की प्रासंगिकता समझना है।

6.2 प्रस्तावना

लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार में सुधार के लिए बुद्धिजीवियों में व्यक्तिगत स्तर पर एवं विद्वानों और प्रशासकों के साझे मंच पर पुनर्विचार प्रारम्भ हुए। उदाहरण के लिए एफ.सी. मोशर ने 1967 में एक पुस्तक, ''गवर्नमेण्टल री–आर्गनाइजेशन : केसिज एण्ड कमेंटरीज'' संपादित की, जिसमें प्रशासनिक क्षमताओं एवं उत्तरदायित्व को मजबूत करने के उद्देश्य से प्रशासनिक पुनर्गठन एवं सुधार की साझी समस्या को उठाया गया था। प्रशासनिक परिवर्तन के किसी निश्चित प्रारूप के बारे में विभिन्न मंचों पर हुई चर्चा पर कोई सर्व–स्वीकृत विचार प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु फिर भी, लोक प्रशासन के सिद्धान्त व व्यवहार में परिवर्तन के विषय में तेजी से बदलते परिवेशों के अनुकूल बहुत से महत्वपूर्ण दृष्टिकोण सामने आए। परिवर्तन की इसी चाह के परिणामस्वरूप अमरीका में बहुत से सम्मेलनों का आयोजन हुआ। इन सम्मेलनों में 1967 में फिलाडेल्फिया और 1968 में मिन्नोब्रुक सम्मेलन सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अमरीका में परिवेश के तेज परिवर्तनों ने उसे अधिक सम्पन्नता और शक्ति प्राप्त करने में मदद की। परन्तु उसी समय जनता के विभिन्न वर्गों में अधिक से अधिक सामाजिक तनाव व असंतोष बढ़ने लगा। ये सामाजिक असंतोष व विरोध मुख्यतः अल्प–संख्यकों, बेरोजगारों और कुछ अति संवेदनशील युवकों के समूहों तक सीमित रहे जो निर्वाचित अधिकारियों, प्रशासकों, बुद्धिजीवियों व सार्वजनिक नेताओं के लिए चिंता का विषय बन गए। चुनौती भरी सामाजिक और तकनीकी समस्याओं के समाधान के प्रश्न को लेकर काफी सार्वजनिक बहस और विचार–विमर्श हुआ। नीतियों और संस्थाओं में बहुत से परिवर्तन लाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई और राजनीतिक व प्रशासनिक क्षमताओं को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से तेजी से बदलते हुए आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, तकनीकी व मानवीय परिवेशों का सामना करने की दृष्टि से कुछ अन्य सुधारों या परिवर्तन पर बहस हुई।

6.3 फिलाडेल्फिया सम्मेलन

लोक प्रशासन के सिद्धान्त व व्यवहार के बारे में इस सम्मेलन में अभिव्यक्त मुख्य विचारों का सारांश निम्नलिखित है :

1. सीमित कार्य वाले राज्य के एक कल्याणकारी राज्य के रूप में क्रमिक परिवर्तन के साथ–साथ सरकार के कार्यों व दायित्वों में अत्यधिक वृद्धि हुई, जिसका निहित अर्थ हुआ प्रशासन के कार्यों और आयामों में वृद्धि, चूंकि यह वृद्धि एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। अतः लोक प्रशासन के अध्ययन की कठोर सीमाएं तय करना गलत होगा। इसके विकास को आसान बनाने के लिए इस विषय का क्षेत्र लचीला होना चाहिए, जबकि यह स्पष्ट है कि प्रशासक मुख्य रूप से नीति के कार्यान्वयन से सम्बन्धित होने के अलावा, एक सलाहकार के रूप में नीति–निर्माण की प्रक्रिया में शामिल होता है। इसलिए नीति और प्रशासन के बीच और फिर सरकार के अध्ययन व लोक प्रशासन के अध्ययन के बीच द्विविभागीकरण का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।
2. प्रशासनिक संगठनों में आंतरिक प्रक्रियाओं व पदसोपानक्रम की पूर्णता पर बहुत अधिक बल देने से प्रशासनिक निष्पादन में ऐसी कठोरताएं

उत्पन्न होती हैं जो तेजी से बदलते परिवेशों में उसकी प्रासंगिकता और क्षमता से दूर ले जाती है तथा इसलिए संगठनात्मक नवीनता एवं प्रबन्धात्मक नमनीयता उचित है।

3. लोक प्रशासन के विषय एवं व्यवहार का अधिक ध्यान शहरी दरिद्रता व गंदगी, बेरोजगारी, गरीबी, वातारण सम्बन्धी प्रदूषण और गिरते स्तर की सामाजिक समस्याओं की ओर होना चाहिए।

4. समाज (जनता) के वर्गों के बीच काफी सामाजिक व आर्थिक असमानताएं हैं। इसलिए सामाजिक समता पर उचित ध्यान देना चाहिए। कार्य–कुशलता और उत्तरदायित्व के मौजूदा मूल्यों के साथ–साथ समता को प्रशासनिक मूल्य के रूप में बढ़ावा देने के लिये एक पुनर्गठित प्रशासन में लोगों की प्रशासनिक निर्णयों–निर्माण व क्रियाकलापों में भागीदारी को संस्थागत रूप में स्थापित किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह भी है कि लोक प्रशासन के अध्ययन के विषयों में सामाजिक समता भी एक विषय होना चाहिए।

5. लोक प्रशासन में प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं शिक्षा का उद्देश्य मात्र प्रबन्धात्मक योग्यताओं व तकनीकी निपुणताओं का विकास न होकर विभिन्न सरकारी एजेंसियों में कार्यरत सार्वजनिक कार्मिकों, प्रशिक्षणार्थियों व विद्यार्थियों में सामाजिक संवेदना या चेतना को गहरा करना होना चाहिए। इसके अलावा गलत व्यवहार व भ्रष्टाचार के अवसरों को कम करने के उद्देश्य से शिक्षा कार्यक्रमों में प्रशासनिक आचार पर उचित बल देने की आवश्यकता है।

6.2.1 मिन्नोब्रुक सम्मेलन

देश में सरकार व सामाजिक प्रणाली के सामने चुनौतीपूर्ण समस्याएं पेश करने वाले तेजी से बदलते परिवेशों के संदर्भ में लोक प्रशासन के अध्ययन व व्यवहार की प्रसंगिकता का आलोचनात्मक पुनरावलोकन करने के लिए एक वर्ष पश्चात् 1968 में तुलनात्मक रूप से युवा विद्वान एवं प्रशासक मिन्नोब्रुक में एकत्र हुए। वहां पर कई दृष्टिकोण अभिव्यक्त किए गए। यद्यपि ये दृष्टिकोण फिलाडेल्फिया सम्मेलन में व्यक्त या कभी–कभी शिक्षाविदों द्वारा अभिव्यक्त विचारों से अधिक भिन्न नहीं थे, परन्तु जिस भावावेशपूर्ण ढंग से विचार–विमर्श हुआ वह मिन्नोब्रुक सम्मेलन की एक अलग विशेषता थी।

इसके अतिरिक्त, बाद में अपने दृष्टिकोणों का वेग बनाये रखने और सार्वजनिक प्रचार या सूचना के उद्देश्य से उनकी व्याख्या करने के उद्देश्य से भागीदारों की छोटी–छोटी समूह–बैठकें हुईं। इन युवा भागीदारों द्वारा अभिव्यक्त विभिन्न दृष्टिकोणों का सारांश था– पुरातन सिद्धान्त के मूल्य निरपेक्ष कार्य कुशलता के दृष्टिकोण के स्थान पर आदर्श दृष्टिकोण का समर्थन करना। आदर्श दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि सरकारी प्रशासन का उद्देश्य आर्थिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक परेशानियों को कम करना तथा सरकारी कर्मचारियों व नागरिकों के लिए जीवन–अवसरों को बढ़ावा देना चाहिए। अन्य शब्दों में, लोगों से सम्बन्धित वर्गों को प्रयोग और उपभोग के अभाव व इच्छाओं और सामाजिक अयोग्यताओं या असमर्थताओं से मुक्त करना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए यह प्रस्तावित किया गया कि प्रशासनिक संगठनों व प्रशासनिक प्रणालियों को निरंतर बदलते परिवेशों में ढालना चाहिए और प्रशासनिक प्रभावशीलता को सुधारने के लिए प्रशासनिक प्रक्रियाओं में नागरिकों या अन्य समुदाय की भागीदारी को बढ़ावा देना चाहिए।

1968, 1988 तथा 2008 में मिनोब्रुक सिरक्यूज विश्वविद्यालय में आयोजित सभी तीनों सम्मेलनों में नए लोक प्रशाासन के दर्शन और मूल्यों को चिन्हित करने के लिए जोर दिया गया।

6.2.2 नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएं

मिन्नोब्रुक सम्मेलन तथा उसके बाद भावावेश में अभिव्यक्त लोक प्रशासन के प्रति नवीन दृष्टिकोण की मुख्य विशेषताओं का जॉर्ज फ्रैडरिक्सन ने अपने बहुत से लेखों में सार दिया है। उनके अनुसार, सामाजिक समता वह मुख्य संकल्पना है, जिस पर नवीन दृष्टिकोण के समर्थक एक अतिरिक्त प्रशासनिक मूल्य के रूप में बल देते हैं। यहां तक कि उन्होंने अपनी एक पुस्तक का शीर्षक भी नवीन लोक प्रशासन रखा। उनके अनुसार, नवीन लोक प्रशासन की विभिन्न विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

6.3 परिवर्तन तथा प्रशासनिक अनुक्रियाशीलता

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व तकनीकी परिवेश तेजी से बदल रहे हैं। अतः प्रशासनिक संगठनों को भी एक स्पष्ट मानदंड का विकास करना चाहिए, जिससे कि उनके निर्णयों व कार्यों की प्रभावशीलता व प्रासंगिकता को बदलते हुए संदर्भ में आंका जा सके। उन्हें अपने भीतर नियमित रूप से उचित परिवर्तन लाने का भी कोई उचित साधन व प्रक्रिया का निर्माण करना चाहिए जिससे वह परिवेशों के प्रति अनुक्रियाशील हो सके। दूसरे शब्दों में, प्रशासनिक प्रणाली तथा उसके प्रत्येक विभाग और अभिकरणों में संगठनात्मक व संक्रियात्मक सोच होनी चाहिए, जिससे कि वह परिवेशीय परिवर्तनों के अनुसार अपने को ढाल सके।

6.3.1 तर्क–संगति

लोक प्रशासन में प्रशासनिक निर्णयों और कार्यों के मुख्य आधार के रूप में तर्क–संगति पर काफी बल दिया गया है, परन्तु यह तर्क–संगति वास्तव में प्रशासक की तर्क–संगति होती है न कि जैसी लोग उसकी व्याख्या करें। इसी प्रकार प्रशासक द्वारा नागरिकों से न केवल प्रस्तावित कार्य के विषय में, बल्कि क्या किया जाना चाहिए और किसके द्वारा किया जाना चाहिए के प्रश्न पर भी सलाह लेना आवश्यक है।

6.3.2 प्रबन्धक–कर्मचारी सम्बन्ध

यह सत्य है कि एक प्रशासनिक संगठन में मानव–सम्बन्धी दृष्टिकोण से कर्मचारियों में उत्पादकता (कुशलता) और मनोबल, दोनों बढ़ते हैं, परन्तु ये स्वयं में एक साध्य नहीं हैं। नागरिकों का मुख्य उद्देश्य उन प्रशासनिक कर्मचारियों के कार्य–निष्पादन और मनोवृत्तियों से संतुष्ट होना है, जिनका एक संगठन में मनोबल और उत्पादकता मानव–सम्बन्धी दृष्टिकोण के कारण बढ़े हों।

6.3.3 संरचनाएं

संगठनात्मक संरचना के प्रति एक गतिशील दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए उचित विकेन्द्रीकरण और नियंत्रण व अधीनस्थ पद सोपानों में सुधार/परिवर्तन का निरन्तर पुनरावलोकन करने की

आवश्यकता है, जिससे परिवेशों की बदलती आवश्यकताओं के संदर्भ में संरचना प्रासंगिक बन सके। दूसरे शब्दों में, पोस्डकार्ब पर आधारित किसी मानवीकृत संगठनात्मक संरचना अथवा लोक प्रशासन के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण के समर्थकों द्वारा जिन अन्य सिद्धान्तों पर बल दिया गया है, उनकी अपेक्षा संगठनों की उपर्युक्त सूची में से वैकल्पिक संरचनाओं का चुनाव किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए छोटे विकेन्द्रीकृत और लचीले पद सोपानक्रम ऐसे प्रशासनिक संगठनों के अनुकूल हो सकते हैं, जिनका सम्बन्ध जनता या उसके कुछ भागों की निजी चिन्ता के कार्यक्रमों से हो।

6.3.4 लोक प्रशासन में शिक्षा

लोक प्रशासन का विषय ज्ञान की बहुत सी धाराओं जैसी संकल्पनाएं, विचार और अन्तर्दृष्टि द्वारा समृद्ध किया गया है। विविधता इस विषय की विशेषता है। प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण, मानव–सम्बन्धी दृष्टिकोण, राजनीतिक दृष्टिकोण और जन–भागीदारी या चयन दृष्टिकोण इसके विकास में योगदान कर रहे हैं और यह इसी प्रकार होना भी चाहिए, चूंकि सार्वजनिक मामले या विषय, जिनसे सरकार जुड़ी है, काफी विविध और जटिल हैं, कोई भी एक दृष्टिकोण या सिद्धान्त अथवा संकल्पना इसके औचित्य को समझने या कार्य का मार्ग–दर्शन करने में पर्याप्त नहीं होगी।

6.4 नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य

नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धी साहित्य के चार मुख्य लक्ष्यों–प्रासंगिकता, मूल्य, समता और परिवर्तन–पर बल दिया गया है।

6.4.1 प्रासंगिकता

लोक प्रशासन ने सदैव कार्यकुशलता व मितव्ययता पर बल दिया है। लोक प्रशासन की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह समकालीन समस्याओं और मुद्दों के विषय में बहुत कम बात करता है। मिन्नोब्रुक सम्मेलन में प्रतिनिधियों ने नीति–उन्मुख लोक प्रशसन की आवश्यकता पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और इस बात पर प्रकाश डाला कि लोक प्रशासन को सभी प्रशासनिक कार्यों के राजनीतिक एवं आदर्श निहित अर्थों एवं तात्पर्यों पर स्पष्ट रूप से विचार करना चाहिए। प्रांसगिकता का दूसरा पहलू जिसके बारे में आवाज उठाई गई वह था लोक प्रशासन का ज्ञान। मिन्नोब्रुक सम्मेलन में निम्नलिखित कुछ प्रश्न उठाए गए :

1. किन प्रश्नों का अध्ययन किया जाना चाहिए और कैसे किया जाना चाहिए के विषय में चुनाव का निर्णय करने के लिए हम किन मानदण्डों का प्रयोग करते हैं?
2. हमारे लिए हमारे प्रश्नों और वरीयताओं को कौन निर्धारित या परिभाषित करता है?
3. लोक प्रशासन में सामाजिक ज्ञान व नैतिक निहितार्थों के विषय में हम किस सीमा तक जागरुक हैं?
4. सामाजिक व राजनीति विज्ञान के रूप में लोक प्रशासन के क्या उपयोग हैं?
5. क्या लोक प्रशासन वर्तमान में ऐसा ज्ञान पैदा करता है जो समाज में कुछ निश्चित संस्थाओं के लिए (सामान्यतः प्रभुत्वशाली) उपयोगी हो,

दूसरों के लिए नहीं? लोक प्रशासन में यथास्थिति को चुनौती देते हुए ये बहुत ही ध्यान बंटाने वाले प्रश्न हैं।

6.4.2 मूल्य

नवीन लोक प्रशासन स्पष्ट रूप से आदर्शात्मक है। यह परंपरावादी लोक प्रशासन के मूल्यों को छिपाने के व्यवहार तथा प्रक्रियात्मक तटस्थता को अस्वीकार करता है। मिन्नोब्रुक सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने यह स्पष्टतः कहा कि मूल्य के प्रति तटस्थ लोक प्रशासन असंभव है। उन्होंने बल दिया कि सार्वजनिक अधिकारियों को कम सुविधा प्राप्त लोगों के हितों का समर्थन करना है।

6.4.3 सामाजिक समता

लोक प्रशासन को यथास्थिति के यंत्र के रूप में दिखाया गया है, जो कम विशेषाधिकार प्राप्त समूह को सामाजिक न्याय प्रदान नहीं करता। नवीन लोक प्रशासन के अग्रणी नेता सामाजिक समता के सिद्धान्त पर बल देते हैं। लोक प्रशासन का उद्देश्य इस सिद्धान्त की प्राप्ति होना चाहिए। फ्रडरिक्सन स्वयं सामाजिक समता की व्याख्या काफी साहस के साथ करते हुए कहते हैं, ''वह लोक प्रशासन जो परिवर्तन लाने में असफल है, जो अल्प–संख्यकों को दूर करने का प्रयास करता है, संभवतः उसका प्रयोग अंततः उन्हीं अल्प–संख्यकों को कुचलने के लिए किया जायेगा।'' जन–केन्द्रित प्रशासन नवीन लोक प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य है। सार्वजनिक सेवाओं के अधिक कारगर और मानवीय वितरण के हित में अन्य उद्देश्य– अनौकरशाहीकरण लोकतांत्रिक निर्णय–निर्माण और प्रशासनिक प्रक्रियाओं का विकेन्द्रीकरण।

फ्रैडरिक्शन ने लिखाः नवीन लोक प्रशासन सामाजिक समानता को शास्त्रीय उद्देश्यों और तर्कों से जोड़ता है।

6.4.4 परिवर्तन

सामाजिक समता की प्राप्ति के लिए लोक प्रशासन द्वारा परिवर्तन को बढ़ावा देना आवश्यक है। लोक प्रशासन के शक्तिशाली हित समूहों के प्रभुत्व में आने से रोकने के लिए भी परिवर्तन आवश्यक है। नवीन लोक प्रशासकों द्वारा लाए हुए परिवर्तन को प्रशासनिक जीवन के एक चिर सत्य के रूप में समझना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में पूर्ववर्ती प्रशासन की अपेक्षा ''जातिगत'' कम और ''सार्वजनिक'' अधिक होना चाहिए तथा ''वर्णनात्मक'' कम और ''आदेशात्मक'' अधिक व ''संस्था–उन्मुख'' कम और ''जन प्रभाव–उन्मुख'' अधिक तथा ''तटस्थ'' कम और ''आदर्शात्मक'' अधिक होना चाहिए और यह भी आशा की जाती है कि उसका दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक होगा।

6.5 नवीन लोक प्रशासन पर टिप्पणियाँ

एलन कैम्पबैल के अनुसार, नवीन लोक प्रशासन के समर्थकों द्वारा जो विषय बड़े जोर–शोर के साथ सामने लाए गए थे, उनमें से अधिकांश नए नहीं थे। ये विषय समय–समय पर दूसरे विद्वानों द्वारा उठाए गए थे, परन्तु यह सच है कि ये विषय नवीन लोक प्रशासन के प्रतिपादकों द्वारा अधिक बल तथा सामाजिक परिवर्तन के प्रति शक्तिशाली प्रतिबद्धता के साथ उठाए गए हैं।

उनका निर्णय–निर्माण में जन प्रतिनिधित्व, सामाजिक समता का आदर्श मूल्य और अधिकतर जन–सेवा की ओर उन्मुख मानव–सम्बन्ध दृष्टिकोण पर अधिक बल एक बार फिर यह याद दिलाता है कि लोक प्रशासन के सिद्धान्त और व्यवहार दोनों के पुनरानुकूल की आवश्यकता है।

ड्वाईट वाल्डो ने अपनी पुस्तक ''एन्टरप्राइज ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (1980)'' में बतलाया है कि लोक प्रशासन तीन परिप्रेक्ष्यों को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है– नागरिक (मुवक्किल) उन्मुख नौकरशाही, प्रतिनिधि नौकरशाही व जन–प्रतिनिधित्व। ये सार्वजनिक परिप्रेक्ष्य यदि लोक प्रशासन में ठीक ढंग से ला दिए जाएं तो ये उसे पहले से भी अधिक लोकतांत्रिक बनाने की ओर प्रवृत्त होंगे।

कार्टर व डफरी ने ''इंटरनेशनल जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'' (1984) में नवीन लोक प्रशासन पर लिखते हुए संदेह व्यक्त किया है कि क्या वास्तव में कार्यकुशलता, प्रभावकारिता और सार्वजनिक उत्तरदायित्व के वर्तमान मूल्यों के अतिरिक्त सामाजिक समता का उद्देश्य एक सुस्थापित प्रशासनिक ध्येय या मूल्य के रूप में पहचाना जा रहा है। अमरीका में धन व आय की बड़ी असमानताएं काफी सीमा तक चल रही हैं। अमरीका द्वारा समाज कल्याण कार्यक्रमों पर सरकारी व्यय में हाल में की गयी कमी के कारण जनता के वंचित वर्ग की आज भी अपने उन्नत जीवन के लिए अपेक्षित सामाजिक व आर्थिक सुविधाओं तक पर्याप्त पहुंच नहीं है।

हमारा यह मत है कि जबकि अमरीका में स्वतंत्र प्रतियोगिता व व्यक्तिगत पहल पर बल रहा है, सामाजिक समता को एक नीति तथा प्रशासनिक ध्येय के रूपमें अपनाना एक आसान प्रस्ताव नहीं है। कालान्तर में शायद सामाजिक दबावों के कारण इसे अपनाना अधिक उत्साहवर्धक हो जाए। विकसित देशों (जैसे फ्रांस, स्वीडन व ब्रिटेन) और विकासशील देश (जैसे भारत, पाकिस्तान) दोनों में लोक प्रशासन के सिद्धांत व व्यवहार में हाल की प्रवृत्तियां इसी प्रकार के पुनरीक्षण और संवर्धन की ओर संकेत करती हैं, परन्तु प्रवृत्तियों की गहराई व प्रभाव की सीमा एक देश से दूसरे देश में उनकी ऐतिहासिक विरासत, राष्ट्रीय संसाधन, राजनीतिक प्रणाली का चरित्र, सांस्कृतिक व जन सांख्यिकीय– स्वरूप या ढांचा और राष्ट्रीय विकास में राज्य की भूमिका के अनुसार अलग–अलग है। उनके भिन्न राष्ट्रीय पाश्वचित्र के कारण एक ओर कुछ देशों में प्रभाव बहुत कमजोर है तो दूसरी ओर बहुत शक्तिशाली। कुल मिलाकर ये प्रवृत्तियां निम्नलिखित बातों की ओर संकेत करती हैं :

i- सार्वजनिक नीतियों और प्रशासनिक कार्यों में सामाजिक समता पर बढ़ता हुआ बल,

ii- स्थानीय व निम्न स्तर पर प्रशासनिक प्रक्रियाओं (अर्थात् निर्णय–निर्माण, कार्यान्वयन इत्यादि) में बढ़ती जन–प्रतिनिधित्व को आसान बनाने के लिए संस्थागत व्यवस्थाओं का निर्माण।

iii. सरकार के भीतर राजनीतिक शक्ति के प्रति प्रशासनिक उत्तरदायित्व तथा प्रशासन के राजनीतिक निर्देशन को मजबूत बनाना।

iv. सरकार के अत्यधिक विविध, जटिल तथा अनगिनत कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रशासनिक क्षमता (अर्थात् कार्य–कुशलता तथा प्रभावकारिता) को ऊपर उठाना, जिसके लिए संगठनों के नवीन (नए) स्वरूपों तथा आधुनिक प्रबंधात्मक क्रियाविधियों व तकनीकें और प्रौद्योगिकियों को अपनाना।

v. विभिन्न स्तरों के सार्वजनिक कार्मिकों (सरकारी कर्मचारियों) के बीच संघवाद का विकास और विवादों के मध्यस्थ निर्णय तथा सरकार व कर्मचारियों के परामर्श व बातचीत के लिए संगठित व्यवस्थाओं का बनाना।

vi. मिनोब्रुक सम्मेलन III (2008) में दुनिया में परस्पर निर्भरता को देखते हुए तुलनात्मक अध्ययन पर जोर दिया गया। सम्मेलन में नए विद्वानों से बदलाव के माध्यम अथवा एजेण्ट के रूप में कार्य करने और लोक प्रशासन के मुद्दों एवं कार्यान्वयन के साथ जुड़ने का अनुरोध किया।

6.6 सारांश

प्रशासनिक प्रणालियों में इन प्रवृत्तियों के कारण लोक प्रशासन के अध्ययन का क्षेत्र काफी अधिक विस्तृत हो गया है। इसके अतिरिक्त, अध्ययन अब केवल प्रशासनिक तथ्यों या घटनाओं, नीतियों, संगठनों एवं प्रक्रियाओं के वर्णन व विश्लेषण से ही संतुष्ट नहीं है। यह और अधिक रूप से आदर्शात्मक होता जा रहा है। क्योंकि यह अब सामाजिक समता के प्रति उन्मुखता, लोकतांत्रिक उन्मुखता, आचार–संबन्धी व्यवहार एवं निरन्तर फैलती हुई प्रशासनिक व्यवस्थाओं व नागरिकों की भागीदारी के प्रश्नों से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त यह अब और भी अधिक तुलनात्मक बनता जा रहा है क्योंकि यह अब विभिन्न राष्ट्रीय परिवेशों के बहुत से पहलुओं (राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, जनसंख्या संबन्धी, भौतिक व तकनीकी) के सन्दर्भ में प्रशासनिक नीतियों व संगठनों तथा कार्यान्वयन का परीक्षण करता है और संकल्पनाओं का निर्माण करता है। संक्षेप में, नवीन लोक प्रशासन सिद्धांत व व्यवहार दोनों क्षेत्र में व्यापक, प्रकृति में वर्णात्मक के साथ आदर्शात्मक व विषय सार में बहु–विषय होने के साथ–साथ तुलनात्मक है। नवीन लोक प्रशासन के उद्गमन के साथ नीति और मूल्यों के प्रश्न सार्वजनिक प्रशासन के प्रमुख तत्व रहे हैं।

6.7 प्रमुख शब्दावली

प्रशासनिक उत्तरदायित्व : नौकरशाही में अपने निर्णयों व कार्यों के बारे में वरिष्ठ के प्रति उत्तरदायित्व तथा सरकार की कार्यकारिणी शाखा का विधान मंडल के प्रति उत्तरदायित्व।

प्रशासनिक सामर्थ्यताः सरकार की प्रशासनिक शाखा की अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने या पूरा करने की योग्यता

प्रशासनिक प्रभावकारिता : एक संगठन द्वारा लक्ष्य/उद्देश्य प्राप्ति की सीमा।

प्रशासनिक कार्यकुशलता : एक संगठन में निवेश की तुलना में उत्पादन का अनुपात।

संगठनात्मक समता : एक संगठन के निम्न स्तरों पर अधिक ध्यान के साथ सभी कर्मचारियों के साथ अच्छा व्यवहार।

सामाजिक समता : प्रशासन द्वारा सेवाओं व वस्तुओं की आपूर्ति प्राथमिकता के आधार पर कम सुविधा प्राप्त लोगों की आवश्यकताओं से सीधे सम्बद्ध होनी चाहिए।

6.8 बोध प्रश्न

1. (1) नवीन लोक प्रशासन की विषय–वस्तु की व्याख्या कीजिए।

(2) फिलाडेल्फिया सम्मेलन के प्रमुख दृष्टिकोणों का वर्णन कीजिए।

2. नवीन लोक प्रशासन की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

3. नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्यों की व्याख्या कीजिए।

4. (1) नवीन लोक प्रशासन पर वाल्डो की टिप्पणियों की व्याख्या कीजिए।

(2) लोक प्रशासन में नवीन प्रवृत्तियों की व्याख्या कीजिए।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. भाग 6.2. देखिए

2. भाग 6.2.2 देखिए

3. भाग 6.4 देखिए

4. (1) भाग 6.5 देखिए

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

UGPA-101
लोक प्रशासन

खण्ड – 2
सार्वजनिक संगठन : प्रतिमान

इकाई – 7 91

सार्वजनिक संगठन के तत्व एवं चुनौतियाँ

इकाई – 8 93

वैज्ञानिक प्रबन्ध : एफ. डब्ल्यू. टेलर

इकाई – 9 105

मानवीय सम्बन्धात्मक उपागम : एल्टॉन मेयो

इकाई – 10 117

व्यवस्थावादी उपागम : चेस्टर बरनार्ड

इकाई – 11 127

व्यवहारवादी उपागम : हरबर्ट साईमन

इकाई – 12 139

सामाजिक मनोविज्ञान उपागम : उगलस मैकग्रेगर एवं अब्राहम मैस्लो

इकाई – 13 149

पारिस्थितिकीय उपागम : फ्रेड डब्ल्यू. रिग्स

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

UGPA -101

कुलपति एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह — **कुलपति/मार्गदर्शक**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

(1) **प्रो. मनोज दीक्षित –** — **सदस्य**

प्रोफेसर, लोकप्रशासन विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

(2) **प्रो. आर. के सप्रू –** — **सदस्य**

प्रोफेसर, 473 सेक्टर 38–ए, चण्डीगढ़

(3) **प्रो.बी.एल.शाह –** — **सदस्य**

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

(4) **प्रो. वी. के. राय –** — **सचिव**

राजनीतिक विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो.बी.एल.शाह – प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

संपादन/परिमापक

प्रो. आर. के सप्रू – प्रोफेसर, 473 सेक्टर 38–ए, चण्डीगढ़

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू, प्रयागराज

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN-

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई– 7

सार्वजनिक संगठन के तत्व एवं चुनौतियाँ

प्रतिमान पर दिया यह खण्ड लोक प्रशासन विषय के अध्ययन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस खण्ड को सात इकाइयों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक इकाई का संबन्ध एक विशेष दृष्टिकोण से लोक प्रशासन का प्रतिपादन करने वाली एक महत्वपूर्ण उपागम से है।

अध्याय के शीर्षक के अंदर ''प्रतिमान'' शब्द का प्रयोग किया है तथा इकाईयों में ''उपागम'' शब्द का प्रयोग किया है। अतः इन दोनों शब्दों का अर्थ तथा भिन्न शब्द प्रयोग यहां संक्षिप्त में वर्णित किया जा रहा है।

ज्ञान का अध्ययन–क्षेत्र की कोई भी शाखा शैक्षिक विषय के रूप में मान्य होने से पहले विभिन्न स्तरों से गुजरती है। आरम्भिक विचार तथा विश्वास होते हैं, अवधारणाएं विकसित की जाती हैं, प्रारूपों का निर्माण किया जाता है, तथा उपागम अपनाये जाते हैं ताकि अध्ययन–क्षेत्र के विज्ञान बनने से पहले व्यवस्थित छानबीन की जा सके।

''विज्ञान'' शब्द की परिभाषा निरीक्षण तथा प्रयोग के माध्यम से सुनिश्चित एक ऐसे ज्ञान–समूह के रूप में की जा सकती है जिसके सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किए जाते हैं या सर्वाधिक पूर्णता प्राप्त कर चुके होते हैं। यह व्यवस्थित तथा आलोचनात्मक रूप से परीक्षण किया हुआ ज्ञान–समूह है। इस प्रकार, सार्वभौमिकता प्राप्त करने तथा विज्ञान बनने से पहले, प्रत्येक विषय अनेक स्तरों से होकर गुजरता है। यह एक विकासवादी प्रक्रिया है। जैसा हमने उल्लेख किया कि अध्ययन तथा प्रयोग के लिए विभिन्न उपागम अपनाए गए हैं। एक उपागम एक विषय की समझ तक पहुंचने का एक रास्ता है। इसका अर्थ पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से प्रयोगात्मक या आरम्भिक पग उठाना है। इसका अर्थ समस्या से निपटने का एक विशेष ढंग भी है। लोक प्रशासन में भी हमने देखा कि लोक प्रशासन अध्ययन के अनेक ऐसे उपागम मिल जाते हैं जो वुडरो विल्सन द्वारा अध्ययन के स्वतंत्र क्षेत्र के रूप में इसकी पहचान के पश्चात् पिछले 100 से अधिक वर्षों में विकसित किए गए हैं। पुरातनवादी, मानव सम्बन्ध, व्यवहारवादी, पारिस्थितिकीय इत्यादि उपागम हमारे सामने ऐसे ही मामले हैं। इन उपागमों में से प्रत्येक का एक निश्चित केन्द्र बिन्दु है तथा इनकी मान्यताएं निश्चित पहलुओं के आस–पास बनी हुई हैं। परन्तु प्रत्येक उपागम की विधि सम्बन्धी तथा अन्य आधारों पर

कड़ी आलोचना हुई। जैसे–जैसे इस अध्याय की इकाइयों का हम अध्ययन करेंगे हम इस बात को दखेंगे। अभी तक वे प्रतिमान कहलाने के स्तर तक नहीं पहुंचे हैं इसलिए हमने इकाइयों में ''उपागम'' शब्द का प्रयोग किया है।

विषय को पूर्ण रूप से समझने के लिए इनमें से प्रत्येक उपागम का अध्ययन आवश्यक है। विचारकों का एक वर्ग यह कहता है कि लोक प्रशासन पहले ही एक विकसित विषय है तथा प्रतिमान के स्तर पर पहुंच गया है। उदाहरण के लिए निकोलस हेनरी ने लोक प्रशासन के 5 प्रतिमान बतलाए हैं।

एक प्रतिमान अधिकतर समय में प्रश्नों के ऊपर स्वीकृत उन विश्वासों का समूह है जो एक विषय में अनुसंधानकर्त्ताओं एवं कार्यरत लोगों द्वारा सांझे रूप में अपनाए जाते हैं। सांकेतिक सामान्यीकरण विषय द्वारा विश्वासों के एक निश्चित समूह के प्रति सांझी प्रतिबद्धताएं तथा सांझे मूल्य भी प्रतिमान की विशेषताएं हैं। प्रतिमान का विकास एक वैज्ञानिक क्षेत्र या विषय के लिए परिपक्वता की निशानी है। स्वतंत्र रूप से पहचाने गए प्रत्येक उपागम को शायद प्रतिमान न कहा जा सके, परन्तु लोक प्रशासन ने एक विषय के रूप में प्रतिमान को अपनाकर निश्चय ही पूर्व के स्तर को पार कर लिया है।

इकाई– 8

वैज्ञानिक प्रबन्ध : एफ. डब्ल्यू. टेलर

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 प्रारम्भिक कार्य का अध्ययन

8.2.1 अंश–दर व्यवस्था

8.3.2 कारखाना प्रबन्ध

8.3.3 प्रबन्ध की त्रुटियां या कमियां

8.2.4 धातु काटने की कला

8.2.5 समय व गति अध्ययन

8.4 टेलर की प्रबन्ध सम्बन्धी अवधारणा

8.4 वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त

8.4.1 कार्य के वास्तविक विज्ञान का विकास

8.4.2 कामगारों का वैज्ञानिक चयन तथा उत्तरोत्तर विकास

8.4.3 कार्य व उत्तरदायित्व का विभाजन

8.5 क्रियाशील अध्यक्षता

8.6 वैज्ञानिक प्रबन्ध की व्यवस्थाएं

8.7 मानसिक क्रान्ति

8.8 आलोचना

8.9 टेलर के योगदान का मूल्यांकन

8.10 सारांश

8.11 प्रमुख शब्दावली

8.12 बोध प्रश्न

8.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

परम्परावादी उपागम से सम्बन्धित पहली इकाई में आपने परंपरावादियों के प्रस्तावों का संश्लेषण करने में लिंडल उर्विक तथा लूथर गुलिक के योगदान

के विषय में पढ़ा था। इस इकाई में हम एक अन्य परम्परावादी विचारक, टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध में योगदान की चर्चा करेंगे।

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं :

- संगठनों के प्रबन्ध में वैज्ञानिक पद्धतियां तथा उपागम किस प्रकार प्रारम्भ की गई।
- वैज्ञानिक प्रबन्ध सम्बन्धी टेलर के सिद्धान्त।
- वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों के अनुकूल व्यवस्थाएं, तथा
- वैज्ञानिक प्रबन्ध में टेलर के योगदान का आलोचनात्मक मूल्यांकन

8.2 प्रस्तावना

बीसवीं सदी के आरंभ में फ्रेडरिक विनसलो टेलर (1856–1915) ने संयुक्त राज्य अमरीका में उद्योग के प्रबन्ध के विषय में अनुसन्धान किए। वे प्रबन्ध का वैज्ञानिक तरीके के अध्ययन करने वाले अग्रणी व्यक्ति नहीं थे, फिर भी उसके पूर्व कोई भी विद्वान कार्य पद्धतियों के विश्लेषण में सीधे रूप में सम्बन्धित नहीं था। टेलर का विश्वास था कि ''श्रेष्ठ प्रबन्ध एक वास्तविक विज्ञान है'' जो सभी प्रकार के मानवीय क्रियाकलापों पर लागू होता है। टेलर ने विज्ञान की निश्चितता को कार्य के विश्लेषण तथा माप में लाने का प्रयास किया। वे इसे सार्वभौमिक रूप से लागू करना चाहते थे जिससे कार्य संगठन के लिए मूलाधार स्थापित करके उत्पादकता में सुधार किया जा सके। प्रबन्ध पर टेलर का प्रभाव इतना गहन रहा है कि उनके तरीके अधिकतर देशों में प्रयोग में लाये जाते हैं। इसीलिए उन्हें वैज्ञानिक प्रबन्ध का जनक कहा जाता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन का मौलिक योगदान नये ज्ञान की खोज में वैज्ञानिक पद्धति को लागू करना था। यह नियंत्रित स्थिति में उचित क्रम में 'सुनिश्चित कदमों की नियंत्रित पद्धति' है।

19वीं सदी के अंतिम भाग में अमरीकी व्यापार में एक ऐसा नया औद्योगिक वातावरण आरंभ हुआ जिसमें प्रबन्ध वर्ग के विकास का उद्भव हुआ। प्रबन्ध की कार्य प्रणाली प्रतिदिन की समस्याओं को सुलझाने तक सीमित नहीं रही अपितु नए प्रबन्ध सम्बन्धी उत्पन्न बहुल समस्याओं को हल करने के लिए दीर्घकालीन उपागम में परिवर्तित हो गई।

हेनरी टॉने, हेनरी मैटकाफ तथा फ्रेडरिक टेलर जैसे प्रसिद्ध नेताओं ने प्रबंध की एकीकृत व्यवस्था विकसित करने का प्रयत्न किया तथा टॉने ने प्रबन्ध के इस नये दर्शन को 'प्रबन्ध का विज्ञान'' नाम से सम्बोधित किया।

8.3 प्रारम्भिक कार्य का अध्ययन

वैज्ञानिक प्रबन्ध के विकास में टेलर का योगदान ''एक अंश दर व्यवस्था" 1895, "दुकान प्रबन्ध" 1903, "धातु काटने की कला" 1906 तथा "वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त" 1911 आदि, उनकी रचनाओं में लेखबद्ध हैं।''

8.2.1 अंश–दर व्यवस्था

टेलर का अंश दर व्यवस्था पर प्रथम लेख मजदूरी अदायगी के सिद्धान्तों के प्रति एक सर्वोत्तम योगदान समझा गया। उन्होंने एक नई व्यवस्था या प्रणाली पेश की जिसके तीन भाग थे (क) समय के अध्ययन द्वारा कार्य का

विश्लेषण तथा पर्यवेक्षण दर या मान निश्चित करने के लिए, (ख) अंश कार्य की एक अन्तरीय दर व्यवस्था तथा (ग) व्यक्ति की न कि पदों की, अदायगी करना।

8.2.2 कारखाना प्रबन्ध

अपने दूसरे लेख में जो कि दुकान प्रबन्ध पर था, जिसमें उन्होंने वर्कशॉप संगठन तथा प्रबन्ध की विस्तृत चर्चा की थी। इस लेख में उन्होंने प्रबन्ध के अपने दर्शन पर ध्यान केन्द्रित किया।

1. बढ़ी हुई औद्योगिक कुशलता प्राप्त करने के लिए प्रबंध का उद्देश्य ऊँची मजदूरी देना तथा प्रति इकाई उत्पादन लागतों को कम रखना है।
2. प्रबन्ध में अनुसन्धान की वैज्ञानिक पद्धतियों को लागू करना और प्रबन्ध समस्याओं को दूर करना।
3. कार्य–दशाओं का मानकीकरण तथा कामगारों को वैज्ञानिक आधार पर नियुक्ति।
4. प्रबन्ध द्वारा कामगारों को औपचारिक प्रशिक्षण तथा मान औजारों व वस्तुओं के साथ निश्चित गतियों को पूरा करने का निश्चित निर्देश देना।
5. श्रम संगठन की वैज्ञानिक व्यवस्था के आधार पर प्रबन्ध तथा श्रमिकों के बीच में मैत्रीपूर्ण सहयोग होना।

टेलर प्रबन्ध की एक नयी तथा सम्पूर्ण अवधारणा विकसित करना चाहते थे। उन्होंने परम्परावादी प्रबन्धकों द्वारा एक नये दृष्टिकोण के विकसित करने तथा अपने कार्य का जिसमें योजना, संगठन तथा नियंत्रण के तत्व शामिल हों और अधिक विस्तृत तथा व्यापक दृष्टिकोण अपनाने का आधार रखा।

8.2.3 प्रबन्ध की त्रुटियां या कमियां

मिडवेल स्टील कम्पनी में कार्य करते समय टेलर ने कई फैक्ट्रियों के क्रियाकलापों का गंभीर रूप से अवलोकन व अध्ययन किया और प्रबन्ध में निम्न त्रुटियों का पता लगाया :

1. प्रबन्ध को श्रमिक प्रबन्ध के उत्तरदायित्वों की कोई स्पष्ट जानकारी नहीं थी।
2. कार्य में प्रभावी मानकों की कमी।
3. कामगारों द्वारा कार्य की क्रमबद्ध टँकाई तथा प्राकृतिक टँकाई के कारण सीमित उत्पादन।
4. कार्य की ठीक रूप–रेखा बनाने तथा टाँका लगाने पर काबू पाने के लिए कामगारों को उचित प्रोत्साहन देने में प्रबन्ध की असफलता।
5. प्रबन्ध के अधिकतर निर्णय अवैज्ञानिक थे क्योंकि वे स्वधारण, अंतर्बोध, पुराने अनुभव तथा अंगूठे के नियम पर आधारित थे।
6. विभागों के बीच कार्य–विभाजन के विषय में सही अध्ययनों का अभाव।
7. कामगारों की उनकी योग्यता, क्षमता तथा अभिरुचियों के अनुरूप योग्य स्थान पर नियुक्त न करना।

टेलर के पहल और प्रोत्साहन प्रबन्धन को ''आलसी प्रबन्धन के दर्शन के रूप में देखा गया है।

8.2.4 धातु काटने की कला

टेलर को श्रमिक प्रबन्ध विवाद का विशेष रूप से उत्पादन की मात्रा को लेकर फोरमैन व कामगारों के बीच का कटु अनुभव हुआ। वह समझ–बूझ या बल प्रयोग द्वारा समस्याओं का निदान करने में असफल रहे। यह अनुभव करके कि संघर्ष को रोकने के लिए एक नई औद्योगिक योजना आवश्यक है, उन्होंने कार्य विज्ञान की खोज प्रारम्भ की। इस प्रक्रिया में दो दशकों से भी अधिक समय तक उन्होंने बहुत से प्रयोग किए। उन्होंने मशीनी औजार, उच्च धातु तथा सामग्री के साथ प्रयोग किए। मिडवैल तथा बैथलेहैम स्टील कम्पनी में उनके प्रयोगों ने गुणवत्ता की दृष्टि से बढ़िया स्टील की खोज की तथा धातु को काटने की कला में क्रान्ति ला दी। ''मेटल या धातु काटने की कला'' नामक लेख, जो उन्होंने ए.ए.एम.ई. में प्रस्तुत किया, किसी भी सम्मेलन में प्रस्तुत किये गये लेखों में सबसे अधिक विशिष्ट लेख समझा गया। यह लेख 26 वर्षों तक 2 लाख डॉलरों की कीमत पर किये गए लगभग 30 हजार प्रयोगों की लम्बी तथा विस्तृत व गहन श्रृंखलाओं पर आधारित था। धातु काटने के प्रयोगों की उपलब्धियों को टेलर के अन्य योगदानों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण माना गया क्योंकि इससे अमरीकी उद्योगों के विकास में एक प्रमुख पहल का सूत्रपात हुआ।

8.2.5 समय व गति अध्ययन

अपने अन्य प्रयोगों में उन्होंने समय एवं गति के माध्यम से अध्ययन किया तथा इस बात का विश्लेषण किया कि कामगार औजारों, सामानों व मशीनों का किस प्रकार उपयोग करते हैं तथा दुकान–प्रबन्ध की एक समन्वित व्यवस्था का विकास किया। टेलर ने कामगारों की औजारों के साथ काम करने की योग्यता को वैज्ञानिक ढंग से मूल्यांकन करना प्रारम्भ किया तथा इस उपागम से वैज्ञानिक प्रबन्ध की शुरुआत हुई।

अपनी दुकान–व्यवस्था के विकास में टेलर ने जानना चाहा कि अनुकूल परिस्थितियों के अन्तर्गत एक निश्चित प्रक्रिया तथा निश्चित सामानों एवं पद्धतियों का प्रयोग करते हुए, एक काम को पूरा करने में एक व्यक्ति या मशीन कितना समय लेगी या लेना चाहिए। उन्होंने स्टॉप घड़ी की मदद से कार्यों को करने के सही तरीकों का अनुभवात्मक रूप से मूल्यांकन करने के लिए वैज्ञानिक तथ्यों तथा जाँच पद्धतियों का प्रयोग किया। टेलर ने उनकी प्रारम्भिक योग्यताओं तथा आगे सीखने की क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए सही कार्य के लिए सही व्यक्ति के चयन की वैज्ञानिक पद्धति की आवश्यकताओं को भी मान्यता दी। वह कामगार को उचित स्थान पर लगाने के पश्चात् उसकी तथा उसके कार्य की दशाओं के पर्यवेक्षण के पक्षधर थे। टेलर सुदृढ़ कार्मिक प्रबन्ध अर्थात् कार्य के अनुरूप कामगार की क्षमता को मिलाने की नींव डालना चाहते थे। टेलर ने श्रमिकों के वैज्ञानिक चयन की आवश्यकता पर ध्यान दिया।

8.3 टेलर की प्रबन्ध सम्बन्धी अवधारणा

टेलर की प्रबन्ध के महान सिद्धान्तों की चर्चा करने से पहले, प्रबन्ध की अवधारणा पर उनके विचारों को जानना आवश्यक है। टेलर ने कहा है कि प्रबन्ध को जानना जरुरी है। प्रबन्ध निश्चित कानूनों, नियमों एवं सिद्धान्तों पर

आधारित है। उन्होंने तर्क दिया कि प्रबन्ध में एसे अनेक सिद्धान्त शामिल हैं जो निजी तथा सरकारी दोनों संगठनों पर लागू होते हैं। उनके अनुसार प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य नियुक्तिकर्ता की अधिकतम समृद्धि के साथ–साथ प्रत्येक कामगार को भी अधिकतम धन प्राप्त कराना है। उनके वैज्ञानिक प्रबन्ध का दर्शन यह है कि नियुक्तिकर्ता, कामगारों तथा उपभोक्ताओं के हितों में कोई अन्तर्निहित टकराव नहीं हो। टेलर की प्राथमिक चिंता थी कि उच्चतर उत्पादकता के परिणामों से सभी लोग समान रूप से लाभान्वित हों अर्थात् कामगारों को अच्छी मजदूरी, प्रबन्धकों को अधिक लाभ तथा उपभोक्ताओं द्वारा उत्पादों के लिए निम्न कीमतों की अदायगी करने से कामगारों, नियुक्तिकर्ताओं तथा उपभोक्ताओं, इन तीनों को लाभ मिले।

टेलर ने देखा कि प्रबन्ध अपने कार्यों की अवहेलना करता है तथा अपने लिए मामूली उत्तरदायित्वों को रखकर बाकी बोझ श्रमिकों पर डाल देता है। उसने सलाह दी कि प्रबन्धकों को मानक तय करने, कार्य की योजना बनाने, संगठन करने, नियंत्रण करने तथा प्रोत्साहन योजनाएं बनाने आदि दायित्व संभालने चाहिए।

8.4 वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त

सामाजिक समृद्धि के हित में टेलर ने कामगारों तथा प्रबन्धकों के बीच घनिष्ठ सहभाग तथा सुविचारिक सहयोग का पक्ष लिया।

प्रबन्ध का उसका दर्शन पारस्परिक हितों एवं वैज्ञानिक प्रबन्ध के चार प्राथमिक सिद्धांतों पर आधारित था।

1. वास्तविक विज्ञान का विकास,
2. कामगारों का वैज्ञानिक पद्धति से चयन,
3. कामगार का वैज्ञानिक शिक्षण तथा विकास,
4. प्रबन्ध तथा कामगारों के बीच घनिष्ठ एवं मित्रतापूर्ण सहयोग।

8.4.1 कार्य के वास्तविक विज्ञान का विकास

जब हम विज्ञान को एक संगठित ज्ञान के रूप में देखते हैं तो कामगार का प्रत्येक कार्य विज्ञान कहा जा सकता है। कामगार तथा प्रबन्ध के हित में यह जानना आवश्यक है कि एक दिन का उचित काम कितना हो। इससे कामगार की नियोक्ता द्वारा अनावश्यक आलोचना नहीं होती तथा प्रबन्ध को कामगार से अधिकतम काम लेने में मदद मिलती है। इसके लिए अनुकूलतम परिस्थितियों में योग्यता प्राप्त कामगारों द्वारा किए जाने वाला ''बड़े दैनिक कार्य'' की वैज्ञानिक खोज करने की आवश्यकता है। अनुसन्धान का प्रारम्भ कामगारों की पुरानी तथा वर्तमान कार्य पद्धति के विषय में जानकारी एकत्र करना हो सकता है। आदर्श कार्य पद्धतियों को जानने के लिए अनुसन्धान के परिणामों को वर्गीकृत सारणीबद्ध किया जा सकता है तथा उसे नियमों व कानूनों में बदला जा सकता है। कार्य के विज्ञान का ऐसा विकास, संगठन को अधिक उत्पादन करने, कामगार को और अच्छी मजदूरी पाने में तथा कम्पनी को बहुत लाभ प्राप्त करने में मदद करता है।

8.4.2 कामगारों का वैज्ञानिक चयन तथा उत्तरोत्तर विकास

वैज्ञानिक खोज द्वारा विकसित कार्य के कारगर निष्पादन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि केवल ऐसे कामगारों का ही चयन हो जो

शारीरिक तथा बौद्धिक विशेषताएं रखते हों। इसके लिए कामगार की क्षमता तथा निष्पादन का अध्ययन करने की आवश्यकता है तथा यह पता लगाने की आवश्यकता है कि भावी विकास के लिये कौन–कौन सी संभावनाएं किस कामगार में हैं एवं उसकी सीमाएं क्या हैं। टेलर का विश्वास था कि प्रत्येक कामगार में विकास की संभावित क्षमताएं हैं। उसने बल दिया कि प्रत्येक कामगार को व्यवस्थित ढंग से तथा पूर्ण रूप में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। टेलर की मान्यता थी कि यह प्रबन्ध का दायित्व है कि वह कामगार को विकास या बढ़ोत्तरी के अवसर प्रदान करके उसका विकास करे जिससे वह अपनी स्वाभाविक क्षमताओं के अनुकूल तरक्की के अवसर प्राप्त कर सकें। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि कर्मचारी नई पद्धतियों, नये औजारों तथा परिस्थितियों को स्वैच्छिक रूप से तथा उत्साहपूर्वक स्वीकार करें।

कार्य के विज्ञान तथा वैज्ञानिक रूप से चयनित व प्रशिक्षित व्यक्तियों को साथ लाना, कामगार को कार्य सम्पन्न करने में सक्षम करने तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह फिर से पहले वाली कार्य पद्धतियों को न अपनाए, कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो कामगारों को प्रेरणा दे सके। टेलर की दृष्टि में यह प्रबन्ध की एकनिष्ठ जिम्मेदारी है। उसकी मान्यता थी कि कामगार प्रबन्ध के साथ सहयोग करने के लिए सदैव इच्छुक होते हैं, परन्तु प्रबन्ध की ओर से अधिक विरोध होता है। टेलर का कहना था कि सहयोग की प्रक्रिया से मानसिक क्रान्ति उत्पन्न होती है।

8.4.3 कार्य व उत्तरदायित्व का विभाजन

परम्परावादी प्रबन्ध सिद्धान्त में कार्य की सारी जिम्मेदारी कामगार पर होती थी जबकि प्रबन्ध पर कम उत्तरदायित्व होते थे। परन्तु टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध में प्रबन्ध एवं कामगार के बीच समान उत्तरदायित्व को मान्यता दी गई है। जैसा कि पहले नहीं होता था प्रबन्ध भी कामगार की भांति समान रूप से व्यस्त रहता है कार्य का यह विभाजन उनके बीच सहमति व आपसी निर्भरता उत्पन्न करता है। उनके बीच निरन्तर एवं घनिष्ठ सहयोग भी होता है। इन सबका परिणाम टकरावों तथा हड़तालों की समाप्ति होता है।

फिर भी इनमें से किसी एक सिद्धान्त को पृथक रूप से वैज्ञानिक प्रबन्ध नहीं कहा जा सकता। यह ऊपर चर्चित सभी तत्वों का एकत्रित सम्मिश्रण है। हम इन सिद्धान्तों के दर्शन को निम्न रूप में कह सकते हैं –

अ. विज्ञान न कि काम चलाऊ तरीका

ब. मेल न कि मनमुटाव

स. सहयोग न कि व्यक्तिवाद

द. सीमित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन तथा

य. कार्य कुशलता एवं समृद्धि का विकास

8.5 क्रियाशील अध्यक्षता

टेलर को रेखिक प्रणाली या मिलिट्री जैसे संगठन, (जिससे प्रत्येक कामगार केवल एक ही अधिकारी के अधीन होता है,) की प्रभावकारिता पर संदेह था। उन्होंने इस प्रणाली के स्थान पर क्रियाशील अध्यक्षता के सिद्धान्त को रखा जिसमें कामगार संकीर्ण रूप से विशेषज्ञता प्राप्त आठ पर्यवेक्षकों से आदेश प्राप्त करता है। उन्होंने कार्य को केवल कामगारों के बीच ही नहीं बाँटा अपितु पर्यवेक्षक स्तर पर भी विभाजित किया। आठ कार्यात्मक प्रमुखों या

अधिकारियों में से चार योजना के लिए उत्तरदायी होंगे तथा अन्य चार कार्यान्वयन के लिए, वे चार कार्यान्वयन अधिकारी हैं– गैंग प्रमुख या अधिकारी, मरम्मत प्रमुख, गति अधिकारी तथा निरीक्षक और योजना अधिकारियों में हैं– कार्य व रुट क्लर्क, निर्देशन कार्ड क्लर्क, समय व लागत क्लर्क तथा दुकान अनुशासक। टेलर की मान्यता थी कि इस कार्यात्मक संगठन में कार्य प्रमुख को जल्दी से प्रशिक्षित किया जा सकता है तथा विशेषीकरण बहुत आसान हो जाता है। योजना तथा क्रियान्वयन के बीच कार्य–विभाजन को अवधारणा के सूत्र तथा स्टाफ अभिकरण को अवधारणा में शामिल किया गया, जिसमें सूत्र का कार्य–क्रियान्वयन तथा स्टाफ का सम्बन्ध योजना से होता है। टेलर ने एक अच्छे कार्य प्रमुख के गुणों का भी वर्णन किया है। वे हैं– तकनीकी ज्ञान, शारीरिक तत्परता, शक्ति चातुर्य, धैर्य व साहस, विवेकशीलता तथा अच्छा स्वास्थ्य।

8.6 वैज्ञानिक प्रबन्ध की व्यवस्थाएं

कार्यात्मक अध्यक्षता के अतिरिक्त टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के अपने सिद्धान्तों के अनुकूल कुछ और व्यवस्थाओं को भी विकसित किया वे हैं :

(अ) समय अध्ययन,

(ब) व्यापार में प्रयुक्त औजारों तथा उपकरणों का कार्य तथा कामगार के कार्यों या गतियों का भी मानकीकरण,

(स) एक योजना कक्ष या विभाग की वांछनीयता,

(द) प्रबन्ध में अपवाद सिद्धांत,

(क) सरकने वाली पटरी तथा इसी प्रकार से समय बचाने वाले यंत्र का प्रयोग,

(ख) कामगार के लिए निर्देश–कार्ड,

(ग) प्रबन्ध में नये विचारों के साथ कार्य के सफल निष्पादन के लिए अच्छे बोनस की व्यवस्था,

(घ) अन्तराश्रयी दर,

(ड़) निमित्ति वस्तुओं तथा निर्माण में प्रयुक्त यंत्रों को वर्गीकृत करने के लिए स्मृतिवर्धक प्रणालियां।

टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को नकारात्मक ढंग से परिभाषित किया है।

1. यह कुशलता यंत्र नहीं है।
2. यह व्यक्तियों को मजदूरी देने की नयी योजना नहीं है।
3. यह लागतों को आंकने की नई प्रणाली नहीं है।
4. यह समय या गति अध्ययन नहीं है।
5. यह विभाजित कार्य प्रमुखता या कार्यात्मक अध्यक्षता नहीं है।

8.7 मानसिक क्रान्ति

टेलर के अनुसार, वैज्ञानिक प्रबन्ध सार रूप में, प्रबन्ध तथा कामगारों में अपने कार्यों, साथी कामगारों तथा अपनी समस्त दैनिक समस्याओं के प्रति

अपने कर्त्तव्यों में प्राथमिक रूप से सम्पूर्ण मानसिक क्रान्ति का नाम है। यह इस तथ्य को अनुभूत करता है कि उनका पारस्परिक हित एक दूसरे का विरोधी नहीं है तथा पारस्परिक समृद्धि पारस्परिक सहयोग से ही संभव है। टेलर के अनुसार प्रत्येक संगठन के कार्य के अनुचित विभाजन के कारण कामगारों तथा प्रबन्ध के बीच टकराव रहता है। इससे बचने के लिए दोनों पक्षों की मानसिक दृष्टि बदलना आवश्यक है। इस प्रकार टेलर ने मानसिक क्रान्ति की अवधारणा प्रचलित की।

8.8 आलोचना

वैज्ञानिक प्रबन्ध ने एक आन्दोलन का रूप लेकर तथा उससे औद्योगिक समस्याओं के समाधान की आशा प्रदान की। परन्तु टेलर की अवधारणा की आलेचनाएं की गईं। आलोचना करने वालों में प्रमुख रूप से :

- व्यावसायिक संघ तथा संगठित श्रमिक,
- प्रबन्धक,
- मानव संम्बन्ध सिद्धान्तवादी तथा व्यवहारवादी, आदि थे।

व्यावसायिक संघ प्रीमियम बोनस प्रणाली प्रारम्भ करके उत्पादन बढ़ाने की नई पद्धतियों के विरुद्ध थे। श्रमिक नेताओं की समझ में टेलरवाद न केवल व्यावसायिक संघवाद को बरबाद करने वाला था, अपितु सामूहिक सौदेबाजी के सिद्धांत को भी समाप्त करने वाला था। वे समझते थे कि यह प्रणाली समुदाय या समाज के लिए एक खतरा है क्योंकि उससे बेरोजगारी में निरन्तर वृद्धि होती है। श्रम संघों ने यह सोचा कि टेलरवाद कार्य के मशीनी पक्ष में अधिक रुचि रखता था, परन्तु सम्पूर्ण कार्य स्थितियों के विषय में उतना चिन्तित नहीं है। श्रम संगठनों द्वारा अनेक आन्दोलनों तथा उनके द्वारा अमरीकी कांग्रेस को दिये मांगपत्र के कारण 1912 में सदन ने टेलरवाद की जांच के लिए प्रतिनिधि सभा की एक विशेष समिति की नियुक्ति की। यद्यपि समिति की रिपोर्ट में टेलर और श्रमिकों में से किसी का भी पक्ष नहीं लिया गया था, श्रमिक संघ 1915 में आर्मी एप्रोप्रियेशन एक्ट में संशोधन कराने में सफल हो गये, जिसके तहत सैन्य शास्त्रगारों में प्रीमियम या बोनस की अदायगी तथा घड़ी रोको तरीके का प्रयोग वर्जित बताया गया।

टेलरवाद के प्रति श्रमसंघों के विरोध के कारण औद्योगिक सम्बन्धों पर अमरीकी आयोग के लिए रॉबर्ट होक्सी द्वारा एक जांच भी कराई गई। प्रो. होक्सी ने अपनी रिपोर्ट में टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध तथा टेलर के दृष्टिकोणों की यह कह कर आलोचना की कि वे उत्पादन के मानवीय पक्ष की बजाय मशीनी पक्ष का ही समर्थन करते हैं। रिपोर्ट में यह भी कहा कि वैज्ञानिक प्रबन्ध के आदर्श तथा श्रम संघवाद प्रतिकूल है।

टेलरवाद की प्रबन्धकों ने भी आलोचना की। उन व्यक्तियों द्वारा जो अच्छे प्रबन्धकीय पदों पर शीघ्र पदोन्नत होना चाहते थे, टेलर के विचार का विरोध किया क्योंकि उनके अनुसार विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण की बात कही गई थी। प्रबन्धकों ने अंगूठा लगाने के नियम की पद्धति पर उनकी निन्दात्मक टिप्पणियों को पसंद नहीं किया। वे लोग जो उच्च शिक्षा के अभाव में उच्च प्रबन्ध–पदों पर संघर्ष द्वारा आरुढ़ हो गये थे, वे टेलर के इस मत के प्रति संवेदनशील थे कि जब तक काफी अधिक प्रशिक्षित विशेषज्ञों की सहायता नहीं मिलती वे प्रबन्ध के लिये अयोग्य हैं। रुचिकर बात यह है कि टेलर को

मिडवैल स्टील कम्पनी तथा वैथल हैय स्टील दोनों से त्याग पत्र देना पड़ा था क्योंकि कम्पनी के प्रबन्धकों के साथ उसका मतभेद था।

टेलर के अन्य आलोचकों में ब्रिटिश प्रबन्ध सम्बन्धी विचारक ओलांबर शैलडॉन, अमरीकी व्यापार सम्बन्धी दार्शनिक मैरी पार्कर फॉलेट, सैम लूईसॉन, एल्टॉन मेयो, पीटर ड्रकर तथा अन्य लोग शामिल थे। उन्होंने आरोप लगाया कि टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध अवैयक्तिक था तथा वह मानव तत्व पर कम बल देता था। इस आलोचना के कारण औद्योगिक समाजशास्त्र तथा सामाजिक मनोविज्ञान में प्रयोगों की श्रृंखलाएं चली। एल्टॉन मेयो के क्लासिकी हाथोर्न प्रयोगों तथा मानव सम्बन्धों व ग्रुप अन्तर्क्रिया पर अन्य अनुसंधान अध्ययनों ने टेलरवाद को स्वीकार नहीं किया। एल्टॉन मेयो के क्लासिकी प्रयोगों ने यह निश्चयात्मक रूप से सिद्ध कर दिया कि संगठन में उत्पादन वृद्धि तथा कार्य कुशलता के लिये संरचनात्मक व्यवस्था की अपेक्षा कामगार का अपने कार्य के प्रति तथा अपने सहकर्मियों के प्रति भावनात्मक दृष्टिकोण अधिक महत्वपूर्ण है। टेलर का यह कहना कि व्यक्ति सामान्यतः सुस्त तथा कामचोर होते हैं, भी विवादास्पद है। ब्राउन के विश्लेषण से स्पष्ट है कि काम व्यक्ति के जीवन का आवश्यक अंग है क्योंकि यह जीवन का वह पक्ष है जो उसे उच्च सामाजिक स्थिति प्रदान करता है तथा उसे समाज से बांधता है। जब वे इसे पसन्द नहीं करते तो दोष कामगार की अपेक्षा काम की मनोवैज्ञानिक तथा समाजिक दशाओं का है।

समाजवादियों ने लेनिन का अनुकरण करते हुए टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन के दृष्टिकोण की निन्दा ''शोषण के एक रूप'' में करी।

टेलर की अन्य आलोचना है कि वह कार्य की संरचना को सही तरीके से समझ नहीं पाया। उनके द्वारा कार्य का सूक्ष्म विभाजन तथा विशेषीकरण पर बल दिये जाने की कई आधारों पर आलोचना की गई है। प्रथम, कार्य अवैयक्तिक हो जाता है तथा कामगार के बीच सम्बन्ध कम हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप कामगार कार्य में भागीदारी का भाव खो देता है। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि कामगार को अपनी योग्यताओं व छिपी क्षमताओं को प्रदर्शित करने का कोई रास्ता नहीं मिलता। दूसरे इससे कामगार का स्वचलन हो सकता है जिसके शारीरिक तथा स्नायुगत परिणाम हो सकते हैं। जैसा कि पीटर ड्रकर ने योग्य ही कहा है कि संगठन मानव सम्बन्धों के स्तर से उत्पादक कुशलता तथा उत्पादन की दृष्टि से भी एक कमजोर भौतिक अस्तित्व बन जाता है। तीसरे, टेलर द्वारा कार्य योजना को तथा क्रियान्वयन भागों में बांटने की भी कड़ी आलोचना की गई है। यह तर्क दिया गया है कि ऐसी परिस्थिति में उचित टीम भावना का विकास करना कठिन है तथा यदि योजना को क्रियान्वयन से पूर्णतया विलग कर दिया जाता है तो कामगारों की कार्य उन्नति में भागीदारी सुनिश्चित करना कठिन है। यह भी तर्क दिया गया कि टेलर ने इस तथ्य को अनदेखा कर दिया कि कार्य का सूक्ष्मतम भागों तथा उपभागों में विभाजन घटते प्रतिफल के सिद्धांत से सीमित है। इस प्रकार टेलर दर्शन का सारांश निम्न शब्दों में दिया गया है। ''प्रथम, विश्लेषण सिद्धान्त को कार्य सिद्धान्त भ्रमित करता है। दूसरे, योजना तथा क्रियान्वयन एक ही कार्य के दो अलग भाग हैं, उन्हें किसी तरह भी एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।''

व्यवहारवादियों ने आरोप लगाया कि टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध पद्धतियों से कामगार की शक्ति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा उसके द्वारा बुद्धिमत्ता एवं उत्तरदायित्व का प्रयोग समाप्त हो जाता है। हरबर्ट ए. साईमन तथा मार्श ने वैज्ञानिक प्रबन्ध का शारीरिक संगठनात्मक सिद्धान्त रूप में उल्लेख किया है। ब्रेबरमैन ने टेलरवाद को दो रूपों में चित्रित किया है– (अ) कामगार को

हस्तशिल्प एवं कौशल से विमुख करना तथा उसे नियंत्रण व्यवस्था के अंदर रखना तथा, (ब) इस प्रकार प्राप्त ज्ञान को कामगार के ऊपर नियंत्रण को उचित ठहराने के लिये प्रयोग में लाना। कामगारों पर प्रबन्धात्मक नियंत्रण को उचित ठहराने सम्बन्धी दूसरी बात को व्हाईटेकर ने समझाया है। उसने कहा कि यह पूंजीवादी दर्शन द्वारा प्रतिनिधि राजनीतिक प्रजातंत्र तथा आधुनिक औद्योगिक समाजों में व्यापार तथा उद्योगों में अनुत्तरदायी सत्ता या शक्ति के बीच विरोधाभास को सुलझाने का एक प्रयास है।

8.9 टेलर के योगदान का मूल्यांकन

सीमाओं के बावजूद– सीमाएं जिनका सम्बन्ध मानव मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा कार्य की संरचना को भली प्रकार न समझने से है, टेलर का कार्य सर्वोच्च महत्वपूर्ण है। सभी दृष्टिकोणों से टेलर को कार्यरत मानव के अध्ययन में अग्रणी माना जाना चाहिए। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने अच्छे कार्य निष्पादन की खोज की शुरुआत की।

औद्योगिक प्रबन्ध के अध्ययन में परिमाणवाचक तकनीकों का प्रयोग करने वाले भी वे प्रथम व्यक्ति थे। आधुनिक वैज्ञानिक प्रबन्ध, अनुसन्धान, पद्धति अध्ययन, समय अध्ययन, प्रणाली या व्यवस्था विश्लेषण, अपवादों द्वारा प्रबन्ध, सभी टेलर की विरासत का हिस्सा है।

टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध एक आन्दोलन जैसा था। भौतिक विज्ञानों में बढ़ती उपलब्धि के युग में उन्होंने सिद्धान्तों के निर्पेक्ष प्रयोग के माध्यम से औद्योगिक समस्याओं के समाधान की आशा प्रदान की। युवा एवं कल्पनाशील इन्जीनियरों के लिए उन्होंने जीवन में एक ध्येय प्रदान किया। विरोध के प्रारम्भिक अवधि के पश्चात् उन्होंने अमरीका के पुराने चलने वाले औद्योगिक प्रबन्ध के गढ़ को जीता तथा औद्योगिक व्यवहार, क्रिया पर अत्यधिक प्रभाव डाला। यह जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस तथा अन्य यूरोपीय देशों में फैला। जापानी उद्योग ने अपनी इकाई लागत उत्पादन को सुधारने के लिए अपने विकास के सारे समय में वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीकों का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया। बहुत से विकासशील देश वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रयोग करने का प्रयास कर रहे हैं। रूस में वैज्ञानिक प्रबन्ध को समर्थन मिला तथा इंजीनियरों के प्रशिक्षण तथा शिक्षण के पाठ्यक्रम में टेलर के सिद्धान्त शामिल किये गए। टेलर प्रणाली के सार को अविचारी पूंजी शोषण की अंतिम शब्दों में निष्ठुर भंडाफोड़ करते हुए लेनिन ने कहा था कि हमें समस्त रूप में कार्य समय में कमी, उत्पादन के नये तरीकों के क्रियान्वयन तथा कार्यकारी जनसंख्या में श्रम शक्ति के अंतर्विरोधी कार्य– संगठन की प्रणाली या व्यवस्था के साथ मिला कर टेलरीय प्रणालियों तथा श्रम की वैज्ञानिक कार्यकुशलता को लागू करना चाहिए। टेलरवाद ने रूस में स्टरवानोवाईट आन्दोलन का रूप लिया।

8.10 सारांश

इस इकाई में वैज्ञानिक प्रबंध के दर्शन एवं सिद्धांतों के प्रति टेलर के योगदान पर प्रकाश डाला गया है। टेलर द्वारा प्रस्तावति चार सिद्धांतों की चर्चा की है। कार्यालय विशेषज्ञता तथा अपने सिद्धांतों के अनुकूल भिन्न व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में अन्य योगदानों पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला गया है।

टेलर के योगदानों की विभिन्न क्षेत्रों में तीव्र आलोचनाएं हुई। टेलर के सिद्धान्तों के विरुद्ध एक आलोचना यह है कि उन्होंने मशीन कुशलता को अधिक महत्व दिया तथा मानव तत्व की उपेक्षा की। इन आलोचनाओं से संकेत

लेकर बाद में विद्वानों ने संगठनों के अध्ययन के प्रति ''मानव सम्बन्ध उपागम'' के नाम से विख्यात उपागम का विकास किया।

वर्तमान प्रबन्ध सम्बन्धी प्रथाएं वैज्ञानिक प्रबन्ध के उन सिद्धान्तों पर आधारित हैं जिन्हें टेलर ने 19वीं शताब्दी में प्रतिपादित किया।

8.11 प्रमुख शब्दावली

कार्यात्मक अध्यक्ष : विशेषज्ञ पर्यवेक्षक

हॉथोर्न प्रयोग : एल्टॉन मेयो के अनुसंधानात्मक अध्ययन जिन्होंने टेलरवाद को स्वीकार नहीं किया।

मानसिक क्रांति : प्रबंध तथा कामगार उत्पादन को इस सीमा तक बढ़ाएं कि उनके बीच उत्पादन के बंटवारे पर झगड़ा अनावश्यक हो जाये, मानसिक दृष्टि का परिवर्तन।

मिडवेल स्टील कम्पनी : वह कम्पनी जहां टेलर ने कामगारों को देखा तथा प्रयोग किए।

गति व समय अध्ययन : कामगारों द्वारा किया जाने वाला अध्ययन।

अंश दर : मजदूरी अदायगी का सिद्धांत।

दुकान–व्यवस्था : जहां अनुकूलतम स्थितियों में काम किया जाता है।

8.12 बोध प्रश्न

1. (1) अंश दर प्रणाली क्या है?
   (2) परम्परावादी प्रबंध में टेलर ने कौन–कौन से दोष पाए?
2. (1) टेलर की प्रबंध सम्बन्धी अवधारणा क्या है?
   (2) वैज्ञानिक प्रबन्ध के कौन–कौन से सिद्धान्त हैं?
   (3) कार्यात्मक अध्यक्षता क्या है?
   (4) वैज्ञानिक प्रबंध के अपने सिद्धान्तों के अनुकूल टेलर ने कौन–सी व्यवस्थाओं को निर्धारित किया?
3. (1) टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध के विरूद्ध प्रमुख आलोचनाएं कौन–सी हैं?
   (2) प्रशासनिक साहित्य में टेलर के स्थान का मूल्यांकन कीजिए।

8.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) उपभाग 8.2.1 देखें
   (2) उपभाग 8.2.2 देखें
2. (1) भाग 8.3 देखें
   (2) भाग 8.4 देखें
   (3) भाग 9.5 देखें

(4) भाग 9.6 देखें

3. (1) भाग 8.8 देखें

(2) भाग 8.9 देखें

8.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Prasad, Ravindra D., et al. (Eds.), 2nd Revised Edition 2010, Administrative Thinkers; Sterling Publishers, New Delhi

Pugh, D.S., et al. 1973. Writers on Organisations; Penguin Books

Tayor, F.W., 1947, Scientific Management; Harper & Row, New York

इकाई– 9

मानवीय सम्बन्धात्मक उपागम : एल्टॉन मेयो

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 अर्थ और उद्गम

9.3.1 आर्थिक मंदी

9.3.2 पूंजी अवधारक उद्योग

9.2.3 तकनीकी प्रगति

9.2.4 टेलरवाद की प्रतिक्रिया

9.2.5 वर्ग विरोध

9.4 मेयो के प्रारम्भिक प्रयोग

9.3.1 प्रथम शोध (फर्स्ट इन्क्वायरी)

9.4 हॉथार्न के अध्ययन

9.4.1 महान् प्रबोधन 1924–27 (ग्रेट इल्युमिनेशन)

9.4.2 मानवीय भावनाएं और मनोवृत्तियां

9.4.3 सामाजिक संगठन

9.5 उद्योगों में अनुपस्थितिवाद

9.6 आलोचना

9.7 सारांश

9.8 प्रमुख शब्दावली

9.9 बोध प्रश्न

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य

- मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम का अर्थ तथा विषय–वस्तु जान सकना,
- हॉथार्न के अध्ययनों का महत्व बता सकना,
- मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम के लक्षण बता सकना, तथा

- मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम का समालोचनात्मक मूल्यांकन करना

9.1 प्रस्तावना

इस अभिगम की अपनी सीमाओं के कारण, संगठनों की कार्यप्रणाली को पूरी तरह से समझने के लिए, अन्य अभिगमों की खोज की गई। मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम का आविर्भाव इसी खोज का परिणाम है। इस क्षेत्र में एल्टॉन मेयो (1880–1949) का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है और इसलिए हम मेयो और उनके कार्यों पर विस्तारपूर्वक ध्यान देंगे। अंत में हम एल्टॉन मेयो के सिद्धान्त और उनके योगदान का मूल्यांकन करेंगे और उस परिचर्चा को समालोचनात्मक परीक्षण के साथ समाप्त करेंगे।

9.2 अर्थ और उद्‌गम

मानवीय सम्बन्धों से हमारा तात्पर्य मुख्यतः नियोक्ताओं (इम्पलायर्स) और कार्मिकों (वर्कर्स) के उन सम्बन्धों से है जो कानूनी मानकों द्वारा नियंत्रित नहीं होते हैं। ये सम्बन्ध कानूनी तत्वों की अपेक्षा नैतिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों से सम्बन्धित हैं। औद्योगिक सम्बन्धों में उपरोक्त दोनों धारणाएं निहित होती हैं परन्तु औद्योगिक सम्बन्धों को मानवीय सम्बन्ध समझने का भ्रम उत्पन्न नहीं होना चाहिए। मानवीय सम्बन्धों की अवधारणा फैक्टरी के श्रमिकों को आदर्शोन्मुखी बनाने की ठोस पद्धतियां मालूम करने से सम्बन्धित है।

शास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रतिपादक (क्लासीकल थ्योरिस्ट्स) संरचना और सिद्धान्तों पर बल देते थे। इसके विपरीत मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम व्यक्तियों और उनकी प्रेरणाओं पर बल देता है। संगठनों के कार्य कलापों को समझने के लिए यह अभिगम मानव की बहुआयामी प्रकृति और उनकी पारस्परिक प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करने में विश्वास करता है। औपचारिक संगठनों के कार्यकलापों को समझने के लिए यह अनौपचारिक संगठनों (इनफार्मल आरगनाइजेशन) के अध्ययन पर बल देता है।

मानवीय सम्बन्धों के सिद्धान्त और व्यवहार के आविर्भाव को कई सामाजिक आर्थिक तत्वों ने प्रभावित किया है। इनमें सर्वाधिक महत्वूपर्ण निम्नांकित हैं :

1. आर्थिक मंदी
2. पूंजी अवधारक उद्योग
3. तकनीकी प्रगति
4. टेलरवाद की प्रतिक्रिया
5. वर्ग विरोध

9.2.1 आर्थिक मंदी

इस सिद्धान्त का स्वरूप वर्तमान शताब्दी के दूसरे और तीसरे दशक में उभरा, जब पूंजीवादी देशों में सामान्य संकट था। इसका सबसे उपयुक्त उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका है क्योंकि इस देश पर 1929–32 के अभूतपूर्व आर्थिक संकट का गहरा प्रभाव पड़ा था। मशीनीकरण के फलस्वरूप अधिक उत्पादन से समस्या विकट हो गई। मशीनीकरण से शारीरिक परिश्रम में तो काफी कमी आई। परन्तु इससे मानसिक तनाव में वृद्धि हुई। नियोक्ताओं (मालिकों) के उद्योग में मनोवैज्ञानिक अथवा मानवीय तत्वों पर विशेष ध्यान देने के लिए विवश होना पड़ा। श्रमिकों द्वारा अपने काम में रुचि लिए जाने से उच्च

उत्पादन स्तरों का निर्धारण किया जाने लगा। उत्पादन में केन्द्रीकरण और विशिष्टीकरण से उद्यम के सभी विभागों के कार्यों में समन्वय की आवश्यकता हो गई। शोधकर्ताओं तथा कार्यकारी अधिकारियों ने यह स्थापित किया कि इस लक्ष्य की प्राप्ति में उत्पादन दलों के सदस्यों के पारस्परिक संम्बन्ध महत्वूपर्ण हैं।

9.2.2 पूंजी अवधारक उद्योग

इस काल में उद्योगों पर पूंजी का आधिपत्य बढ़ गया था। उपस्करों के बिगड़ने, हड़तालों और श्रमिकों के परिवर्तन से एकाधिकारी मालिकों को अत्यधिक नुकसान होने लगा था। अतएव इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि एकाधिकारी पूंजीवादी धनाढ्यों ने इस बात में अधिक रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया कि श्रमिकों में अपने कार्य तथा कम्पनी के हितों के प्रति निष्ठा बनी रहे।

9.2.3 तकनीकी प्रगति

इसी प्रकार तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप श्रमिकों में काफी परिवर्तन हुए। उनकी शिक्षा और व्यवसायिक कौशल का स्तर काफी ऊँचा उठ गया। फलस्वरूप श्रमिकों में अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का भाव तीव्र होने लगा और उनकी भौतिक तथा सांस्कृतिक आकांक्षाएं भी इस कदर बदल गई कि उन आकांक्षाओं को जान पाना कठिन होने लगा। अब श्रमिक और अधिक दृढ़ता और आग्रह के साथ यह मांग करने लगे कि उनके साथ इन्सानियत का व्यवहार किया जाये।

9.2.4 टेलरवाद की प्रतिक्रिया

मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम आंशिक रूप से टेलर पद्धति की एक पक्षीय प्रकृति की प्रतिक्रिया थी। दूसरे और तीसरे दशकों में टेलरवाद का प्रभुत्व रहा। टेलरवाद की आलोचना यह कह कर की गई कि "श्रमिकों की शारीरिक क्षमता के अधिकतम उपयोग और उत्पादन के उन्नत संगठन के माध्यम से उत्पादन स्तर बढ़ाकर शोषण को अधिक तीव्र करने का षडयंत्र है।" टेलर ने स्पष्ट रूप से कहा कि ''प्रत्येक व्यवसाय का अस्तित्व अपने मालिकों को अधिक लाभांश देना ही है।" टेलर श्रमिकों को आंखें बंद कर मशीनी काम का निर्धारित भाग पूरा करने वाला संलग्नक (एर्पेडेज) मानता था।

यद्यपि टेलर पद्धति के फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता में कुछ वृद्धि तो हुई पर अन्ततः इस पद्धति का अन्त हो गया। तीसरे दशक में श्रमिकों की उदासीनता और अवसाद से उनकी क्षुब्धता काफी बढ़ गई और उनमें कार्य में रुचि का पूर्ण अभाव हो गया। इन तथ्यों से मालिकों में बेचैनी पैदा हुई क्योंकि इससे श्रम की उत्पादकता में कमी, अनुपस्थितिवाद (एबसेन्टिज्म) तथा अधिक श्रमिक गिरावट आई। इसके अतिरिक्त मालिकों और प्रबन्धकों से श्रमिकों के सम्बन्ध भी बिगड़ गये।

9.2.5 वर्ग विरोध

संयुक्त राज्य अमेरिका में वर्ग प्रतिद्वन्दिता की स्थिति और अधिक खराब होने से तथा श्रमिक संगठन (ट्रेड यूनियन) आन्दोलन की दृढ़ प्रकृति से मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम अपनाने की गति में वृद्धि हुई। कुछ आलोचकों का कहना था कि श्रमिक आन्दोलनों में वृद्धि और श्रमिक संगठन ट्रेड यूनियनों

के विस्तार से ही एकाधिकारी मालिकों के हितों को व्यापक रूप से समझा जा सकता है।

मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम के उदय को अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में वर्ग शक्तियों के सहसम्बन्ध के पहले से ही देखा जाना चाहिए। वहां विश्व पर सोवियत संघ की अक्टूबर क्रान्ति के प्रभाव का भी उल्लेख किया जाना आवश्यक है। पूंजीवादियों को अपनी प्रधान और प्रभावी स्थिति बनाए रखने के लिए यह और अधिक अनिवार्य प्रतीत हुआ कि वे समाजवाद की चुनौती का उत्तर देने के लिए अपने उपाय विकसित करें।

9.3 मेयो के प्रारम्भिक प्रयोग

मानवीय सम्बन्धात्मक सिद्धान्त के आधारभूत नियम अमेरिकन समाजशास्त्री एल्टॉन मेयो द्वारा दूसरे दशक के अन्तिम तथा तीसरे दशक के प्रारम्भिक चरण में प्रतिपादित किए गए थे। औद्योगिक समाजशास्त्र और मनोविज्ञान पर उनके अध्ययन इतने गहन हैं कि उसे संगठन के मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम के प्रवर्तकों में गिना जाता है। मेयो ने श्रमिकों के व्यवहार और उनकी उत्पादन क्षमता का गंभीर अध्ययन किया। मेयो ने इस अभिगम को एक ''डाक्टरी विधि (क्लिनिकल मैथड)'' कहा है। अपने शोध के आधार पर उन्होंने कुछ विद्वतापूर्ण लेख और कुछ पुस्तकें प्रकाशित कीं।

9.3.1 प्रथम शोध (फर्स्ट इन्क्वायरी)

मेयो के शोध कार्य के समय अमरीका औद्योगिक संकट से गुजर रहा था। अतएव अपने समकालीन विद्वानों की भांति मेयो ने अपना ध्यान फैक्टरियों के औद्योगिक श्रमिकों की थकान, दुर्घटना, उत्पादन स्तर, विश्राम अवधि, कार्य स्थितियों आदि पर केन्द्रित किया। उन्होंने 1923 में फिलाडेल्फिया के निकट एक कपड़ा मिल में अपना पहला प्रयोग प्रारम्भ किया। उस समय की प्रचलित परिस्थितियों में यह मिल अपने श्रमिकों को सभी सुविधाएं देती थी और एक आदर्श संगठन मानी जाती थी। कम्पनी का प्रेसीडेन्ट संयुक्त राज्य सेना में कर्नल रह चुका था और कम्पनी के कई कर्मचारी प्रथम विश्व युद्ध के दौरान फ्रांस में उसके अधीन कार्य कर चुके थे, इसलिए वे कर्मचारी उनका आदर करते थे। प्रबन्धक वर्ग प्रगतिशील और मानवीय था, परन्तु उसे मिल के एक विशेष खंड में गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। मिश्रित कताई (म्यूल स्पिनिंग) शाखा के अतिरिक्त अन्य सभी शाखाओं में कर्मचारियों के सामान्य श्रमिक परिवर्तन टर्न ओवर वार्षिक आंकलन 5 प्रतिशत था, जबकि मिश्रित कताई शाखा में यह आंकलन करीब 250 प्रतिशत था। कोई भी इतने अधिक प्रतिशत का कारण नही जान पा रहा था। इतने बढ़े हुए श्रमिक परिवर्तन (टर्न ओवर) को कम करने के लिए सभी संभव प्रयास किए गए पर कोई भी सुखद परिणाम नहीं निकला। अंततः यह मामला हारवर्ड विश्वविद्यालय को सलाह के लिए भेजा गया।

हारवर्ड में कार्यभार संभालने के बाद मेयो द्वारा हाथ में लिया गया यह पहला प्रमुख शोध कार्य था और उन्होंने इसे ''प्रथम शोध (फर्स्ट इनक्वायरी)'' की संज्ञा दी। मेयो ने मिश्रित कताई विभाग की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन किया तथा प्रबन्धकों की सहायता से प्रयोग प्रारम्भ किए। प्रारम्भ में उन्होंने खुदरे कार्मिकों की प्रत्येक टीम में विश्राम अवधि (रेस्ट पीरयिड) लागू की। परिणाम उत्साहवर्धक थे। फिर थकान की समस्या से निजात पाने के लिए यह योजना सभी श्रमिकों के लिए लागू की गई। श्रमिकों ने इस योजना में रुचि दिखाई और इसके परिणाम उन्हें अच्छे लगे। उद्विग्नता

और बेचैनी के लक्षण गायब हो गए, लेबर, टर्न ओवर लगभग समाप्त हो गया, उत्पादन में वृद्धि हुई और मनोबल सामान्यतः बढ़ गया।

मेयो की अपने कार्य में आगे बढ़ने की यह शुरुआत थी। उन्होंने ऐसी कई योजनाएं सुझाईं जिनके तहत श्रमिक निर्धारित प्रतिशत से अधिक उत्पादन करके विश्राम अवधि और बोनस अर्जित कर पाते थे। कुछ और नई योजनाएं, यथा दस मिनट के लिए कताई कक्ष को पूरी तरह बन्द करने की योजना से सुपरवाइजर्स और कर्मचारियों के दृष्टिकोण में एक नया परिवर्तन आया और वे सब इस नई कार्य संस्कृति से काफी संतुष्ट हुए। प्रबन्धकों ने विश्राम अवधि का पूरा नियंत्रण श्रमिकों के हाथों में दे दिया जिससे कि श्रमिकों में आपसी विचार–विमर्श होने लगा। एक नई चेतना का प्रारम्भ हुआ जिससे ''मनुष्य को स्वार्थपरक व्यक्तिवादी असंगठित झुण्ड'' मानने वाली निम्न कोटीय परिकल्पना का स्थान धीरे–धीरे समूह के हित ने ले लिया।

9.4 हॉथार्न के अध्ययन

वेस्टर्न एलैक्ट्रिक कम्पनी के हॉथार्न प्लांट में उस समय 25,000 श्रमिक नियुक्त थे, जब यह गहन शोध क्रियाओं का केन्द्र बना। 1924 में शुरु हुए इस शोध को कई स्थानों पर प्रारम्भ किया गया। उस समय यह महसूस किया गया कि एक ओर शारीरिक काम, वातावरण तथा हितों को लें और दूसरी ओर श्रमिक की उत्पादकता को लें तो इन दोनों के बीच बड़ा ही स्पष्ट कार्य–कारण सम्बन्ध दिखाई देता है। अतएव प्रबन्धकों ने यह माना कि यदि समुचति वायु संचार, कमरे का तापमान, प्रकाश और अन्य भौतिक स्थितियां तथा मजदूरी प्रोत्साहन दिया जाए तो श्रमिक अधिक उत्पादन कर सकता है। विज्ञान राष्ट्रीय अकादमी की राष्ट्रीय शोध काउन्सिल ने प्रबोधन (इल्युमिनेशन) और श्रमिक की कार्यक्षमता के मध्य सही सम्बन्ध के परीक्षण का निश्चय किया। 1924 में शोध का प्रारम्भ हुआ।

9.4.1 महान् प्रबोधन 1924–27 (ग्रेट इल्युमिनेशन)

महिला मजदूरों के दो पृथक दलों का चयन किया गया, प्रत्येक दल में छः महिलाएं सम्मिलित की गईं तथा उन्हें समान कार्य सौंपे गये। कमरों को समान रूप से प्रदीप्त किया गया ताकि प्रदीप्ति के भिन्न–भिन्न स्तरों पर उत्पादनों का अध्ययन किया जा सके। प्रारम्भ में कार्य–स्थितियां स्थिर थीं। धीरे–धीरे इन स्थितियों में परिवर्तन किया गया ताकि इन स्थितियों का उत्पादन पर प्रभाव आंका जा सके। इस शोध से पता चला कि प्रदीप्ति की विभिन्न स्थितियों में नियंत्रण तथा प्रयोगात्मक दोनों दलों के उत्पादन में वृद्धि हुई। इससे उन्हें प्रदीप्ति सिद्धांत को त्यागना पड़ा मेयो ने स्थापित किया कि शोध के अन्तर्गत प्रयोग के कमरे पर अधिक ध्यान दिये जाने से वे सामाजिक इकाई बन गये तथा उक्त इकाई में परियोजना में भागीदारी की भावना विकसित हो गई।

1924 से 1927 तक हॉथार्न प्लांट में विविध प्रयोग किए गए। वास्तव में जब एक शोध निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने में असफल हो गई तब मेयो के प्रयोगों में संलग्न किया गया। टीम के द्वारा निकाले गए परिणामों के आधार पर मेयो ने महसूस किया कि संभवतः श्रमिकों की प्रवृत्ति (एटीट्यूड) श्रमिकों के व्यवहार के लिए जिम्मेदार है। मूल प्रबोधन परियोजना (इल्युमिनेशन प्रोजेक्ट) की असफलता की व्याख्या करने के लिए कुछ परिकल्पनाएं (हायपोथेसिसेज) भी प्रस्तावित की गईं, परन्तु सभी परिकल्पनाएं अमान्य कर दी गईं।

मेयो ने महसूस किया कि कार्य संतुष्टि (वर्क सेटिसफैक्शन) काफी हद तक कार्यकारी समूह के अनौपचारिक सामाजिक अभिरचना (पैटर्न) पर निर्भर है। उसका विचार था कि सुपरवाईजर को एक ऐसी भूमिका अदा करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है जो अपने अधीनस्थ कार्मिकों में व्यक्तिगत रुचि ले और अपनी ड्यूटी को पहले की अपेक्षा और अच्छी तरह कर सकें।

मेयो ने यह भी नोट किया कि श्रमिकों को ऐसे रखना चाहिए कि वह अपनी आवश्यकताएं खुल कर बताएं और कम्पनी के अधिकारियों से निडर होकर स्वतंत्रतापूर्वक विचार–विनिमय करें। मनोबल का बढ़ना पर्यावेक्षण की पद्धति से है। पर्यवेक्षण, मनोबल और उत्पादकता मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन के नींव के पत्थर बन गए। यह प्रयोग तंत्र महान प्रबोधन (ग्रेट इल्युमिनेशन) के नाम से जाना गया क्योंकि इसने औद्योगिक सम्बन्धों के नये क्षेत्रों पर प्रकाश डाला।

9.4.2 मानवीय भावनाएं और मनोवृत्तियां

1928 में हारवर्ड अध्ययन टीम ने उसी प्लांट में मानवीय मनोवृत्तियां और भावनाओं पर एक गहन अध्ययन किया। श्रमिकों से कहा गया कि वे प्रबन्धकों की नीतियों और कार्यक्रमों, काम की स्थितियों, प्रबन्धकों के बर्ताव आदि पर अपनी पसन्द अथवा नापसन्द स्वतंत्र और स्पष्ट रूप से बताए। कुछ प्रारम्भिक कठिनाइयों के बाद यह महसूस किया गया कि यद्यपि कोई सुधार लागू नहीं किए गये फिर भी श्रमिकों की मानसिक प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ। ऐसा लगने लगा कि जैसे श्रमिकों की मानसिक प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ। ऐसा लगने लगा कि जैसे श्रमिक प्रबन्ध व्यवस्था से संलग्न थे और यह महसूस करते थे कि उन्हें अपनी समस्याओं को प्रकट करने का अवसर प्राप्त है। यह उन्हें अच्छा लगा, हालांकि वातावरण में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ था।

जब आंकड़ों और तथ्यों (डाटा) का विश्लेषण किया गया तो पाया गया कि शिकायतों के प्रकार और वास्तविकताओं में कोई सह–सम्बन्ध नहीं है। शोध टीम ने यह महसूस किया कि शिकायतें दो प्रकार की थीं– भौतिक शिकायतें और मनोवैज्ञानिक शिकायतें। टीम ने यह महसूस किया कि अपनी निजी समस्याओं से श्रमिक की तन्मयता कई बार उद्योग में उसके कार्य निष्पादन में बाधक बन जाती है।

अध्ययन के पश्चात् निम्नांकित तीन पहलुओं का उल्लेख किया। एक यह कि श्रमिकों कंपनी की समस्याओं पर श्रमिकों से जानकारी प्राप्त करने की विधि की उन्होंने सराहना की। उनका विचार था कि वे मूल्यवान समीक्षात्मक मत दे सकते हैं और जब स्वतंत्र अभिव्यक्ति की अनुमति मिली तो उन्हें प्रसन्नता हुई।

दूसरे पर्यवेक्षकों में भी परिवर्तन आया क्योंकि शोध टीम ने उनके काम को बहुत नजदीक से देखा और अधीनस्थ लोगों को स्वतंत्रतापूर्वक बात करने की अनुमति दी गई।

तीसरे शोध टीम ने यह भी महसूस किया कि स्वयं उन लोगों ने अपने साथियों के साथ व्यवहार करने और उन्हें समझने की क्षमता प्रदान कर ली है।

9.4.3 सामाजिक संगठन

1931–32 में मेयो और उसकी टीम ने वेस्टर्न एलैक्ट्रिक कम्पनी में शोध कार्यक्रम के अन्तिम चरण को सम्पन्न किया। यह मुख्यतः सहज परिवेश

में श्रमिक समूहों के कार्य का अवलोकन करने के लिए किया गया था। अनौपचारिक पद्धतियां अमान्य कर दी गई थी। अवलोकन के बाद समूह के व्यवहार का विश्लेषण किया गया। एक जैसा कार्य करने वाले श्रमिकों के तीन समूहों के कार्मिकों को अध्ययन के लिए चुना गया। उनका काम टांका लगाने, टर्मिनल जमाने और वायरिंग पूरा करने का था। मजदूरी का भुगतान सामूहिक प्रोत्साहन योजना के आधार पर किया गया तथा प्रत्येक सदस्य को अपना हिस्सा समूह द्वारा किए गए कुल कार्य के आधार पर मिला। यह पाया गया कि श्रमिकों का कार्य करने का स्पष्ट मानदण्ड (स्टेन्डर्ड) था जो प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित लक्ष्य से कम था। श्रमिक वर्ग अपने सदस्यों को इस मानदण्ड से कम या अधिक उत्पादन नहीं करने देते थे। यद्यपि वे और ज्यादा उत्पादन करने में समर्थ थे, उत्पादन की एक सी दर बनाए रखने के लिए उत्पादन को निचले स्तर पर बनाये रखते थे। इस सामाजिक ढांचे से श्रमिक पूरी तरह परिचित हो गए थे और इसके विपरीत कार्य करने वाले त्रुटिकर्ता को ठीक करने के लिए अनौपचारिक दबाव डालते थे। समूह द्वारा इस उद्देश्य के लिए आचारसंहिता भी रखी जाती थी।

मेयो और उसकी टीम ने पाया कि समूह व्यवहार का, संयंत्र की सामान्य आर्थिक स्थिति या उसके प्रबन्ध से कोई सरोकार नहीं था। पर्यवेक्षक शिल्प विज्ञानियों से कार्य क्षमता की अपेक्षा की जाती थी पर श्रमिक वर्ग इन पर्यवेक्षकों और शिल्पविज्ञानियों की दखलन्दाजी को अपने काम में बाधा मानते थे। श्रमिकों का विचार था कि विशेषज्ञ समूह के कार्य में रुकावट डालते हैं।

इसके अलावा पर्यवेक्षक अलग वर्ग के रूप में श्रमिकों को अनुशसित करने वाली सत्ता का प्रतिनिधित्व करते थे। कार्यकुशलता के तर्क का भावनाओं के तर्क, (जो कि सामाजिक पद्धति की आधारशिला बन गया था) के साथ सामंजस्य नहीं हो सका।

हॉथोर्न अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष

1. एक कार्यकर्ता के काम का उत्पादन उसकी शारीरिक क्षमता से निर्धारित होता है, लेकिन उसकी सामाजिक क्षमता से नहीं।

2. गैर–आर्थिक इनाम श्रमिकों के व्यवहार को प्रभावित करता है।

3. एक कार्यकर्त्ता एक व्यक्ति के रूप में कार्य नहीं करता है बल्कि एक समूह के सदस्य के रूप में कार्य करता है।

4. संचार भागीदारी और नेतृत्व कामगारों के व्यवहार में एक केन्द्रीय भूमिका निभाते हैं।

इस प्रकार इस अध्ययन का निष्कर्ष यह था कि संगठन के मानवीय पक्ष को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। तकनीकी और आर्थिक पहलुओं पर ज्यादा बल देने की अपेक्षा प्रबन्धकों को मानवीय स्थितियों, प्रेरणा और श्रमिकों से सम्बन्ध स्थापित करने पर ध्यान देना चाहिए। मेयो का विचार था कि सहयोग प्राप्त करने के लिए सत्ता की अवधारणा विशेषज्ञता की अपेक्षा सामाजिक कौशल पर आधारित होनी चाहिए।

9.5 उद्योगों में अनुपस्थितिवाद

मेयो द्वारा 1943 में किया गया अध्ययन अन्तिम माना जा सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान उद्योगपतियों के सामने आ रही एक विचित्र समस्या से मेया को सामना करना पड़ा। युद्ध के दौरान जीवन के हर क्षेत्र में सर्वत्र

अस्तव्यस्तता आ गई थी। उद्योग इसके अपवाद नहीं थे। इस विशेष परिस्थिति में श्रमिकों का परिवर्तन (अदला–बदला) (टर्न ओवर) 70 प्रतिशत से भी अधिक था और गैरहाजरी एक पुरानी बीमारी की तरह फैल गई थी। प्रबन्धक वर्ग इस स्थिति से परेशान थे और उन्होंने मेयो से इसका कारण जानने तथा उपाय सुझाने के लिए कहा। मेयो ने 1943 में अपना कार्य प्रारम्भ किया।

अपने पुराने अनुभव के आधार पर मेयो और उसकी टीम ने पाया कि चिंताजनक श्रम परिवर्तन और अनुपस्थितिवाद वाले उद्योग में न तो अनौपचारिक समूह थे और न सहज नेतृत्व था जो श्रमिकों को एक टीम के रूप में सम्बद्ध कर सके। अपने व्यक्तिगत सनक के कारण श्रमिक स्वयं टीम बनाने में असमर्थ थे क्योंकि उन्हें अनौपचारिक टीम बनाने का अवसर ही नहीं दिया जााात था। इन्हीं कारणों से बहुत ज्यादा श्रमिक परिवर्तन (टर्न ओवर) और अनुपस्थिति रहती थी। मेयो ने सुझाव दिया कि जहां तक संभव हो प्रबन्धकों को अनौपचारिक समूहों का गठन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और श्रमिकों की समस्याओं को इंसान समझा जाना चाहिए, वह मशीन का चक्का नहीं श्रमिकों में यह भावना नहीं पनपनी चाहिए कि वे प्रबन्धकों के शोषण के शिकार हैं।

अतएव मेयो ने अनौपचारिक समूहों के गठन का सुझाव दिया, जिससे कि संगठनों में श्रमिकों का सहयेाग विकसित किया जा सके। उसके अध्ययनों से कार्य स्थितियों में मानवीय तत्व का अधिकाधिक बोध होने लगा और मालिक मजदूर के बीच अधिक संपर्क व्यवस्था कायम हुई। मेयो द्वारा किए गए विभिन्न अध्ययनों के विश्लेषण के उपरान्त अब हम उस अन्तिम चरण पर आ गए हैं कि हम उसके अध्ययनों पर आलोचनात्मक दृष्टि डाल सकते हैं।

9.6 आलोचना

मेयो और उसके शोध निष्कर्षों की कटु आलोचना हुई। सबसे पहले उनकी आलोचना इस आधार पर की गई कि यह सिद्धान्त यूनियन प्रतिनिधित्व के स्थान पर मानवीय सम्बन्धोनमुखी पर्यवेक्षक स्थापित करने का प्रयास करता है। स्वतंत्र समाज में संगठनों की भूमिका न समझ पाने के लिए भी उसकी आलोचना की गई। यह तर्क दिया गया कि मेयो ने कभी भी अपने चिंतन में संगठनों को शामिल करने का प्रयास नहीं किया। इसलिए लारेन बारिन और अन्य ने ''मेयोवादियों'' को यूनियन विरोधी तथा प्रबन्धकों का पक्षधर कह कर उनकी आलोचना की। वस्तुतः 1949 में अमरीका के यूनाइटेड आटो वर्क्स ने कटु आलोचना कर ''मेयोवाद'' पर प्रहार किया और हॉथार्न के शोधकर्ताओं को ''भीरु समाजशास्त्री'' बताकर उनकी निन्दा की। कुछ आलोचकों ने यह इंगित किया कि अपेक्षाकृत इने–गिने अध्ययनों से व्यापक निष्कर्ष निकले गए थे और ये अध्ययन भी क्षतिपूर्ण थे।

कैरी जैसे आलोचकों का कहना था कि हॉथार्न समूह ने अपने पहले प्रयोग के लिये ''सहयोग करने वाली'' कुछ लड़कियों को चुना जो उनके शोध कार्यक्रम में भाग लेने के लिए तैयार थीं और इस प्रकार शोध ''बेकार था'' क्योंकि पांच या छः के उदाहरण को सामान्यीकरण के लिए विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। कैरी ने यह भी कहा कि प्रयोगों से प्राप्त साक्ष्य हॉथार्न शोधकर्त्ताओं द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का समर्थन हीं करते हैं। साक्ष्य और निष्कर्षों के बीच अत्यधिक विसंगति है। दूसरी ओर कैरी के अनुसार इस शोध के आंकड़े भी उसी पुराने दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं, जिसके अनुसार आर्थिक प्रोत्साहन, नेतृत्व और अनुशासन बेहतर कार्य निष्पादन के प्रेरक तत्व (मोटीवेटिंगफैटर्स) माने जाते हैं। कैरी ने हॉथार्न शोधकर्त्ताओं की यह कह कर भी आलोचना की है कि उनमें वैज्ञानिक आधार का अभाव था।

प्रख्यात प्रबन्ध विज्ञान विशेषज्ञ पीटर एफ ड्रकर ने मानवीय सम्बन्धवादियों की आलोचना यह कह कर की कि उनमें आर्थिक आयाम की जानकारी का अभाव था। उसका विचार था कि हारवर्ड समूह ने कार्य की प्रकृति की उपेक्षा की और इसके स्थान पर वैयक्तिक सम्बन्धों पर ध्यान केन्द्रित किया। मेयो की आलोचना इसलिए की गई कि संगठन के काम और उद्दश्यों की उपेक्षा करते हुए उसकी भावनाएं संगठन के सदस्यों पर केन्द्रित थी। शिथिलता और दिशा निर्देशन के अभाव के लिए भी मेयो की आलोचना की गई। मेयो की इसलिए भी आलोचना की गई कि उन्होंने कर्मचारियों के निजी जीवन और यहां तक कि निजी विचारों पर पितृसत्तात्मक आधिपत्य को प्रोत्साहित किया। आलोचकों का तर्क है कि मेयो के दर्शन में संघर्ष का कोई स्थान नहीं है और मेयो ने व्यक्ति तथा समूह के हितों को प्रशासनिक उच्च वर्ग के अधीन कर संगठनात्मक सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया।

बेन्डिक्स और फिशर का तर्क था कि समाजविज्ञानी के रूप में मेयो की असफलता का कारण बहुत हद तक यह है कि वे अपने वैज्ञानिक कार्य की नैतिक पूर्वमान्यताओं की व्याख्या करने में असफल रहे। मेयो का कहना था कि ज्ञान और कौशल का कम मूल्य लगाया जाता है पर उपरोक्त पूर्वानुमानों को स्पष्ट किये बिना लोकतांत्रिक समाजों में वह ज्ञान और कौशल अधिक मूल्यांकन का पात्र भी नहीं है। मेयो और उसके सहयोगियों द्वारा प्रतिपादित मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्तों के कटु आलोचकों में से एक डेनियल सेल भी थे। सेल का कहना था कि हारवर्ड ग्रुप द्वारा अपनाई गई पद्धति दोषपूर्ण थी। अन्य आलोचकों ने इस ओर संकेत किया कि संघर्ष विहीन स्थिति और श्रमिक संतुष्टि से कम्पनी को सफलता मिलेगी। यह बात मानने योग्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक मानवीय स्थिति में कुछ तनाव और संघर्ष अनिवार्य रूप से रहते हैं। संघर्ष विहीन समाज के काल्पनिक आदर्शों में उलझने के बजाय स्वस्थ अभिव्यक्ति का अवसर देना महत्वपूर्ण होगा। अतएव आलोचकों का कहना था कि मेयो की टीम में वृहत्तर सामाजिक और तकनीकी व्यवस्थाओं के ज्ञान का अभाव परिलक्षित होता है। यह कहा गया है कि मानव सम्बन्ध आन्दोलन ने कर्मचारी प्रबन्धन में कोई भी क्रांतिकारी बदलाव नहीं किया।

9.7 सारांश

प्रशासनिक संगठन में मेयो का योगदान आधुनिक युग की एक महान नवीनता रही है। पहली बार उन्होंने वैज्ञानिक प्रबन्ध युग के परम्परागत तरीके से भिन्न दृष्टिकोण से औद्योगिक श्रमिक समस्याओं को समझने का प्रयास किया। मानवीय सम्बन्धों के अतिरिक्त मेयो ने पूंजीवादी समाज में मालिक–मजदूर सम्बन्ध, श्रम की स्थिरता, श्रमिकों के सुपरवीजन आदि का समीक्षात्मक परीक्षण किया। यद्यपि हॉथार्न प्लान्ट में और अन्यत्र भी, मेयो के सहयोगियों ने ही कार्य का विस्तृत विश्लेषण किया तथापि मेयो विभिन्न चरणों में ऐतिहासिक महत्व के हो गए। जैसा कि ड्रकर ने कहा ये अध्ययन ''मानवीय सम्बन्धों के क्षेत्र में अभी भी सर्वश्रेष्ठ, सर्वाधिक प्रगतिशील और सबसे अधिक पूर्ण हैं।" वास्तव में यह विवादास्पद है कि उद्योगों, श्रम यूनियनों और शैक्षिक जीवन में लगे अनगिनत लोगों द्वारा बाद में जोड़े गए कई शोधन क्या मूल प्रबोध जानकारी का स्पष्टीकरण कर पाये थे अथवा उसे भली प्रकार समझ सके हैं। मेयो का योगदान न केवल औद्योगिक सैक्टर में बल्कि राज्य के प्रशासनिक तंत्र में भी, और विशेषतः नौकरशाही के मामले में अत्यधिक पर्याप्त संवाद का मार्ग प्रशस्त किया है। किसी भी संगठन में सामाजिक कौशल की सहायता से उसे प्रशासनिक सिद्धान्तों में मानवीय सम्बन्धों की अवधारणा का जनक माना जाता है। व्यवहारवादी वैज्ञानिक शब्दावली प्रचलित होने के पहले से ही मेयो व्यवहारवादी वैज्ञानिक थे। समग्र रूप से देखा जाए तो हॉथार्न के

शोध कार्यों का महत्व अनौपचारिक संगठन की खोज है जो आज सभी संगठनों में विद्यमान होते हैं। कार्यरत श्रमिकों के व्यवहार को प्रभावित करने वाले समूह के महत्व का इन प्रयोगों में बहुत ही शानदार ढंग से विश्लेषण किया गया था।

आलोचनाओं के बावजूद, मेयो का समूह नेतृत्व, अनौपचाारिक सम्बन्धों और सामाजिक अव्यवस्था पर ध्यान संगठनों के अध्ययन में एक प्रशंसनीय बदलाव लाया।

9.8 प्रमुख शब्दावली

डाक्टरी पद्धति (क्लिनिकल मैथड) : वह पद्धति जो श्रमिकों के व्यवहार और उनकी उत्पादन क्षमता पर ध्यान आकर्षित करती है।

महान प्रबोधन (ग्रेट एल्युमिनेशन) : एल्टॉन मेयो के प्रयोगों का तंत्र जिससे औद्योगिक सम्बन्धों के नए क्षेत्रों पर प्रकाश पड़ा।

औद्योगिक शैतान (इन्डस्ट्रियल ब्ल्यूज) : अत्यधिक मशीनीकृत फैक्टरियों के श्रमिकों में उदासीनता, क्षोभ और रूचि का पूर्ण अभाव।

गुबार निकालना (लेट ऑफ स्टीम) : अपनी शिकायतों की अभिव्यक्ति।

सारयुक्त शिकायतें (मेटीरियल कम्पलेन्ट्स) : धन सम्बन्धी मामलों की शिकायतें।

मनोवैज्ञानिक शिकायतें (सायकालीजीकल कम्पलेन्ट्स) : मानसिक तनाव और दबाव सम्बन्धी शिकायतें।

राबर्ट ओवन : प्रारम्भिक समाजवादी जिसका विश्वास था कि सामाजिक जीवन और श्रम एक दूसरे पर आश्रित हैं।

प्रथम शोध (दी फर्स्ट इनक्वायरी) : एल्टॉन मेयो द्वारा 1923 में फिलाडेल्फिया के निकट एक कपड़ा मिल में किया गया पहला प्रमुख शोध अध्ययन।

9.9 बोध प्रश्न

1. (1) मानवीय सम्बन्धात्मक अभिगम क्या है?

   (2) मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त के उदय के कारण क्या हैं?

2. (1) प्रथम शोध (फर्स्ट इन्क्वायरी) समझाइये?

   (2) वेस्टर्न एलैक्ट्रिकल कम्पनी में दिए गए प्रयोग समझाइये?

   (3) मानवीय सम्बन्धात्मक सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएं क्या हैं?

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखिए खण्ड 9.2

   (2) देखिए खण्ड 9.2

2. (1) देखिए उपखण्ड 9.3.1

(2) देखिए खण्ड 9.6

(3) देखिए खण्ड 9.8

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Barker, R.J.S. 1972, Administrative Theory and Public Administration; Hutchinson University Library : London

Gvishiani, G. 1972, Organisation & Management Progress Publishers : Moscow

Prasad, Ravindra, D. (Ed.) 2nd Edition, 2010 Administrative Thinkers; Sterling Publihsers: New Delhi.

इकाई– 10

व्यवस्थावादी उपागमः चेस्टर बरनार्ड

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 व्यवस्थावादी उपागम

10.4 एक सहकारी व्यवस्था के रूप में

संगठन 10.4 औपचारिक संगठन

10.5 सत्ता की अवधारणा

10.6 उदासीनता के क्षेत्र

10.7 कार्यपालिका के कार्य

10.8 एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

10.9 सारांश

10.10 प्रमुख शब्दावली

10.11 बोध प्रश्न

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

- व्यवस्था की परिभाषा देना,
- एक सहकारी व्यवस्था की विशेषताएं जानना,
- सत्ता सिद्धान्त की व्याख्या करना,
- उदासीनता– क्षेत्र की पहचान कर सकेंगे,
- कार्यपालिका के कार्य जान सकना तथा
- प्रशासनिक सिद्धान्त के प्रति बरनार्ड के योगदान की समीक्षा करना है।

10.2 प्रस्तावना

बरनार्ड (1886–1961) को मूल रूप में एक व्यवहारवादी माना जाता है क्योंकि उन्होंने प्रबन्ध के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर बल दिया। उसके साथ ही उन्हें व्यवहारवादी विचारक माना जाता है। वह संगठन को एक सामाजिक व्यवस्था

के रूप में देखते हैं। बरनार्ड, जिसने अपना जीवन व्यापार व्यवस्थाओं के प्रबन्ध में कार्य करके व्यतीत किया, इन्होंने दो पुस्तकें लिखीं : द फंक्शंस ऑफ द एक्जीक्यूटिव (1938) तथा आर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमैण्ट (1948)। इन दो पुस्तकों में सहकारी व्यवस्था के रूप में संगठन पर अपने विश्वसनीय विचार प्रस्तुत किए।

10.3 व्यवस्थावादी उपागम

एक व्यवस्था की परिभाषा वस्तुओं की व्यवस्था के उस सैट के रूप में दी जाती है जिससे वे इस प्रकार जुड़े या सम्बन्धित हों कि एक एकीकृत पूर्ण का निर्माण हो। व्यवस्था का निर्माण अंतरसम्बन्धित तथा अन्तनिर्भर तत्वों से होता है जो अंतःक्रिया करते समय एकात्मक ''पूर्ण'' बनाते हैं। परिभाषा के अनुसार किसी भी तथ्य या घटना का विश्लेषण व्यवस्थावादी दृष्टिकोण के आधार पर किया जा सकता है। व्यवस्थावादी उपागम इस सिद्धान्त पर आधारित है कि संगठन के सभी अंग अन्तर्सम्बन्धित, पारस्परिक रूप से जुड़े हुए तथा अन्तर्निर्भर होते हैं। व्यवस्थावादी उपागम अपने आप में नया नही है। इस उपागम का सर्वप्रथम विकास प्राकृतिक तथा भौतिक विज्ञानों में हुआ। यहां तक कि प्रशासनिक तथा प्रबन्ध–साहित्य में भी व्यवस्थावादी अवधारणाओं का प्रयोग इस सदी के प्रारम्भिक भाग में टेलर तथा अन्य लोगों ने किया था। जो नई बात है वह सामाजिक विज्ञान साहित्य में इस उपागम पर दिया गया बल है, जिसमें ज्ञान–समन्वय अधिक उजागर रूप में अनुभव किया गया है। टॉलकॉट पारसंस ने सामाजिक संरचनाओं के अध्ययन में मुक्त व्यवस्था उपागम को अपनाया। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक अर्थशास्त्री, राजनीति शास्त्री तथा प्रशासनिक विश्लेषक तथ्य या घटना के विश्लेषण में व्यवस्थावादी उपागम का प्रयोग करते रहे हैं। प्रशासनिक विश्लेषण में सामयिक वर्षों में व्यवस्थावादी उपागम का विस्तृत रूप से प्रयोग हो रहा है।

संगठन–तत्व को समझने में बरनार्ड का योगदान प्रशासनिक सिद्धांत के विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। जिस सिद्धान्त का 1930 के बाद के वर्षों में विकास तथा प्रकाशन किया गया, वह आज भी बहस तथा चर्चा का विषय है। इससे सिद्धांत की प्रासंगिकता तथा उसकी बौद्धिक तथा अवधारणात्मक सामर्थ्य का पता चलता है। बरनार्ड का सिद्धांत एक ओर तार्किकता के सिद्धान्त और दूसरी ओर औपचारिक और अनौपचारिक सिद्धान्तों के सम्मिश्रण का मिलन बिन्दु और चरम बिन्दु दोनों ही है। उनके सिद्धान्त का उद्देश्य, जैसा कि स्वयं बरनार्ड ने कहा है, औपचारिक संगठनों में सहकारी व्यवहार का एक विस्तृत सिद्धांत प्रदान करना है। इन सिद्धान्तों का निर्माण पूर्ण रूप से शैक्षिक या सैद्धान्तिक प्रयोग के आधार पर न होकर बरनार्ड ने विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर रहकर प्राप्त किये विविध अनुभवों के आधार पर हुआ। यही सम्मिश्रण बरनार्ड के योगदान को काफी महत्वपूर्ण बनाता है।

10.4 एक सहकारी व्यवस्था के रूप में संगठन

बरनार्ड अपने सिद्धान्त का विकास एक केन्द्रीय प्रश्न को लेकर करता है– किन परिस्थितियों में व्यक्ति का सहकारी व्यवहार संभव है? वह संगठन को एक सहकारी व्यवस्था समझते हैं। उनका कहना है कि सहयोग का जन्म उन उद्देश्यों की प्राप्ति की आवश्यकता से होता है, जिन्हें वह अकेले प्राप्त नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, संगठन दूसरे लोगों के सहयोग की भरती बन जाता है। चूंकि बहुत से व्यक्ति सहयोगी व्यवहार में संलग्न होते हैं, यह निरन्तर बदलता है तथा जटिल जीवन वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारक निरन्तर पारस्परिक क्रिया करते हैं। सहयोगी संगठन को अपने अस्तित्व

के लिए संगठन–उद्देश्य प्राप्त करने के अर्थ में प्रभावी एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों को संतुष्ट करने में व्यवहारिक होना चाहिए। इस प्रकार संगठन तथा व्यक्ति दोनों महत्वपूर्ण बन जाते हैं। कार्यपालिका संगठन को व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा सामान्य वातावरण के अनुकूल ढालना चाहिए। प्रभावशीलता तथा कुशलता का यही चिन्तन सहयोगी व्यवहार के उसके सिद्धान्त का मूल आधार है।

सहयोगी व्यवस्था को व्यक्ति एवं संगठन के बीच सम्बन्ध में समझने की आवश्यकता है। बरनार्ड सबसे प्रथम व्यक्ति के गुणों को समझने का प्रयास करते हैं। वे गुण हैं– (अ) गतिविधि या व्यवहार जो (ब) मनोवैज्ञानिक कारकों से उत्पन्न होता है तथा जिनमें (स) चयन की सीमित शक्ति जोड़ दी जाती है जिसका परिणाम (द) उद्देश्य होता है। ये चार मान्यताएं या आधार बढ़ा–चढ़ाकर कहने की प्रवृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त कार्यवाही भी इस विश्वास पर आधारित होती है कि एक व्यक्ति की रुचि क्या है। बरनार्ड का कहना है इस प्रकार की मुक्त रुचि का कोई स्थान नहीं होता है। व्यक्तियों का अनूकूल न होना गल्ती से संगठन के प्रति विरोध समझा जाता है। वास्तव में यह विरोध नहीं होता, अपितु संरचनात्मक सीमा होती है जहां व्यक्ति की रुचि संगठनात्मक उद्देश्यों के साथ समावेश या समझौता नहीं हो सकता। यही प्रक्रिया प्रशिक्षण तथा अन्य प्रोत्साहनों को जन्म देती है जिनका लक्ष्य व्यक्तिगत व्यवहार तथा संगठनात्मक आवश्यकताओं के बीच समझौते को आसान बनाना होता है।

बरनार्ड मानव को दो स्तरों पर समझने का प्रयास करते हैं। एक संगठन के भीतर तथा दूसरे संगठन के बाहर। आंतरिक रूप में उन्हें ''विशेष–सहयोगी व्यवस्था के भागीदार'' माना जाता है। यहां उन्हें केवल उनके कार्यात्मक पहलुओं के संदर्भ में देखा जाता है। तत्पश्चात् प्रयास निर्वैयक्तिक होते हैं और उन्हें औपचारिक भूमिकाओं के अनुरूप बैठाया जाता है। दूसरे दृष्टिकोण से किसी विशेष या निश्चित संगठन से बाहर व्यक्ति के अपने अलग गुण होते हैं। बरनार्ड के अनुसार ये दो पहलू समय के आधार पर विकल्प न होकर एक साथ उपस्थित होते हैं। इस प्रकार की स्थिति से ही एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है जब व्यक्ति के कार्य एक दृष्टिकोण से कार्यों की अवैयक्तिक प्रणाली का एक हिस्सा होते हैं तथा दूसरे दृष्टिकोण से व्यक्ति सहयोग व्यवस्था से बाहर तथा उसके विरुद्ध होता है। पारस्परिक रूप से विरोधी तथा टकराने वाले इन्हीं पहलुओं के गंभीर परीक्षण की आवश्यकता है यदि संगठन को एक सहयोगी व्यवस्था के रूप में समझना है, तो।

व्यक्तियों के व्यवहार की परीक्षा इस पूछताछ से शुरु होनी चाहिए कि व्यक्ति किसी सहयोगी व्यवस्था या संगठन में किस प्रकार शामिल हो। व्यक्ति दो आधारों पर चयन करता है– (1) उद्देश्य, इच्छाएं, तात्कालिक मनोवेग तथा (2) व्यक्ति के बाहरी विकल्प, इन किन्हीं श्रेणियों में से व्यक्ति के कार्य पर नियंत्रण या प्रभाव के फलस्वरूप ही संगठित प्रयास होता है। ये मानव व्यवहार का एक महत्वपूर्ण आयाम है। अपने ध्येय अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में ही व्यक्ति को उनका ज्ञान होता है। प्रभावशीलता तथा व्यावहारिकता या कुशलता की जड़ें ध्येयात्मक प्रक्रियाओं में हैं।

बरनार्ड का कहना है कि यह कार्य ''प्रभावी'' कहा जाता है जिससे एक निश्चित वांछित लक्ष्य की प्राप्ति हो गई हो और उस समय कार्य अव्यवहारिक कहलाता है, जब इसके परिणाम अनपेक्षित हों। फिर भी, यदि अनपेक्षित परिणाम व्यक्ति की इच्छाओं को संतुष्ट करते हैं जिसे कार्यवाही या कार्य ने आवश्यक रूप से तथा सीधे रूप से नहीं सोचा हो, तो कार्यवाही व्यवहारात्मक या कुशल कहलायेगी परन्तु प्रभावी नहीं। इस प्रकार पहले से न सोचे गए

परिणाम किसी कार्यवाही के कुशल या प्रभावी होने का निर्णय दे सकते हैं। अन्य शब्दों में वह कार्य प्रभावी होता है जो अपने निश्चित निर्पेक्ष उद्देश्य को प्राप्त करता है। यह उस समय प्रभावी होता है जब यह उस उद्देश्य के ध्येय को संतुष्ट करता है तथा उस लक्ष्य, जिसकी ओर गतिविधि निदेशित है, की प्राप्ति में सहायता किये बिना।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि मानव स्वभाव के विषय में दो दार्शनिक प्रस्ताव हैं– (अ) ऐसे दर्शन हैं जो मानव व्यवहार की सार्वभौमिक शक्तियों की प्रस्तुति के रूप में व्याख्या करती है। जो व्यक्ति को मात्र अनुकूल मानती हैं, जो विकल्प या इच्छा की स्वतंत्रता की मनाही करती है। जो संगठन तथा समाजवाद को आधारभूत बताती है। (ब) ऐसी विचारधाराऐं हैं जो व्यक्ति को स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाने का विकल्प प्रदान करती है, जो भौतिक तथा सामाजिक वातावरण को गौण तथा अतिरिक्त स्थिति तक अवनत करती है। बरनार्ड इन दो मतों में समझौता कराने का प्रयास न करके, ''सहयोगी व्यवस्था'' में इन दोनों मतों को स्पष्ट करना चाहते हैं। सहयोगी व्यवस्था से प्राप्त अनुभव से कोई भी यह समझ सकता है कि वे दोनों विचारधाराएं किस प्रकार सहयोगी व्यवस्था की कार्य–प्रणाली पर निर्भर मानव के कार्यों को किस प्रकार प्रभावित करती है।

सहयोग के तथ्यों का परीक्षण करते हुए सहयोग के कारणों की खोज बरनार्ड भौतिक तथा क्रियात्मक कारणों में करते हैं। व्यक्ति सहयोग करते हैं क्योंकि अकेले वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हैं। उनकी शारीरिक सीमाएं सहयोगी कार्यवाही की ओर उन्हें ले जाती हैं। सहयोगी तथ्यों को परखने की एक दूसरी दृष्टि है। प्रकृति अकेले व्यक्ति पर ऐसे प्रतिबन्ध लगा देती है कि वह उन पर सहयोगी कार्यवाही के अतिरिक्त विजय नहीं पा सकता। उदाहरण के लिए, एक पत्थर है जिसे एक व्यक्ति उठाना चाहता है, परन्तु वह उठा नहीं सकता। उसकी यह असमर्थता दो दृष्टिकोणों से देखी जा सकती है। एक, वह इतना छोटा है कि उसे उठा नहीं सकता, दूसरे, पत्थर इतन बड़ा है कि उसे उठाया नहीं जा सकता। एक दृष्टिकोण से सीमा शारीरिक है तथा दूसरे से यह भौतिक है। यदि एक बार आदमी पत्थर को उठाने का लक्ष्य तय कर ले, तो दोनों ही प्रकार से सहयेाग आवश्यक हो जाता है। सीमाएं सदैव एक व्यक्ति द्वारा निर्धारित लक्ष्य या ध्येय से संबन्धित होती हैं।

ऊपर जैसी परिस्थितियों में व्यक्तिगत विशेषताओं को समझने की आवश्यकता है। एक सहयोगी स्थिति में जहां सभी व्यक्तियों की मनःशक्तियों को एक साथ रखा गया हो निजी मनःशक्तियों का स्वयं में शायद कोई अर्थ न हो। इसलिए सभी सहयोगी गतिविधियों में कार्यवाही का लक्ष्य व्यक्ति से हटाकर सामूहिक लक्ष्यों से विस्थापित किया जाता है। चूंकि सहयोगी कार्यवाही के विभिन्न प्रकार के साध्य हो सकते हैं, इसलिए प्रत्येक प्रकार का कार्य सहयोग को सीमित करने वाली स्थिति बन जाता है। इसके अतिरिक्त वे लक्ष्य जिन्हें व्यक्ति प्राप्त करने का प्रयास करता है जिसके लिए नये प्रकार की सहयोगी कार्यवाही की सीमाएं न केवल व्यक्तियों की सीमाओं से उत्पन्न होती है, अपितु सहयोगी कार्यवाही की संरचना से भी उत्पन्न होती है। इस प्रकार सहयोगी कार्यवाही की प्रभावशीलता बदलते परिवेश तथा सहयोगी कार्यवाही का सामना करने की क्षमता पर निर्भर होती है। ऊपरी चर्चा से परिलक्षित होता है कि सहयोग दो अंतर्संबद्ध तथा अन्तनिर्भर प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है– (अ) वे जो परिवेश के संदर्भ में संपूर्ण सहयोग–व्यवस्था से सम्बन्धित हैं तथा (ब) वे जिनका सम्बन्ध व्यक्तियों के बीच संतुष्टि पैदा करना या बांटना है। संगठनों या सहयोगी प्रक्रियाओं की अस्थिरता तथा असफलता इन प्रक्रियाओं

के अलग–अलग वर्गों में से प्रत्येक की कमियों से तथा उनके सम्मिश्रण में कमियों से उत्पन्न होती है।

10.5 औपचारिक संगठन

सहयोगी व्यवस्थाएं औपचारिक संगठनों को जन्म देती हैं। संगठन की परिभाषा देते हुए बरनार्ड कहते हैं कि संगठन जानबूझकर समन्वित की गई व्यक्तिगत गतिविधियों या शक्तियों का नाम है। संगठन उस समय बनता है जब (1) परस्पर बातचीत करने में समर्थ लोग हों (2) जो कार्य में सहयोग देने के इच्छुक हों (3) साझा उद्देश्य। इस बात को स्पष्ट करते हुए बरनार्ड कहते हैं कि संगठन की कार्यशक्ति सहयोगी व्यवस्था के लिए शक्ति प्रदान करने की लोगों की तत्परता पर निर्भर करती है। इस तत्परता के लिए वह विश्वास आवश्यक है कि उद्देश्य पूरा किया जा सकता है। परन्तु प्रभावशीलता के समाप्त होने पर योगदान करने की तत्परता लुप्त हो जाती है। तथा संगठन–अकुशलता की स्थिति बन जाती है। यदि संतुष्टि त्याग से अधिक हो तो तत्परता निरन्तर रहती है तथा कुशल संगठन की स्थिति बन जाती है।

ऊपरी मान्यताओं को आधार बनाकर बरनार्ड टिप्पणी करते हैं कि एक संगठन का अस्तित्व बाहरी परिवेश से अनुकूल संचार, तत्परता एवं उद्देश्य के संयोजन पर निर्भर करता है। इसका बने रहना व्यवस्था के संतुलन को बनाए रखने पर निर्भर करता है। संतुलन के आंतरिक तथा बाहरी दोनों आयाम हैं। आंतरिक संतुलन इन तीनों तत्वों के अनुपात पर निर्भर है। बाहरी संतुलन में दो शब्दावलियां हैं। पहली, संगठन की प्रभावशीलता जिसमें परिवेशीय स्थिति के साथ उसके उद्देश्य की प्रासंगिकता निहित है तथा दूसरे, इसकी कार्यकुशलता जो संगठन तथा व्यक्तियों के बीच परस्पर– परिवर्तन से बनी है। दो स्तरों पर संतुलन बनाये रखने में ही औपचारिक संगठन का स्थायित्व बना रहता है तथा उन्नति करता है।

सहयोगी व्यवस्थाओं तथा प्रक्रियाओं की गहरी समझ के लिए औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठनों के बीच सम्बन्ध को समझना आवश्यक है। बरनार्ड का कहना है कि व्यवस्थित अंतर्क्रियाओं के आधार पर मनुष्यों के सम्बन्ध का ताना–बाना विकसित करना मानव स्वभाव तथा सामाजिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है। इससे प्रथाओं तथा संस्थाओं का विकास होता है। इनका सहयोगी व्यवस्थाओं पर अत्यधिक प्रभाव होता है। वास्तव में बरनार्ड का बल इस बात पर है कि सामाजिक प्रक्रियाओं के परिणाम के रूप में प्रत्येक अनौपचारिक संगठन औपचारिक संगठन को जन्म देती है तथा प्रत्येक औपचारिक संगठन, अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों के कारण अनौपचारिक संगठन को जन्म देती है। संचार या संसक्ति तथा व्यक्तियों की ईमानदारी की रक्षा करने के साधन के रूप में अनौपचारिक संगठन औपचारिक संगठन के कार्य करने के लिए आवश्यक बन जाती है।

औपचारिक संगठन के कुछ अद्भुत तत्व हैं जो सहयोगी व्यवस्थाओं तथा उनकी संरचनात्मक आवश्यकताओं एवं व्यक्तिगत आकांक्षाओं का प्रयोग करने के सामर्थ्य को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। संगठन की औपचारिक व्यवस्थाओं में, श्रम विभाजन, जो विशेषीकरण या कार्यात्मकता के रूप में माना जाता है, संगठन का अटूट हिस्सा है। इन दो शब्दों का जब और आगे विश्लेषण किया जाता है तो पता चलता है कि व्यक्ति विशेषज्ञता प्राप्त करता है परन्तु कार्य क्रियागत होता है। किसी भी स्थिति में, श्रम के विभाजन का परिणाम समानुपातिक रूप से कार्य के विभाजन में होता है। संगठन विशेषीकरण के 5 आधार हैं।

(अ) वह स्थान जहां कार्य सम्पन्न होता है (ब) कार्य का समय (स) वे लोग जिनके साथ कार्य किया जाता है (द) वे वस्तुएं जिनके ऊपर कार्य किया जाता है तथा (य) पद्धति अथवा प्रक्रिया जिसके माध्यम से कार्य किया जाता है। सहयोग की प्रक्रिया में पांचों आधारों की आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही संगठन की कुशलता अधिकतर निर्भर करती है।

औपचारिक संगठन में सहयोगी प्रयास के उद्देश्य से प्रोत्साहन का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। कुल मिलाकर संतुष्टि जो एक व्यक्ति को संगठन हेतु प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करती है, हानियों के मुकाबले सकारात्मक लाभों का परिणाम होता है। प्रोत्साहन दो प्रकार के होते हैं, भौतिक व अभौतिक। भौतिक प्रोत्साहनों मे वेतन की दशाएं तथा पदोन्नति के अवसर आदि शामिल हैं। अभौतिक प्रोत्साहन भी होते हैं। जिनमें सम्मानों तथा विशेषाधिकारों तथा संगठन का रखरखाव गौरव, सामुदायिकता की भावना आदि के साथ पदों का सोपान शामिल है। बरनार्ड का कहना है, दोनों प्रकार के प्रोत्साहन, आवश्यक है और उनका बल इस बात पर है कि किसी भी संगठन का इन दोनों प्रकार के प्रोत्साहनों के अभाव में अस्तित्व नहीं रह सकता।

10.6 सत्ता की अवधारणा

एक सामान्य संगठन में सहयोगी प्रयास के लिए एक अन्य तत्व, जो सबसे अधिक निर्णायक समझा जाता है, सत्ता का तत्व है। बरनार्ड सत्ता या अधिकार की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि यह एक औपचारिक संगठन में संचार (व्यवस्था) का वह गुण है जिसके कारण वह संगठन के सदस्यों द्वारा मान्य होता है। इससे पता चलता है कि बरनार्ड मानते हैं कि सत्ता के दो पहलू हैं। पहला, सापेक्ष, व्यक्तिगत, संचार या आदेश को सत्तात्मक मानना तथा दूसरा, निर्पेक्ष पहलू संचार वह गुरु जिसके कारण यह स्वीकार किया जाता है। इसके अतिरिक्त बरनार्ड का यह तर्क है यदि आदेशित संचार उस व्यक्ति द्वारा, जिसे वह भेजा गया है, स्वीकार कर लिया जाता है, तो उसके लिए उसकी सत्ता स्थापित या सुनिश्चित हो जाती है। यह कार्य के आधार रूप में स्वीकार हो जाती है। ऐसे आदेश का उल्लंघन उसके लिए सत्ता है या नहीं उन व्यक्तियों पर निर्भर है, जिन्हें वह आदेश भेजा गया है, न कि सत्ताधारी लोगों या उन आदेश देने वाले लोगों पर। इसके अतिरिक्त वह कहते हैं कि वे प्रभावी होने के लिए निजी प्रयासों का पर्याप्त योगदान प्राप्त नहीं कर सकते या उन्हें व्यवहार पर प्रोत्साहित नहीं कर सकते। सत्ता किसलिए भी विफल होती है क्योंकि काफी संख्या में लोग आवश्यक आदेशों के स्वीकृति संबन्धी बोझ उनके हित में होने वाले लाभ के संतुलन को बदलने का प्रयास समझते हैं और इसलिए वे या तो अपने आपको हटा लेते हैं या अपना योगदान रोक लेते हैं। इस कारण बरनार्ड बल देते हैं कि सत्ता की स्थापना के लिए व्यक्ति की स्वीकृति की आवश्यकता जरुरी है। एक व्यक्ति एक आदेश को सत्तात्मक स्वीकार कर सकता है और स्वीकार करेगा यदि 4 शर्तें एक साथ पूरी हों : (अ) वह आदेश को समझ सकता है या समझता है (ब) अपने निर्णय के समय उसका विश्वास है कि यह संगठन के उद्देश्य से असंगत नहीं है (स) अपने निर्णय के समय उसका विश्वास है कि वह कुल मिलाकर उसके हितों के अनूकूल है तथा (द) वह मानसिक तथा शारीरिक रूप से उसका पालन करने के योग्य है।

ऊपरी वर्णन से एक प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार का महत्वपूर्ण तथा चिरस्थायी सहयोग प्राप्त करना किस प्रकार संभव है क्योंकि हम देखते हैं कि सिद्धांत तथा व्यवहार में सत्ता का निर्धारण अधीनस्थ व्यक्तियों के पास हेाता है। यह संभव है क्योंकि व्यक्तियों के निर्णय निम्नलिखित परिस्थितियों में

सम्पन्न होते हैं : (अ) चिरस्थायी संगठनों में जानबूझकर दिए गए आदेश प्रायः ऊपर बतलाई 4 परिस्थितियों का पालन करते हैं (ब) प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर उदासीनता–क्षेत्र होता है जिसके अन्दर सत्ता को चेतनाशील चुनौती दिए बिना आदेश मान्य होते हैं (स) एक समूह के रूप में संगठन के प्रति योगदान करने वाले व्यक्तियों के हितों का परिणाम विषय या व्यक्ति के दृष्टिकोण पर प्रभाव का वह प्रयोग होता है जो उदासीनता के क्षेत्र को कुछ स्थायी बनाये रखता है।

10.7 उदासीनता के क्षेत्र

पूर्व भाग में हमने ये चर्चा की है कि संगठनों में सत्ता की स्वीकृति उदासीनता के क्षेत्र पर निर्भर करती है। यह उदासीनता का क्षेत्र क्या है यदि काफी हद तक व्यवहार योग्य कार्य के सभी आदेश प्रभावित व्यक्त्यिों द्वारा उनकी स्वीकृति के क्रम में रखे जायें तो ऐसे आदेशों का ऐसा क्षेत्र या सीमा होगी जो स्पष्ट रूप से अमान्य है अर्थात जिनका निश्चित रूप से पालन नहीं होगा। दूसरा समूह कुछ तटस्थ हो सकता है अर्थात या तो खुले रूप से मान्य या अमान्य। तीसरा समूह निश्चित रूप से मान्य हो सकता है। बरनार्ड कहते हैं कि यह अंतिम समूह ''उदासीनता के क्षेत्र'' में आता है। इस क्षेत्र में पड़ने वाले आदेशों को प्रभावित व्यक्ति स्वीकार करेगा तथा तुलनात्मक रूप में इस बात के प्रति उदासीन होता है कि सत्ता से सम्बन्धित प्रश्न के संदर्भ में आदेश का क्या अर्थ है। उदासीनता के क्षेत्र का व्यापक या संकीर्ण होना व्यक्ति की संगठन के प्रति झुकाव को निर्धारित करने वाले उस स्तर या सीमा पर निर्भर है, जिस सीमा तक उद्देश्य या ध्येय बोझों तथा बलिदानों के ऊपर जाते हैं।

यदि प्रलोभन अपर्याप्त है, तो संगठन के सदस्यों द्वारा संभवतः स्वीकार किये जाने वाले आदेशों की सीमा या क्षेत्र सीमित होगा। अन्य शब्दों में, आप कह सकते हैं कि क्षेत्र छोटा होगा। इसलिए कार्यपालिका को क्षेत्र के बारे में सचेत होना चाहिए। उसे केवल वे आदेश ही देने चाहिए जो क्षेत्र के अन्दर ही आयें तथा मान्य हों। यदि कार्यपालिका इस विषय में सचेत नहीं है, बरनार्ड कहते हैं, तो कार्यपालिका अपनी सत्ता का प्रयोग करने का ढंग नहीं जानती या वह सत्ता का दुरूपयोग कर रही है।

10.8 कार्यपालिका के कार्य

ऊपर की प्रक्रियाओं तथा विचारों से, कार्यपालिका के कार्य उत्पन्न होते हैं। बरनार्ड के अनुसार कार्यपालिका के आवश्यक कार्यों में पहला है, संचार व्यवस्था प्रदान करना, दूसरे, आवश्यक प्रयास प्राप्त करने का बढ़ावा देना, तीसरे, उद्देश्य परिभाषित करना। संगठनात्मक संचार को बनाए रखने सम्बन्धी प्रथम कार्य के दो चरण हैं। पहला, संगठनात्मक चार्ट, कर्त्तव्यों का निर्धारण, कार्य का विभाजन आदि आवश्यक हैं तथा दूसरे में उचित योग्यताओं वाले व्यक्तियों को प्रोत्साहन आदि देकर भर्ती करना शामिल है। ये दोनों चरण एक दूसरे के पूरक तथा अन्योन्याश्रित हैं।

व्यक्तियों से आवश्यक सेवाएं प्राप्त करने के दूसरे कार्य के भी दो मुख्य पक्ष हैं। पहला लोगों को संगठन के साथ सहयोगी सम्बन्ध स्थपित करना है तथा दूसरा ऐसे लोगों से सेवाएं तथा योगदान प्राप्त करना या सुनिश्चित करना है। बरनार्ड के अनुसार ये मनोबल, शिक्षा तथा प्रशिक्षण प्रोत्साहन तथा पर्यवेक्षक तथा नियंत्रण बनाए रखकर प्राप्त किये जा सकते हैं। तीसरा कार्यपालिका का कार्य है संगठनात्मक उद्देश्यों तथा ध्येयों का निर्माण। ये उद्देश्य संगठन के सभी सदस्यों द्वारा व्यापक रूप में मान्य होने चाहिए।

ऊपरी तीन कार्य मूल रूप से विभिन्न मानवों के बीच सहयोग की आवश्यकता से उत्पन्न होते हैं क्योंकि प्रत्येक संगठन मूलतः एक सहयोगी व्यवस्था है, सहयोगी प्रयास को चेतनागत रूप से समन्वित होने की आवश्यकता है। संगठनात्मक प्रक्रिया को यही वह क्षेत्र है जिसमें कार्यपालिका को एक सहयोगी व्यवस्था के लक्ष्यों तथा ध्येयों को प्राप्त करने में भूमिका निभानी है।

10.9 एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

कैनेथ एन्ड्रयूज जिसने ''फंक्शंस आफ द एक्जीक्यूटिव'' पुस्तक की प्रस्तावना लिखी थी, ने टिप्पणी की है कि बरनार्ड के अनुभव थे। इससे उनका विश्लेषण गहरी दृष्टि रखता है। यह एक सीमा या बांध के रूप में भी कार्य करता है। सिद्धांत यह संकेत नहीं देता कि विभिन्न प्रकार के संगठनों के विभिन्न पहलुओं तक यह सिद्धान्त किस प्रकार लागू किया जा सकता है। उसके आगे भी टिप्पणी करता है कि बरनार्ड ने उच्च प्रबन्ध की संस्थाओं का वर्णन या विश्लेषण नहीं किया है।

बरनार्ड ध्येय को एक केन्द्रीय प्रश्न मानने पर बल देते हैं परन्तु वे परिवर्तनशील विश्व ध्येय के चयन पर या संगठन के लिए लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के निर्माण की प्रक्रियाओं पर कोई ध्यान नहीं देते। वास्तव में महत्वपूर्ण है संघर्ष में लोगों की भागीदारी तथा उसे समन्वित करने के उनके प्रयास। वास्तव में मानव संगठनों में उत्पन्न होने वाली दिन–प्रतिदिन की समस्याओं के प्रति उन्होंने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। उद्देश्यों के प्रति कम ध्यान इस तथ्य के कारण हो सकता है कि जिन संगठनों का दायित्व उनके पास था, उनमें उद्देश्य स्थिर थे जिसका परिणाम यह हुआ कि वे निर्माण प्रक्रियाओं के प्रति विवरणात्मक या विधिवत् ध्यान नहीं देते।

बरनार्ड का सिद्धांत जहां अपना ध्यान सहयोग पर केन्द्रित करता है, वहां वे हमारे व्यक्ति के रचनात्मक विकास पर पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं देते। न ही वे इस प्रश्न पर ध्यान देते हैं कि व्यक्ति किन परिस्थितियों में संगठन के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त करता है तथा यह प्रतिबद्धता किस प्रकार दृढ़ बनती है।

बरनार्ड का सत्ता–सिद्धान्त निर्पेक्ष स्थितियों को कम महत्व देता है तथा व्यक्ति द्वारा मान्य सापेक्ष कारकों की ओर ज्यादा ध्यान देता है न कि उन सत्ताधारी लोगों की ओर जो इसका प्रयोग करते हैं। वास्तव में, सत्ता का एक आर्थिक आयाम है। आर्थिक रूप से सापेक्षित निर्भरता बाजार संरचना पर निर्भर है। विकल्पों के बड़े क्षेत्र वाले समाज में व्यक्तियों के पास तुलनात्मक स्वतंत्रता हो सकती है परन्तु जहां अवसर सीमित हैं, व्यक्ति को सत्ता नकारने की कोई स्वतंत्रता नहीं होती। अन्य शब्दों में एक पूंजीवादी समाज में जहां उसकी व्याख्या मान्य है, सामंतवादी या अल्प विकसित समाजों में ऐसी कोई स्वतंत्रता नहीं होती।

समाजीकरण प्रक्रिया, परिवार–संरचना, शैक्षिक प्रक्रियाएं सत्ता के प्रति लोगों के दृष्टिकोण को निर्धारित करते हैं। वास्तव में यही प्रक्रियाएं मूल्य व्यवस्था का निरूपण करती हैं। बरनार्ड ने वृहत्तर परिप्रेक्ष्य को ध्यान में नहीं रखा है, उस सीमा तक उसका सिद्धान्त पीड़ित है या कमजोर है।

10.10 सारांश

चेस्टर बरनार्ड ने संगठनों पर एक सहयोगी व्यवस्था के रूप में बल दिया है। इससे सामूहिक प्रयास के विविध गुणों का पता चलता है। उन्होंने औपचारिक (संरचना) एवं अनौपचारिक संगठन (सम्बन्धों) तथा उनकी पारस्परिक अंतर्निर्भरता का स्पष्ट रूप से वर्णन या विश्लेषण किया है। उन्होंने

दूसरों द्वारा सत्ता की मान्यता पर बल दिया। बरनार्ड ने उदासीनता–क्षेत्र के अस्तित्व की भी व्याख्या की है। यदि आदेश इस क्षेत्र में आते हैं तो वे निर्विवाद स्वीकार कर लिए जाते हैं। संगठनों की जटिल प्रकृति तथा उनकी कार्य प्रणाली की गहरी समझ हमको, संगठन को और अच्छी तरह समझने के योग्य बनाती हैं।

उनका कार्य ''कार्यकारी का कार्य'', वैज्ञानिक प्रबन्धन (टेलर) और प्रशासनिक व्यवहार (सिमोन) की अवधारणाओं के बीच एक कड़ी के रूप में महत्वपूर्ण माना जाता है।

10.11 प्रमुख शब्दावली

सत्ताः शक्ति का वैध प्रयोग।

संचार : संगठन के विभिन्न स्तरों के बीच सूचना का आदान–प्रदान।

केन्द्राभिगमन करना : विभिन्न दिशाओं से एक ही बिन्दु की तरफ पहुंचना।

आवेशित या निर्देशित : नियम बनाना।

10.12 बोध प्रश्न

1. (1) एक व्यवस्था की परिभाषा दीजिए।
   (2) लोग सहयोगी कार्य क्यों करते हैं?
   (3) औपचारिक संगठन के तत्वों का वर्णन कीजिए।
   (4) औपचारिक संगठन में विशेषीकरण के आधार बतलाइये।
2. (1) सत्ता की परिभाषा दीजिए तथा इसके सापेक्ष तथा निर्पेक्ष पक्ष बतलाइये।
   (2) सत्ता उन लोगों के पास होती है जिनके ऊपर यह चलाई जाती है न कि उन लोगों के पास जो आदेश देते हैं। व्याख्या कीजिए।
   (3) उदासीनता के क्षेत्र का वर्णन कीजिए। अपना उत्तर सोदाहरण दीजिए।
   (4) बरनार्ड के अनुसार कार्यपालिका के क्या कार्य हैं?

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) भाग 10.2 देखें
   (2) भाग 10.3 देखें
   (3) भाग 10.4 देखें
   (4) भाग 10.4 देखें
2. (1) भाग 10.5 देखें
   (2) भाग 10.5 देखें
   (3) भाग 10.6 देखें

(4) भाग 10.7 देखें

10.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Barmard, Chester I, 1938, The Functions of the Executive; Harvard University Press: Cambridge.

Bhattacharya, Mohit, 2010, New Horizons of Public Administration New Delhi : Jawahar Publishers.

Prasad, Ravindra (eds.) Administaive Thinkers, 2012 Sterlinng Publishers, New Delhi.

इकाई– 11

व्यवहारवादी उपागम : हरबर्ट साईमन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 परम्परावादी उपागम : साईमन द्वारा आलोचना

11.3 प्रशासन में निर्णय लेने का स्थान

11.4 चयन एवं व्यवहार

11.5 निर्णय–निर्माण में मूल्य एवं तथ्य

11.6 निर्णयों का सोपान

11.7 निर्णय–निर्माण में तार्किकता

11.8 संयोजित तथा असंयोजित निर्णय

11.9 निर्णय–निर्माण तथा प्रशासनिक प्रक्रिया

- 11.9.1 विशेषीकरण
- 11.9.2 समन्वय
- 11.9.3 विशेष ज्ञान (एक्सपरटीज)
- 11.9.4 उत्तरदायित्व

11.10 संगठनात्मक प्रभाव की विधियां

- 11.10.1 सत्ता
- 11.10.2 संगठनात्मक निष्ठाएं
- 11.10.3 कार्यकुशलता का आधार
- 11.10.4 परामर्श तथा सूचना

11.11 आलोचनात्मक मूल्यांकन

11.12 सारांश

11.13 प्रमुख शब्दावली

11.14 बोध प्रश्न

11.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

- लोक प्रशासन में व्यवहारवाद का महत्व बताना,
- परम्परावादी सिद्धान्त की साईमन द्वारा आलोचना के निर्णय के विषय में साईमन के विचारों का वर्णन करना, तथा
- तर्कशक्ति की जानकारी तथा व्यवहारवाद से उसका सम्बन्ध तथा लोक प्रशासन में व्यवहारवाद की सीमाएं बताना है।

11.2 प्रस्तावना

प्रशासन अध्ययन के परंपरावादी उपागम, संरचना–संगठन को औपचारिक आयाम के महत्व पर बल देता है। दूसरी तरफ, मानव सम्बन्ध सिद्धांत संगठन के अनौपचारिक आयाम पर बल देता है। जहां संगठन के औपचारिक व अनौपचारिक आयाम संगठन का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, मानव–कार्यकर्त्ताओं का उनके दृष्टिकोण संगठन की कार्यपद्धति का निर्धारण करता है। मानव सम्बन्ध तथा व्यवहारवादी उपागमों का सम्बन्ध व्यापक रूप में संगठन से सम्बन्धित व्यक्ति से है। जबकि पहले सिद्धान्त का सम्बन्ध संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों से है, परवर्ती सिद्धांत का सम्बन्ध व्यक्ति के आन्तरिक मूल्यों से है जिसमें विशेष ध्यान किसी संगठन के कार्यकरण में व्यक्ति के मूल्यों एवं विचारशीलता पर होता है। व्यक्ति के ''अन्तरमन'' को समझना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि संगठन की आंतरिक व्यवस्था को।

हरबर्ट साईमन (1916–2001) ने निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में मूल्य–वरीयताओं के संदर्भ में मानव व्यवहार का विश्लेषण किया। यही वह केन्द्रीय संबद्धता है जो संगठन और उसके कार्य को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। मानव व्यवहार जटिल तथा गतिशील है, लोक प्रशासन के अन्तर्गत इन रूपों को समझना आवश्यक है। इससे हमको विषय को अच्छी तरह समझने तथा अपने ज्ञान को व्यापक बनाने तथा समस्या के समधान में सहायता मिलती है।

11.3 परम्परावादी उपागम : साईमन द्वारा आलोचना

साईमन ने संरचनात्मक उपागम पर कड़ा प्रहार किया। उन्होंने संगठन के सिद्धान्तों की आलोचना की तथा उन्हें मात्र कहावत बताया। उनके अनुसार ये सिद्धांत विरोधाभासी तथा आंतरिक रूप से असंबद्ध हैं। उन्होंने यह भी बताया कि ये न तो वैज्ञानिक रूप से संगत हैं और इसकी व्यापक रूप से संगतता नहीं है। इन्हीं कारणों से साईमन ने उनके संगठनात्मक विश्लेषण या व्याख्या के लिए उनके सैद्धांन्तिक आधार को चुनौती दी। उनके अनुसार किसी भी सैद्धान्तिक अवधारणा का ऐसा दृष्टिकोण होना चाहिए जिसकी सर्वत्र मान्यता हो। इसी खोज के आधार पर सत्ता तथा निर्णय को केन्द्र बनाकर प्रशासनिक व्यवहार के अध्ययन का विकास हुआ। सिद्धान्त जिनकी संदर्भीय प्रासंगिकता थी, से भिन्न निर्णय लेना साईमन के अनुसार एक सार्वभौमिक प्रक्रिया और अधिक विस्तृत संगठनात्मक विश्लेषण का आधार बन सकता है।

11.4 प्रशासन में निर्णय लेने का स्थान

साईमन के लिए प्रशासन ''कार्य कराने'' की कला है। उन्होंने उन प्रक्रियाओं तथा विधियों पर बल दिया जिनसे कार्यवाही सुनिश्चित हो। वह कहते हैं कि प्रशासनिक विश्लेषण में उस चयन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है जो कार्यवाही से पहले किया जाना है। ''वस्तुतः कार्यवाही'' की अपेक्षा ''क्या करना है'' के प्रश्न के निर्धारण पर उचित ध्यान नहीं मिला। निर्णय लेना चयन की वह प्रक्रिया है जिस पर कार्यवाही आधारित होती है। साईमन ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि इस आयाम को भली प्रकार समझने के अभाव में, प्रशासन का अध्ययन अधिकांश रूप में अपर्याप्त रहेगा क्योंकि यही संगठन में व्यक्ति के व्यवहार को सुस्थिर करता है।

व्यवहारवादी उपागम में, कार्यवाही से पूर्व की प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया जाए। इसे निर्णय लेने की प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है। निर्णय लेने की आवश्यकता उस समय उत्पन्न होती है जब व्यक्ति के पास किसी कार्य को करने के लिए बहुत से विकल्प होते हैं, परन्तु व्यक्ति को छंटनी की प्रक्रिया के माध्यम से केवल एक ही विकल्प चुनना होता है। अतः निर्णय–निर्माण अनेक विकल्पों को हटाकर एक विकल्प पर लाने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। मानव की बुद्धिमत्ता इसमें है कि वह ऐसे विकल्प का चुनाव करे जिससे अधिकतम सकारात्मक तथा न्यूनतम नकारात्मक परिणाम निकले। किसी संगठन के प्रयत्नों की कुशलता केवल किसी संगठन द्वारा एक कार्य के कारगर रूप से सम्पन्न करने पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि यह उन सिद्धांतों पर भी निर्भर है जो सही निर्णय–निर्माण सुनिश्चित करें जो बदले में कार्य की सफलता का निर्धारण करते हैं।

किसी भी संगठन में कार्योत्पादक स्तर से ऊपर के लोग महत्वपूर्ण समझे जाते हैं क्योंकि उन्हें निर्णय लेने के अधिक महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने पड़ते हैं। उन्हें संगठनात्मक लक्ष्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। कार्मिकों के व्यवहार को प्रभावित करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। उदाहरण के लिए सिपाही युद्ध के मैदान में लड़ते हैं और अपने स्तर पर कुछ निर्णय भी लेते हैं परन्तु जनरल द्वारा बनाई गई व्यापक नीति ही युद्ध का परिणाम निर्धारित करती है। इसी प्रकार मोटर उद्योग में असैम्बली लाईन के कारीगरों द्वारा कार बनाई जाती है न कि इंजीनियर या कार्यकारी द्वारा परन्तु फिर भी वे महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार आग अग्निशमक कर्मचारियों द्वारा बुझाई जाती है न कि अग्नि–प्रमुखों के द्वारा। प्रशासन में कर्मचारी महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि संगठन की सफलता उन पर निर्भर करती है। कर्मचारी स्तर से ऊपर के लोग समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। वे संगठनात्मक लक्ष्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने में एक आवश्यक भूमिका को निभाते हैं। निचले स्तर पर लिए गए निर्णय की अपेक्षा, एक संगठन के प्रयासों में परिणाम पर पर्यवेक्षक कर्मचारीगण का अधिक प्रभाव होता है। वे निर्णय तथा येाजना बनाते हैं एवं कर्मचारी वर्ग का निर्देशन करते हैं। छोटे संगठनों में, पर्यवेक्षक वर्ग का प्रभाव सीधा होता है जबकि बड़े तथा जटिल संगठनों में प्रभाव अप्रत्यक्ष होता है। इसलिए साईमन कहते हैं कि एक प्रभावी संगठन में कर्मचारी वर्ग की स्थापना होती है तथा उसके ऊपर प्रशासन वर्ग स्थापित होता है जो कर्मचारी वर्ग को समन्वित कर सके। उनका यह भी कहना है कि संगठनों का कार्य उस विचार शैली पर निर्भर करता है जिसके द्वारा कर्मचारियों के निर्णय तथा व्यवहार प्रभावित होते हैं। इन्हीं कारणों से व्यवहारवादी उपागम इस बात पर बल देता है कि किसी संगठन की संरचना एवं कार्य का व्यावहारिक ज्ञान सर्वोत्तम तरीके से प्राप्त किया जा सकता है यदि संगठन की गहरी जानकारी और उसके द्वारा इन कर्मचारियों के निर्णय तथा व्यवहार को प्रभावित करने के ढंग का विश्लेषण कर लिया जाए।

11.5 चयन एवं व्यवहार

मानव व्यवहार के लिए यह भी आवश्यक है कि वह ऐसे विकल्पों का समझ–बूझकर चुनाव करें जो भौतिक रूप से संभव हो तथा संगठनात्मक रूप से प्रभावी हो। एक चयन का चुनाव एक कार्यवाही के ऊपर दूसरी कार्यवाही को वरीयता देना है। किसी मशीन सम्बन्धी कार्यवाही में, चयन तथा कार्यवाही सीधे रूप से सम्बन्धित होते हैं। जैसा कि आप एक टंकक के मामले में देखते हैं। वह एक विशेष कुंजी को उंगली से दबाता है क्योंकि उंगली तथा विशेष कुंजी के बीच प्रतिबिंब स्थापित हो जाता है। यहां क्रिया तर्कसंगत है परन्तु चेतना का कोई तत्व इसमें शामिल नहीं है। इसलिए, यह सीमित प्रतिबिंब कार्यवाही है। दूसरे मामले में, चयन योजना या संरचना क्रिया–कलापों के नाम से जानी जाने वाली गतिविधियों की एक जटिल कड़ी का परिणाम होगी। जैसे एक पुल के निर्माण में जहां एक इंजीनियर संरचना तैयार करता है तथा अन्य कार्य इसी संरचना के अनुरूप ढालने होते हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया में तीन चरण गतिविधियों के रूप में सम्मिलित होते हैं। वे हैं– 1. बौद्धिक क्रिया 2. संरचना क्रिया 3. चयन क्रिया तथा 4. पिछले विकल्पों का मूल्यांकन। बौद्धिक क्रिया में निर्णय लेने के अवसर ढूंढना शामिल है। इसके लिए कार्यकारी के लिए संगठनात्मक वातावरण को समझना तथा उसका विश्लेषण करना आवश्यक है। वह उन दशाओं की भी पहचान करता है जिनमें विभिन्न विकल्पों का विकास सम्मिलित है। कार्यकारी को प्रत्येक विकल्प के गुण दोष एवं उनमें निहित समस्याओं की पहचान करनी पड़ती है। अन्तिम चरण चयन क्रिया है। इसमें निर्णयकर्ता को संगठन के ध्येयों को ध्यान में रखकर विभिन्न विकल्पों में से एक विकल्प का चयन करना होता है।

11.6 निर्णय–निर्माण में मूल्य एवं तथ्य

किसी कार्यवाही की प्रभावशीलता निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्षमता में उस निर्णय पर निर्भर है। सही विकल्प का चयन व्यक्ति के कार्य निष्पादनों से जुड़ा है। इसका सम्बन्ध मूल्यों के प्रश्न से है। प्रभावशीलता किसी समय विशेष में उपलब्ध जानकारी पर निर्भर करती है। यह तथ्यों से जुड़ी है। मूल्य वरीयता की अभिव्यक्ति होती है।

(क) इसलिए यह तथ्य पर आधारित नहीं होती है।

(ख) इसलिए यह किसी सबूत पर आधारित नहीं है।

(ग) इसलिए यह सबूतों पर आधारित होने के कारण मान्य नहीं होती।

दूसरी ओर, तथ्य सच्चाई की अभिव्यक्ति है। इसे दर्शनीय साधनों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। विकल्प या निर्णय में तथ्य तथा मूल्य दोनों शामिल होते हैं। ये किसी निर्णय में सम्मिलित नैतिक एवं तथ्यपरक तत्वों के विश्लेषण की कसौटियों को स्पष्ट करते हैं।

साईमन का तर्क है कि संगठन के सदस्यों का व्यवहार आंशिक रूप से संगठन के उद्देश्यों से निर्धारित होता है। उद्देश्यशीलता व्यवहार के स्वरूप में एकीकरण लाती है। उद्देश्य की अनुपस्थिति संगठन को अर्थहीन बना देती है। उद्देश्य निदेशन व संदर्भ को वह ढांचा प्रदान करता है जो यह निर्धारित करता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। प्रक्रिया में, एक विशेष कार्यवाही को संचालित करने वाला एक छोटा निर्णय भी आवश्यक रूप से उद्देश्य व विधि से जुड़े बड़े निर्णयों को क्रियान्वित करता है। साईमन एक चलते हुए आदमी का उदाहरण देते हैं। वह इस प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार करते हैं ''एक पैदल चलने वाला एक लक्ष्य बनाने के लिए अपनी मांसपेशियों

को सिकोड़ता है, वह अपनी मंजिल तक पहुंचने के लिये कदम उठाता है, वह मंजिल की ओर जा रहा है, एक छोटा बक्स, इसलिए ले जा रहा है जिससे कि कुछ सूचना किसी दूसरे व्यक्ति के पास भेज सके और इसी प्रकार प्रत्येक निर्णय में एक उद्देश्य का चयन और उससे जुड़ा व्यवहार एक दूर के या अन्य लक्ष्य की ओर ले जा सकता है, जब तक कि सापेक्ष रूप में अंतिम लक्ष्य या ध्येय प्राप्त नहीं हो जाता है।" साईमन का कहना है कि जहां निर्णय अंतिम लक्ष्यों को चयन तक ले जाते हैं उन्हें ''मूल्य–निर्णय'' कहा जाता है और यदि उनसे ऐसे लक्ष्यों का क्रियान्वयन सम्मिलित हो जाता है तो उन्हें तथ्यात्मक निर्णय कहते हैं। स्थानीय संस्था में परिषद को यह निर्णय करना होता है कि पैसा किन मदों पर खर्च करना है और यदि उनसे ऐसे लक्ष्यों का क्रियान्वयन सम्मिलित हो जाता है तो उन्हें तथ्यात्मक निर्णय कहते हैं। वह वरीयताओं पर निर्भर करता है। यह निर्णय कि सड़क या पार्क, शिक्षा या स्वास्थ्य में से किस पर अधिक पैसा खर्च करना है, ''मूल्यगत निर्णयों'' से जुड़े होते हैं। एक बार जब वरीयता निर्धारित हो जाती है, तब क्रियान्वयन अधिकतर ''तथ्यपरक निर्णयों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए सड़क की लंबाई जोड़ने वाले बिन्दु, सड़क का प्रकार ऐसे निर्णय हैं जिनका सम्बन्ध तथ्यपरक निर्णयों'' से है। मूल्य तथा तथ्य केवल अर्न्तसम्बन्धित सीमाएं तथा पुर्जे हैं। समस्याऐं हमारे सामने मूल्य निर्णयों या तथ्य निर्णयों के रूप में नहीं आती हैं।

11.7 निर्णयों का सोपान

निर्णय–सोपान की धारणा में प्रत्येक निचली सीढ़ी अपने से ऊपर वाली सीढ़ियों में स्थापित ध्येय को पूरा करने में लगे होने का विचार शामिल है। व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है जहां तक कि संगठन के लक्ष्य या उद्देश्य मार्गदर्शन करते हैं। यह तर्कशील होता है क्योंकि यह पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अनुकूल विकल्पों को चयन करता है। यद्यपि यह एक सुव्यवस्था लगती है। समस्याएं इसलिए उत्पन्न होती हैं क्योंकि कोई भी संगठन किसी लक्ष्य को लेकर नहीं चलता। सरकारी एजेंसी बहुत से लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहती है। यह जटिलता समग्र एकीकरण को अत्यधिक कठिन बना देती है। परन्तु फिर भी वास्तव में कुछ न कुछ एकीकरण तो लाना ही पड़ेगा क्योंकि उसके अभाव में कोई ध्येय प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः व्यवहारवादी उपागम के दो महत्वपूर्ण आयामों को प्रदर्शित करती हैः (1) नीति–निर्माण तथा क्रियान्वयन (2) निर्णय–निर्माण में तथ्यों तथा मूल्यों का शामिल होना। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि निम्न स्तर पर लिए निर्णयों में अधिकतर निर्णय तथ्यपरक होते हैं। निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में, साध्यों का चयन मूल्य निर्णयों पर आधारित एक विकल्प का चयन तथा साक्ष्य की प्राप्ति के लिए तथ्यगत निर्णयों पर आधारित साधन का चयन शामिल है। निर्णय निर्माण प्रक्रिया में तार्किकता मुख्यतः ''मूल्य–निर्णय'' तथा ''तथ्य–निर्णय'' दोनों में सही चयन पर निर्भर करती है।

11.8 निर्णय–निर्माण में तार्किकता

निर्णय–निर्माण कभी समाप्त न होने वाले निर्णयों की एक कड़ी के रूप में जटिल प्रक्रिया है। सरल परिस्थितियों में घटनाक्रम का विश्लेषण आसान होता है, तथा इसलिए, एक अच्छा तथा तर्कसंगत निर्णय निर्माण संभव है। जटिल परिस्थतियों में, जहां भिन्न चरणों में निर्णयों का एक बड़ा तानाबना शामिल हो, निर्णय–निर्माण में तार्किकता को धक्का लगता है। परन्तु साईमन इस बात पर बल देते हैं कि निर्णय तार्किक चयन पर आधारित होना चाहिए। उन्होंने तार्किकता की परिभाषा देते हुए कहा है कि यह मूल्यों की किसी प्रणाली के संदर्भ में वरीयता प्राप्त व्यवहार विकल्पों का एक ऐसा सम्बन्ध है

जिसके द्वारा व्यवहार के परिणामों का मूल्यांकन किया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि निर्णय लेने वाले को सभी प्राप्त विकल्पों का ज्ञान हो। विकल्पों में से प्रत्येक के परिणामों के विषय में सोचने की योग्यता भी निर्णयकर्ता में होनी चाहिए। साईमन के अनुसार तार्किकता के छः भिन्न–भिन्न प्रकार होते हैंः निरपेक्ष, सापेक्ष, सुविचारित, संगठनात्मक तथा निजी या व्यक्तिगत। साईमन पूर्ण तार्किकता की अवधारणा को नकारते हैं क्योंकि यह अतार्किक मान्यताओं पर आधारित है। पूर्ण तार्किकता इस विश्वास पर आधारित है कि निर्णयकर्ता सर्वदर्शी है तथा उन्हें सभी प्राप्त विकल्पों तथा उनके परिणामों का ज्ञान है। दूसरे यह भी मान्यता है कि निर्णयकर्ता के पास असीमित कम्प्यूटरीय योग्यता है। अन्त, में उनका विश्वास है कि निर्णयकर्ता में सभी संभावित परिणामों को एक व्यवस्था में रखने की क्षमता है। साईमन का कहना है कि ये सभी मान्यताएं मौलिक रूप से गलत हैं। कौशलों, आदतों, मूल्यों तथा ध्येय की अवधारणा तथा अपने कार्य के संगत ज्ञान की सीमा के रूप में निर्णयकर्ता की अनेक सीमाएं हैं। इसलिए साईमन का कहना है कि संगठन को पूर्ण तार्किकता की अवधारणा के, साथ नहीं चलना चाहिए बल्कि, उन्हें ''सीमित तार्किकता'' के आधार पर कार्य करना चाहिए। इसी सीमित तार्किकता के संदर्भ में साईमन तुष्टिकरण की अवधारणा विकसित करते हैं। तुष्टिकरण शब्द तुष्टि तथा पर्याप्तता शब्दों से बना है। चूंकि पूर्ण तर्कसंगतता असंभव है। कार्यकारी एक काफी अच्छे चयन से संतुष्ट होती है। निर्णयकर्ता सर्वोत्तम समाधानों पर पहुंचने का प्रयास करता है। ऐसे निर्णयों द्वारा अधिकतम संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त भी किया जा सकता है और नहीं भी।

11.9 संयोजित तथा असंयोजित निर्णय

साईमन संयोजित तथा असंयोजित निर्णयों में स्पष्ट भेद करते हैं। पहले निर्णय वे हैं जो स्वरूप से दुहराए जाने तथा आम होते हैं। ऐसे निर्णयों के लिए निश्चित प्रक्रिया बनाई जा सकती है। प्रत्येक निर्णय पर अलग से विचार करना आवश्यक नहीं। संयोजित निर्णय में आदतें, कौशल तथा समस्या के विषय में ज्ञान महत्वपूर्ण है। ऐसे निर्णयों में गणितीय मापांक तथा कम्प्यूटर निर्णयकर्ता को तार्किक निर्णयों को लेने में मदद कर सकते हैं। इसके विरुद्ध असंयोजित निर्णय नए तथा अनबद्ध होते हैं। कोई पहले से तैयार पद्धतियां उपलब्ध नहीं होती तथा प्रत्येक प्रश्न या मसले पर अलग से विचार करना होता है। उचित तथा संगत निर्णय लेने की क्षमता का विकास करने के लिए कार्य संगत कौशलों में प्रशिक्षण तथा नवीन खोजों का विकास महत्वपूर्ण है।

11.10 निर्णय–निर्माण तथा प्रशासनिक प्रक्रिया

व्यवहारवादी उपागम की कुछ एक विशेषताओं को समझना आवश्यक है। प्रशासनिक क्रिया समूह की क्रिया होती है। संगठनों में निर्णय–निर्माण एक व्यक्ति या परिवार के मामले से भिन्न अधिक व्यवस्थित प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया में, साईमन के अनुसार, तीन महत्वपूर्ण कदम या चरण होते हैं। वे हैंः निर्णय निर्माण प्रक्रिया में तत्वों को पृथक करना, इन तत्वों को चुनने तथा निर्धारित करने की प्रक्रिया या विधि की स्थापना करना तथा संगठन के सदस्यों को इन तत्वों की जानकारी देना। संगठन व्यक्ति से उसकी निर्णय लेने की स्वायत्तता का एक भाग ले लेता है तथा उसके स्थान पर संगठनात्मक निर्णय निर्माण प्रक्रियाओं का अधिकार दे देता है, सत्ता का निर्धारण करता है तथा इसके चयन पर सीमाएं भी लगाता है। व्यवहारवादी चयन के निरूपण से उभरती हुई कुछ व्यवहार विधियां निम्न हैं :

11.9.1 विशेषीकरण

विशेषीकरण संगठन की एक विशेषता है। इस प्रक्रिया विशेष में, कार्य संगठन को विभिन्न स्तरों में बांट दिया जाता है। विशेषीकरण श्रम के समस्तर विभाजन या स्तर भेदानुसार विभाजन का रूप ले सकता है। साईमन का बल स्तर भेदानुसार विभाजन विशेषीकरण पर है। उनका तर्क है कि क्रियान्वयन तथा पर्यवेक्षक स्टाफ के बीच विशेषीकरण की आवश्यकता है।

11.9.2 समन्वय

समूह व्यवहार में केवल सही निर्णय लेना ही आवश्यक नहीं है, परन्तु समूह के सभी सदस्यों द्वारा उसी निर्णय को स्वीकार करना भी आवश्यक है। एक भवन निर्माण के निर्णय में, अनेक व्यक्ति शामिल होते हैं। यदि प्रत्येक की अपनी पृथक योजना हो, तथा वे अपनी योजनाओं की समुचित जानकारी न दें, तो अच्छे भवन निर्माण की संभावना बहुत कम होती है। यदि वे एक संरचना को स्वीकार करके उसे क्रियान्वित करते हैं, तो वे अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

11.9.3 विशेष ज्ञान (एक्सपरटीज)

क्रियान्वयन स्तर पर विशेषीकृत कौशल की आवश्यकता है। संगठन का काम उपभागों में बांटा जाना चाहिए जिससे कि सभी प्रक्रियाएं जिनमें किसी कौशल विशेष की आवश्यकता हो, उन व्यक्तियों द्वारा पूरी की जाए जिनके पास वे कौशल हैं। इसी प्रकार निर्णय निर्माण में विशेष ज्ञान का लाभ प्राप्त करने के लिए निर्णय का उत्तरदायित्व भी सौंपा जाना चाहिए जिससे कि सभी निर्णय जिनमें एक कौशल विशेष की आवश्यकता है, उसे कौशल प्राप्त व्यक्तियों द्वारा लिए जा सकें।

11.9.4 उत्तरदायित्व

प्रशासनिक संगठन समूह द्वारा बनाए गए नियमों के प्रति व्यक्ति की सहमति को लागू करने का प्रयास करता है। अधीनस्थ कार्मिकों को दिया स्वैच्छिक अधिकार शीर्षस्थ प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित नीतियों से सीमित होता है। इस प्रकार निर्णय–निर्माण में स्वायत्तता विभिन्न स्तरों पर सीमित होती है।

11.10 संगठनात्मक प्रभाव की विधियां

कोई भी प्रशासनिक संगठन निर्णय–प्रक्रिया को प्रभावित करने की अपनी विधियां निर्मित करता है। अन्य शब्दों में, संगठन व्यवहारात्मक चयन को सीमित करता है तथा निर्णय निर्माण स्वायत्तता को कम करता है। ऐसा आंशिक रूप से संरचना द्वारा तथा आंशिक रूप से व्यक्ति के व्यवहार पर

योजनाबद्ध प्रभाव के द्वारा किया जाता है।

व्यवहार को प्रभावित करने वाली विधाएं हैं: सत्ता, संगठनात्मक निष्ठाएं, कार्य कुशलता का आधार, परामर्श तथा सूचना और प्रशिक्षण।

11.10.1 सत्ता

चेस्टर बरनार्ड ने सत्ता की अवधारणा पर काफी ध्यान दिया है। संगठनात्मक संस्कृति सत्ता की कल्पना इस प्रकार तैयार करती है जिससे

अधीनस्थ कार्मिक ऊपर से दिए आदेशों का, चुनौती दिए बिना पालन करते हैं। उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों को आश्वस्त करने का प्रयास किए बिना यह उम्मीद करता है कि आदेशों का पालन स्वतः ही किया जाएगा परन्तु बरनार्ड का कहना है कि सत्ता इसे स्वीकार करने वाले अधीनस्थ के पास होती है न कि इसका प्रयोग करने वाले उच्च अधिकारी के पास। सत्ता की कल्पना काफी हद तक व्यवहार को प्रभावित करने में सक्षम है।

11.10.2 संगठनात्मक निष्ठाएं

किसी भी संगठन के सदस्य स्वयं को समूह के साथ जोड़ने की ओर उम्मुख होते हैं। यह मानव व्यवहार की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। वे जिन संगठनों के साथ जुड़े हैं उनके हितों को ध्यान में रखकर निर्णय लेते हैं। संगठन की समृद्धि सदस्य की चेतना पर सदा छाई रहती है। समृद्धि की यही धारणा उसे निष्ठावान बनाती है तथा उसे ऐसे निर्णय लेने योग्य बनाती है जो संगठन की समृद्धि के अनुरूप हो। इस प्रकार व्यवहारात्मक चयन संगठनात्मक निष्ठा द्वारा सीमित हो जाता है। तथा समूह कार्य को संभव बनाने वाले व्यवहार की साम्यता या एकरूपता को आसान बनाता है। संगठन के प्रत्येक सदस्य के मूल्यों का सीमित क्षेत्र होता है जो उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। परन्तु संगठनात्मक निष्ठा में समस्या यह है कि प्रत्येक संगठन के वृहत हितों की उपेक्षा करके संगठन का संकुचित दृष्टिकोण लेता है। साईमन का कहना है जैसे व्यक्ति संगठन में ऊंचे पद पर पहुंचता है, व्यापक दृष्टि रखने की अधिक आवश्यकता होती है।

11.10.3 कार्यकुशलता का आधार

सत्ता का प्रयोग तथा संगठनात्मक निष्ठा का विकास संगठन के वे महत्वपूर्ण साधन हैं जिनके द्वारा व्यक्ति के मूल आधार प्रभावित होते हैं। परन्तु प्रत्येक निर्णय निर्माण में तथ्यगत निर्णय भी होते हैं। वे कार्यकुशलता की आलोचना से प्रभावित होते हैं। कार्यकुशलता की अवधारणा में वांछित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए सबसे सरल उपाय और सबसे सस्ते साधन सम्मिलित हैं। कार्यकुशलता की कसौटी इस बात के प्रति कि कौन से लक्ष्य प्राप्त करने हैं मुख्यतः तटस्थ होती है। ''कार्यकुशल बनो'' का आदेश किसी प्रशासनिक एजेंसी के सदस्यों के निर्णयों पर मुख्य संगठनात्मक प्रभाव होता है।

11.10.4 परामर्श तथा सूचना

निर्णय निर्माण प्रक्रिया को सम्पन्न बनाने में किसी संगठन में संचार प्रवाह भी महत्वपूर्ण है। किसी व्यक्ति को प्राप्त परामर्श एवं सूचना तथ्यगत निर्णयों के लेने में महत्वपूर्ण निवेश होते हैं। जो संगठन संचार को प्रभावी बनाने में सक्षम होता है वह न केवल व्यवहारात्मक चयन को सीमित कर सकता है बल्कि निर्णय तथा कार्यवाही की समरूपता को भी सुनिश्चित कर सकता है।

प्रशिक्षण वह साधन है जो संगठन के सदस्यों को संतोषजनक निर्णय लेने के लिए तैयार करता है। यह संगठन के ध्येयों तथा प्रारूप के अनुरूप अपने स्वैच्छिक अधिकार के प्रयोग की विधियों में परिपूर्ण बनाता है। यह वह साधन भी है जिसके द्वारा जानकारी तथा आवश्यक ध्येय किसी व्यक्ति तक पहुंचाए जाते हैं जिससे कि वह संगठन में उचित प्रकार के चयन करने में समर्थ हो।

11.11 आलोचनात्मक मूल्यांकन

संगठन के निर्धारक, जैसे सत्ता, वफादारी, कार्यकुशलता तथा प्रशिक्षण व्यवहारात्मक चयन को सीमित करने तथा ग्रुप प्रयासों को सुगम बनाने के लिए तैयार किए जाते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार व्यवहार करने की आज्ञा या छूट दे दी जाए तो कोई ग्रुप प्रयास संभव नहीं होंगे। इसी कारण संगठनात्मक संरचना बनाई जाती है। इस प्रकार मानव व्यवहार तथा उसकी संरचना एक ग्रुप प्रयास के साथ अंतर्सम्बन्ध संगठन के अध्ययन का व्यवहारवादी उपागम का सार है। इसके महत्वपूर्ण योगदानों के बावजूद भी, व्यवहारवादी उपागम की काफी आलोचना हुई है। इसकी आलोचना मुख्यतः निम्न आधारों पर की जाती है :

(1) अवधारणात्मक संरचना अपर्याप्त है। जहां व्यवहारवादी उपागम ने परम्परावादी उपागम की असंगत तथा आंतरिक रूप से विरोधाभासी कह कर आलोचना की, व्यवहारवादी उपागम ने स्वयं संगठनात्मक नमूने की व्याख्या के संतोषजनक ढांचे को प्रस्तुत नहीं किया है। इन्होंने अपना विश्लेषण एक संगठन के भीतर व्यक्ति तक सीमित रखा, इन्होंने समस्त सामाजिक व्यवस्था, जिसमें संगठन काम करता है को नहीं लिया। सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कारकों की उपेक्षा करके संगठन को वस्तुतः उसके व्यापक वातावरण या स्थिति से अलग करा है। यह संगठनात्मक नमूने पर एक प्रमुख बाधा है।

(2) यह राजनीतिक नहीं है। प्रशासनिक व्यवस्था एक राजनीतिक व्यवस्था की उप व्यवस्था है। राजनीति तथा राजनीतिक शक्ति, प्रशासनिक संगठन के लक्ष्य निर्धारित करती है। यह अधिकतम राजनीतिक प्रक्रिया से प्रभावित होती है। परम्परावादी उपागम की भांति व्यवहारवादी उपागम ने भी राजनीति दृष्टिकोण लिया जिससे यह आभास होता है कि संगठन राजनीतिक वातावरण से स्वायत्त होते हैं। उस उपागम को, जो मूल्य निर्णय पर बल देता है, राजनीतिक प्रक्रिया की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए थी क्योंकि वह सार्वजनिक संगठनों की मूल सीमाएं भी निर्धारित करती है।

(3) मूल्यों से स्वतंत्र तथा तटस्थ उपगम सहायक नहीं हैं। जहां उपागम ने मूल्य निर्णय का विश्लेषण करने का प्रयास किया, वहां तार्किकता की धारणा ने नैतिक प्रश्नों को छोड़ दिया क्योंकि इस उपागम के अनुसार तार्किकता उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सही उपायों को चुनने का नाम है। वह सिद्धान्त जो समाज के व्यापक हित में वांछित और अवांछित के प्रश्न की उपेक्षा करता है वह न तो सही प्रकार के विकास की गति दे सकता है और न ही सही परिप्रेक्ष्य दे सकता है। एक चोर जो उचित साधन अपना कर चोरी कर रहा है, इस सिद्धान्त के अनुसार, तार्किक सीमा के भीतर आ जाता है यद्यपि वह जो कुछ करता है वह सामाजिक रूप से वांछित नैतिक दायरे में उचित नहीं बैठता। मूल्य से स्वतंत्र या तटस्थ उपागम में शामिल यह खतरा व्यवहारवादी उपागम ने महसूस नहीं किया है।

(4) यह उपागम सामान्य है तथा व्यवहारिक रूप से संगत नहीं है। व्यवहारवादी उपागम की अन्य आलोचना यह की गई है कि इसने एक अमूर्त स्तर पर संगठन को समझने की केवल सामान्य व्याख्या प्रस्तुत की है। यह कार्यकर्ता को यह जानने में कोई सहायता नहीं करता कि संगठन के कार्य को कैसे सुधारा जा सकता है। यह व्याख्या में बहुत

अधिक सामान्य होने की ओर उन्मुख है। इसलिए यह न तो संगठन की कार्यपद्धति की बेहतरी और न ही संगठन में निर्णय निर्माण प्रक्रिया को सुधारने के लिए कोई ठोस सुझाव देता है।

(5) सत्ता तथा तार्किकता की अवधारणाएं मानव व्यवहार की आदर्श दृष्टिकोण से व्याख्या करने का प्रयास करती हैं। मानव व्यवहार को चलाने वाली भौतिक स्थितियों तथा ठोस ऐतिहासिक परिस्थिति को शामिल नहीं किया गया है या उन पर विचार नहीं किया गया है। संगठन के व्यक्ति की तुलना आर्थिक व्यक्ति के साथ की गई है। इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच विरोधाभास काफी बड़ा है तथा आक्रमक है। आर्थिक व्यक्ति पर पूरी चर्चा उसके आर्थिक व्यवहार पर आश्रित की है। प्रशासनिक व्यक्ति मानव सम्बन्ध मूल्य निर्णयों तथा चयन व्यवहार को निर्धारित करते हैं, पूर्णतः उपेक्षा की गई है।

11.12 सारांश

संगठन सिद्धान्त के विकास तथा वृद्धि में व्यवहारवादी उपागम एक महत्वपूर्ण नया मोड़ है। संगठन के अध्ययन में इसका योगदान काफी अधिक है। व्यवहारवादी उपागम संगठन के अध्ययन को तकनीकी प्रकृति सिद्धांतों तथा संरचनाओं से ऊपर की स्थिति को ले गया है। इसने संगठन को परखने का नया मोड़ दिया तथा संदर्भ के एक नये रूप ''निर्णय–निर्माण'' को प्रस्तुत किया है। प्रशासनिक चर्चा में मूल्य तथा तथ्य एवं तार्किकता की धारणाओं को इसके द्वारा लाये गये परम्परावादी विचारों तथा व्यवहारात्मक दोनों पर लंबी चर्चा तथा संगठन प्रभाव के तरीकों से प्रशासन की सशक्त समझ में योगदान दिया। वास्तव में, साईमन द्वारा बाद में आर्थिक संगठन के अध्ययन के प्रति लगाव सार्वजनिक प्रशासनिक संगठन के विषय को हानि समझा जाता है। आलोचक सोचते हैं कि यदि वह उसी खोज पर चलता तो प्रशासन के अध्ययन को काफी लाभ होता। अंत में, व्यवहारवादी उपागम ने अवधारणात्मक सांचे को चौड़ा किया तथा संगठन पर सामान्य रूप में तथा संगठन व्यवहार पर विशेष रूप में जीवन्त बहस के प्रति सशक्त रूप से योगदान दिया।

ग्रॉस ने कहा : साइमन ''मनोवैज्ञानिक अनुसंधान और सिद्धान्त में दुनिया के सबसे अच्छे पायनियर बन गये हैं। वह अरस्तू या पुनर्जागरण व्यक्ति के आदर्श के सबसे करीब आता है।

11.13 प्रमुख शब्दावली

सीमित तार्किकता : साईमन के अनुसार मानव व्यवहार न तो पूर्ण रूप से तार्किक है और न ही पूर्ण रूप से अतार्किक। इसकी अपनी सीमाएं होती हैं।

श्रम का स्तर भेदानुसार विभाजन : जब विभिन्न स्तरों पर वांछित ज्ञान तथा कौशल पर आधारित श्रम का सोपानित विभाजन हो।

11.14 बोध प्रश्न

1. (1) साईमन के व्यवहारवादी उपागम का केन्द्रीय बिन्दु क्या है?

   (2) साईमन ने परम्परावादी उपागम की किन आधारों पर आलोचना की?

   (3) निर्णय–निर्माण प्रशासन में क्यों महत्वपूर्ण है?

2. (1) चयन व्यवहार से किस प्रकार सम्बन्धित है?

   (2) निर्णय निर्माण में मूल्यों की क्या भूमिका है?

   (3) निर्णय निर्माण में तथ्यों की क्या भूमिका है?

   (4) निर्णयों के सोपान का क्या अर्थ है?

   (5) तार्किकता की अवधारणा की व्याख्या कीजिए?

   (6) सीमित तार्किकता क्या है?

3. (1) संयोजित तथा असंयोजित निर्णयों में अंतर कीजिए।

   (2) प्रशासनिक प्रक्रिया एक निर्णय निर्माण प्रक्रिया है। व्याख्या कीजिए।

   (3) सत्ता तथा प्रशिक्षण किस प्रकार संगठनात्मक प्रभाव के तरीके या रूप हैं, बतलाइये।

   (4) साईमन की निर्णय लेने की योजना की मुख्य आलोचनाएं क्या हैं?

11.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) भाग 11.1 देखें

   (2) भाग 11.2 देखें

   (3) भाग 11.3 देखें

2. (1) भाग 11.4 देखें

   (2) भाग 11.5 देखें

   (3) भाग 11.5 देखें

   (4) भाग 11.6 देखें

   (5) भाग 11.7 देखें

   (6) भाग 12.7 देखें

3. (1) भाग 11.8 देखें

   (2) भाग 11.9 देखें

   (3) भाग 11.10 देखें

   (4) भाग 11.11 देखें

11.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Hicks Herbert G. & Gullet C. Ray, Organizations: Theory and Behaviour; Prasad, Ravindra D. et.al (Eds.), 2012, Admiistrative Thinkers; Sterling Publishers: New Delhi

Simon, Herbert, The New Science of Management, Decision, 1977 (New Jersery, Printice-Hall)

Simon, Herbert, 1957, Administrative Behaviour (New York : Free Press)

इकाई– 12

सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपागम :

डगलस मैकग्रेगर एवं अब्राहम मैस्लो

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 मैस्लो का अभिप्रेरणा सिद्धांत

12.3 आवश्यकता–सोपान सिद्धान्त

12.4 आवश्यकता सोपान किस प्रकार कार्य करता है

12.5 आवश्यकता पूर्ति की परिस्थितियां

12.6 आवश्यकता सोपान क्रमः एक मूल्यांकन

12.7 मैकग्रेगर का ''एक्स'' सिद्धांत : प्रबन्ध का परम्परावादी दृष्टिकोण

12.8 ''वाई सिद्धान्त'' : प्रबन्ध का एक नया सिद्धान्त

12.9 एक्स एवं वाई सिद्धान्तः एक मूल्यांकन

12.10 सारांश

12.11 मुख्य शब्दावली

12.12 बोध प्रश्न

12.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्यः

- सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपागम का अर्थ बतलाना,
- एक्स एवं वाई सिद्धान्त का अर्थ समझाना,
- आवश्यकता–सोपान का वर्णन करना, तथा
- सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपागम के प्रति मैस्लो एवं मैकग्रेगर के योगदानों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना है।

12.1 प्रस्तावना

सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपागम संगठन तथा मानव के बीच सम्बन्धों को समझने का एक साधन है। लम्बे समय से यह पेचीदे प्रश्न पूछे जाते हैं:

लोग संगठनों में काम क्यों करते हैं? वे कौन सी स्थितियां हैं जिनसे संगठन में कार्यरत लोगों के कार्य निष्पादन में वृद्धि होती है? इन तथा अन्य इसी प्रकार के अनेक प्रश्नों के उत्तरों का विश्लेषण सामाजिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया जा सकता है। विश्वास यह है कि मानव का उनके मनोवैज्ञानिक कारकों के संदर्भ में विश्लेषण संगठन में उनके व्यवहार से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर प्रदान करता है। ऐसा इसलिए है कि संगठनों में व्यक्ति अपने कार्यो तथा ध्येयों को प्राप्त करने के लिए अकेले तथा सामूहिक रूप में कार्य करते हैं। यह उपागम मूलतः संगठन के मानव पक्ष पर बल देता है। व्यक्ति तथा संगठन के प्रति उसके योगदान में विश्वास इस उपागम का केन्द्र है। इस उपागम के प्रति अनेक विचारकों तथा लेखकों का योगदान है। उनमें अब्राहम मैस्लो एवं मेकग्रेगर 1906–1964 के योगदान अपूर्व हैं। यहाँ विशेष रूप से हम मैकग्रेगर के एक्स एवं वाई सिद्धान्त तथा मेस्लो के आवश्यकता सोपान सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे। क्रम के अनुसार मैस्लो का सिद्धान्त पहले तथा मैकग्रेगर का सिद्धान्त बाद में आता है। परन्तु मैस्लो के योगदान को प्रसिद्धि छठे दशक में केवल उस समय मिली जब हर्जबर्ग, मैकग्रेगर तथा अन्य सामाजिक मनोवैज्ञानिक विचारकों ने उसके विश्लेषण को अपने अभिप्रेरणा अध्ययनों में प्रयोग किया। इसलिए हम पहले मैस्लो के आवश्यकता सोपान का अध्ययन करेंगे और तत्पश्चात् मैकग्रेगर के एक्स तथा वाई सिद्धांत का वर्णन करेंगे।

12.2 मैस्लो का अभिप्रेरणा सिद्धांत

अब्राहम मैस्लो (1908–1970) ने 1943 में प्रकाशित अपने एक लेख ''मानव अभिप्रेरणा का एक सिद्धान्त'' में अभिप्रेरणा के एक सिद्धान्त की रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होंने संगठनों तथा व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों का मानव आवश्यकताओं की दृष्टि से विश्लेषण किया। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठनों के सदस्य बनते हैं। ये आवश्यकताएं अनेक क्षेत्रों में उत्पन्न होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उन्हें निष्पादन के उच्चतर स्तर की ओर अभिप्रेरित करती हैं। मांगों का पूरा न होना, संगठनात्मक उद्देश्य प्राप्त करने के लिए संगठन के प्रति लोगों द्वारा योगदान देने की अभिप्रेरणा पर उल्टा प्रभाव डालेगा।

12.3 आवश्यकता–सोपान सिद्धान्त

मैस्लो व्यक्ति की अभिप्रेरणा आवश्यकताओं को सोपानात्मक रूप से व्यवस्थित करते हैं। उनके अनुसार संगठन में मान व्यवहार को बतलाने वाली मनुष्यों की अनेक आवश्यकताएं हैं। इन आवश्यकताओं का सोपान क्रम होता है। आवश्यकताएं हैं– शारीरिक आवश्यकताएं, सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएं, सामाजिक आवश्यकताएं, प्रतिष्ठा या आदर सम्बन्धी आवश्यकताएं तथा स्वयं सिद्धि आवश्यकताएं। शारीरिक तथा सुरक्षा की आवश्यकताएं सोपान–क्रम में निचले स्तर की आवश्यकताएं हैं तथा स्वयंसिद्धि सोपानक्रम में सर्वोच्च है। सामाजिक तथा आदर सम्बन्धी आवश्यकताएँ इनके बीच में या सोपानक्रम के मध्य स्तर पर आती है। मैस्लो का विश्वास था कि निचले स्तर की आवश्यकता को पूरा किए बिना व्यक्ति को अभिप्रेरित नहीं किया जा सकता।

शारीरिक आवश्यकताएं

भूख, प्यास तथा मकान इत्यादि मानव जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं हैं। मनुष्य के लिए इन आवश्यकताओं को सर्वप्रथम पूरा करना आवश्यक है। उनकी संतुष्टि के पश्चात वह उन्हें प्राप्त करने का प्रयास नहीं करता। फिर वे उसे अभिप्रेरित नहीं करती।

सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएं

नौकरी की सुरक्षा या कार्य स्थल में सुरक्षा मनुष्यों को मनोवैज्ञानिक सुरक्षा प्रदान करती है। मैस्लो का बल शारीरिक तथा भावनात्मक दोनों प्रकार की सुरक्षा पर है। मानव, जीवन में सुरक्षा ढूंढता है। एक बार यदि सुरक्षा एवं शान्ति सुनिश्चित हो जाए तो फिर वे मानव को अभिप्रेरित नहीं करती।

सामाजिक आवश्यकताएं

इसका अर्थ यह है कि संगठन में कार्यरत लोगों के समूहों के आपस में सम्बन्ध हैं। उनके बीच यह आवश्यकता लोगों को भावनात्मक सुरक्षा देती है। इससे संगठन का सदस्य तथा साझेदारी होने की भावना आती है। प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों के साथ मित्रता की आवश्यकता होती है। यदि ये आवश्यकताएं पूरी न हों तो व्यक्ति विरोधी बन जाता है।

सम्मान की आवश्यकताएं

यह मानव की उच्च स्तर की आवश्यकताएं हैं। इस स्तर पर मानव शक्ति, उपलब्धि तथा प्रतिष्ठा के लिए प्रयास करता है। सम्मान का अर्थ स्व–सम्मान तथा अन्य लोगों द्वारा सम्मान दोनों से है।

स्वयं वास्तविकीकरण

यह उच्च स्तरीय आवश्यकता अन्य सभी आवश्यकताओं का चरम बिन्दु है। इस आवश्यकता की पूर्ति व्यक्ति को काम तथा जीवन में संतुष्टि प्रदान करती है। इससे संगठन में व्यक्ति के निष्पादन में और भी सुधार होगा, क्योंकि स्वयं संतुष्ट व्यक्ति अपनी सम्भावित इच्छाओं को पूर्ण कर चुका होता है।

12.4 आवश्यकता सोपान किस प्रकार कार्य करता है?

आवश्यकता सोपान क्रम के 5 स्तर हैं। मैस्लो के आवश्यकता सोपानक्रम के प्रतिमान को दिखलाते हुए रेखाचित्र निम्न प्रकार है :–

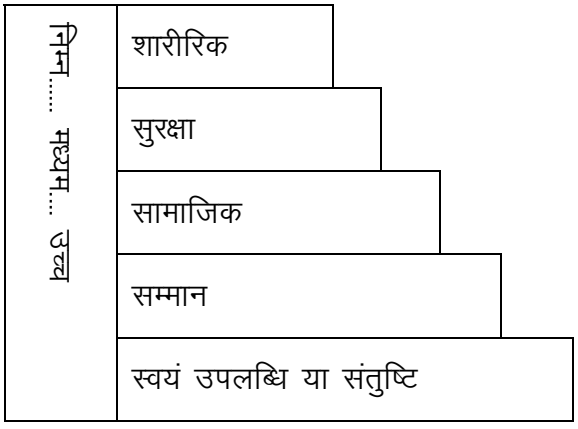

रेखाचित्र

मैस्लो के अनुसार प्रत्येक आवश्यकता एक समय एक व्यक्ति के लिए लक्ष्य होती है। यदि व्यक्ति की मूल आवश्यकताएं अर्थात शारीरिक आवश्यकताएं पूरी नहीं होती तो वह अपनी सारी शक्तियाँ उस क्षेत्र में संतुष्टि प्राप्त करने में केन्द्रित करता है। जब वह एक आवश्यकता क्षेत्र में संतुष्टि प्राप्त

कर लेता है तो वह उसके ऊपर के क्रम की आवश्यकता की ओर चलता है। यह प्रक्रिया मानव जीवन में प्रतिदिन चलती रहती है। एक आवश्यकता क्षेत्र में किसी विशेष लक्ष्य का पूरा न होना व्यक्ति को उसे प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। जब यह प्राप्त हो जाता है तो फिर यह व्यक्ति को उस क्षेत्र में कार्य करने के लिए अभिप्रेरित नहीं करता। यह मैस्लो के आवश्यकता–सोपानक्रम सिद्धान्त की मुख्य आधार शिलाओं में से एक है।

सोपानक्रम में सबसे नीचे शारीरिक आवश्यकताएं, जैसे भूख, प्यास, मकान आदि हैं। ऐसी आवश्यकताएं संगठन द्वारा संगठन सदस्यों को वेतन तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराना आवश्यक बनाती हैं। एक बार जब संगठन के योगदान से व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताएं संतुष्ट हो जाती हैं तो वह सोपानक्रम में ऊपर बढ़ जाता है और वह उच्च स्तर वाली आवश्यकताएं उसके लिए महत्वपूर्ण बन जाती हैं, फिर उस आवश्यकता क्षेत्र में वह स्वयं को संतुष्ट करने का कठिन प्रयास करता है। जैसे शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि एक व्यक्ति को उसी सुरक्षा आवश्यकताओं की संतुष्टि करने की ओर संचालित करती है। इस समय उसकी सुरक्षा की आवश्यकता उसके व्यवहार को अभिप्रेरित करती है। सुरक्षा की आवश्यकता पूरी होने पर सामाजिक आवश्यकताएं महत्वपूर्ण हो जाती हैं। मानव एक सामाजिक प्राणी है और वह संगठन तथा संबद्धता का मूल्य समझता है। सामाजिक आवश्यकताओं में मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति जैसे संगठन की मान्यता भी शामिल है। सामाजिक आवश्यकताएं लोगों को अपने अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध सुधारने के लिए संचालित करती है। यदि संबद्धता की आवश्यकता पूरी हो जाती है तो मानव मन संगठन में स्वायत्तता और प्रतिष्ठा तथा आदर की आवश्यकता के अंतर्गत वर्णित लोगों के साथ तथा उनके माध्यम से कार्य करने की स्वतंत्रता की खोज करता है। आदर की आवश्यकताओं की पूर्ति लोगों में आत्मविश्वास निर्माण करती है तथा उन्हें नेतृत्व करने, दूसरों का मार्गदर्शन करने एवं लोगों के काम का मूल्यांकन करने के लिए तैयार करती है। आवश्यकता सोपानक्रम में सर्वोच्च तथा अन्तिम स्तर स्वयं सिद्धि की आवश्यकता का है। इसका वर्णन निजी तथा व्यावसायिक विकास के माध्यम से जीवन में अर्थ एवं ध्येय प्राप्त करने के रूप में किया है। इसकी अभिव्यक्ति कार्य में उच्चतर निष्पादन प्राप्त करने में होती है, चाहे वह संगठन में कामगार, पर्यवेक्षक या एक प्रबन्धक हो। यह संपूर्ण समाज एवं संगठन में पायी जाने वाली सर्वोत्तमता की भावना है। हमारे पास संपूर्ण विश्व में जीवन के सभी क्षेत्रों में ऊँचा निष्पादन करने वाले उदाहरण हैं। स्वयं सिद्ध लोग अपने सभी प्रयासों में अर्थ तथा ध्येय ढूंढते हैं तथा संगठन विकास के लिए अपनी क्षमताओं एवं शक्तियों का योगदान करते हैं। मैस्लो के अनुसार यह आवश्यकता उस समय उत्पन्न होती है जब उससे नीचे की सभी आवश्यकताएं– शारीरिक, सुरक्षा, सामाजिक तथा आदर–पूरी हो जाती हैं।

12.5 आवश्यकता पूर्ति की परिस्थितियां

किसी संगठन की संस्कृति, इतिहास, नीतियां, प्रक्रियाएं, वातावरण तथा उसकी लोगों को आकर्षित करने, विकास करने तथा अपने यहां रोके रखने की क्षमता उसके सदस्यों की आवश्यकता पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हम ऐसे संगठन भी देखते हैं जो मानवीय–कारक अर्थात अपने सदस्यों के विषय में कम ही सोचते हैं। कुछ संगठन लोगों में तथा उनकी निष्पादन क्षमता या योग्यता में विश्वास रखते हैं, अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था करते हैं ऐसे संगठन जो लोकोन्मुख नहीं हैं, अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना कठिन बना देते हैं। ऐसे संगठन अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा न होने के नकारात्मक परिणामों का सामना करेंगे। यह स्थिति अन्त में तो अवश्य होगी ही। इसके विपरीत जो लोग नीतिपरक,

आत्मसंयमी नहीं हैं तथा कार्य में रुचि नहीं रखते ऐसे लोग संगठन की नकारात्मक शक्तियां बन जाते हैं। वे अपनी उच्चतर स्तर की आवश्यकताओं जैसे आदर एवं स्वयं सिद्धि की पूर्ति नहीं कर सकते। एक संगठन में आवश्यकता पूर्ति के लिए आत्म–निर्णय, उद्देश्योन्मुखता तथा कार्य परकता की आवश्यकता संगठन तथा उसके सदस्य दोनों की तरफ से आवश्यक है।

मैस्लो स्पष्ट करता है कि सोपानक्रम उतना कठोर नहीं है जैसा सैद्धान्तिक रूप में लगता है। उसके अनुसार सोपानक्रम वह प्रतिमान है जो संगठनों में मानव–अभिप्रेरणा को समझने में सहायता करता है। अन्य शब्दों में यह आवश्यक नहीं कि आवश्यकता सोपानक्रम एक निश्चित क्रम से ही काम करे उसमें परिवर्तन के लिए स्थान होता है।

12.6 आवश्यकता सोपान क्रमः एक मूल्यांकन

मानव व्यवहार को समझने में यह सहायक होते हुए भी मैस्लो का सिद्धान्त आलोचना का विषय रहा है। अनेक अनुभवात्मक अध्ययनों का निष्कर्ष था कि मैस्लो का प्रतिमान कार्य–अभिप्रेरणा को एक समग्र सिद्धान्त के रूप में विवाद योग्य है। इन अध्ययनों ने एक स्तर पर आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उसके आगे वाले उच्चतर स्तर पर आवश्यकताओं की क्रियाशीलता के बीच सहसंबन्ध की कमी पायी।

आधुनिक प्रबन्ध सिद्धान्त मैस्लो के लेखों से काफी सीमा तक प्रभावित हैं। बाद के कुछ शोधकर्ताओं, जैसे हर्जबर्ग, मैस्लो के सिद्धान्त पर विकसित किया तथा विषय की समृद्धि में योगदान दिया। यद्यपि मैस्लो की अवधारणाओं में अनेक सीमाएं हैं, उसका सिद्धान्त मानव व्यवहार को यदि पूर्ण अर्थ में नहीं तो निम्न या उच्च संभावना के आधार पर, पूर्वानुमानित करने में सहायक है।

मास्लो के सिद्धान्त का आधुनिकीकरण पर एक बड़ा असर पड़ता है जो व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रेरणा और कार्य संगठन के डिजाइन के लिए दृष्टिकोण है।

12.7 मैकग्रेगर का ''एक्स'' सिद्धांत : प्रबन्ध का परम्परावादी दृष्टिकोण

डगलस मैकग्रेगर (1906–1964) एक ख्याति प्राप्त व्यवहारवादी तथा मनोवैज्ञानिक हैं। वह संगठनात्मक निष्पादन के प्रति योगदान देने में मानव की क्षमताओं पर कट्टर विश्वास रखने वाले हैं। उनकी पुस्तक, ''द ह्यूमन साईड ऑफ एन्टरप्राइज'' (1960) ने कुछ जटिल प्रश्नों के उत्तर देकर संगठन तथा प्रबन्ध सिद्धान्त के नए मार्ग खोले। बाद में उन्होंने एक अन्य पुस्तक ''द प्रोफेशनल मैनेजर'' (1964) प्रकाशित की। उनका ध्यान संगठनों में मानव की छिपी क्षमताओं का प्रयोग करने, अनुकूल तथा सद्भावपूर्ण वातावरण बनाकर लोगों से अच्छा कार्य लेने पर था। उन्होंने यह अनुभव किया कि व्यक्तियों को नियंत्रित करने के विषय में सैद्धान्तिक मान्यताएं उद्यम का चरित्र निर्धारित करती है। मैकग्रेगर के अनुसार, संगठनों में लोगों से परम्परावादी दृष्टिकोण है। वे इस दृष्टिकोण को एक्स सिद्धान्त कहते हैं। एक्स सिद्धान्त को उन्मुखता विचार के अनुसार प्रबन्ध को आर्थिक गतिविधि तथा संसाधनों के वितरण को निदेशित काम कराने का नाम है तथा इसलिए एक प्रबन्धक के लिए संगठन में अन्य लोगों के व्यवहार को नियंत्रित करना आवश्यक है। उनका विचार है कि संगठन अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निर्देशन, नियंत्रण एवं अभिप्रेरणा देने की प्रक्रिया में उचित रूप से हस्तक्षेप कर सकता है। इन विचारों के पीछे मानव स्वभाव तथा मानव व्यवहार के विषय में कुछ मान्यताएं हैं। ये मान्यताएं

इतनी व्यापक हैं कि इन्हें संगठन तथा प्रबन्ध साहित्य में अधिकतर देखा जा सकता है। मान्यताएं यह हैं :

(1) आम आदमी काम के प्रति स्वाभाविक अरुचि या नापसंदगी रखता है तथा वह इससे बचने की कोशिश करता है।

(2) काम के प्रति अरुचि की इस मानवीय विशेषता के कारण अधिकतर व्यक्तियों को संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रति पर्याप्त प्रयास कराने के लिए बाध्य करने, नियंत्रित करने, निर्देशित करने तथा दंड की धमकी देने की आवश्यकता है।

(3) आम आदमी दूसरों के द्वारा निर्देशित होना पसन्द करता है, उत्तरदायित्व से बचना चाहता है, तुलनात्मक रूप में कम आकांक्षा रखता है, सर्वाधिक रूप में सुरक्षा चाहता है।

एक्स सिद्धान्त (Theory 'x') मनुष्यों को सुस्त, कोई आकांक्षा न होने वाला, परिवर्तन–विरोधी, अ–रचनात्मक, आसानी से ठगा जाने वाला आदि मानता है। ऐसी स्थिति में प्रबन्ध दो नीतियां अपना सकता है– कठोर तथा शिथिल। कठोर नीति में गहरा पर्यवेक्षण, कठोर नियंत्रण, दबाव एवं धमकी जैसी तकनीक निहित हैं। दूसरी ओर शिथिल नीति अधिक छूट देने वाली होती है। मांगों की पूर्ति करती है तथा संगठन एवं कर्मचारियों की मांगों में मेल या समन्वय स्थापित करने का प्रयास करती है। परन्तु इन दोनों नीतियों की अपनी समस्याएं हें। उदाहरण के लिए, यदि प्रबन्ध कठोर है, तो इसका परिणाम संघर्षकारी संघवाद (यूनियनिज्म), तोड़–फोड़ तथा प्रक्रिया विरोध हो सकता है। दूसरी ओर शिथिल प्रबन्ध सामंजस्य प्राप्त करने या स्थापित करने की उत्सुकता में उसे ही त्याग सकता है। मैकग्रेगर का कहना है कि परम्परावादी प्रबन्ध उपागम अपर्याप्त है क्योंकि यह समस्या समाधन से अधिक समस्या उत्पन्न करती है। उन्होंने संगठनात्मक व्यवहार को समझने के लिए अभिप्रेरणात्मक कारकों के अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया। क्योंकि उसका विश्वास है कि आवश्यकताओं से वंचित करने से सभी स्तरों पर व्यवहारात्मक परिणाम होते हैं। कर्मचारियों में विरोध तथा निष्क्रियता की भावना मानव स्वभाव में अन्तर्निहित नहीं है। एक्स सिद्धान्त केवल प्रबन्ध नीति या कार्यविधि के परिणामों को व्यक्त करती है मानव स्वभाव को नहीं। मानव स्वभाव के विषय की मान्यताएं अनावश्यक हैं। ऐसी मान्यताएं प्रबन्ध द्वारा अन्य नीतियों में संभावनाएं देखने से रोकती हैं। यहां तक कि जब हम विकेन्द्रीकरण तथा सलाहकारी पर्यवेक्षण जैसी तकनीक का प्रयोग करते हैं तो उनका क्रियान्वयन मानव–प्रकृति के बारे में अपर्याप्त मान्यताओं पर आधारित होगा। अन्त में मैकग्रेगर इस बात पर बल देते हैं कि ''एक्स सिद्धान्त'' की मान्यताएं मानव की निहित क्षमताओं को उनकी पूर्णता के संदर्भ में नहीं खोजेगी।

वस्तुतः एक्स सिद्धान्त पुरातनवादी प्रशासनिक सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करता है तथा कुशलता एवं मितव्यता पर बल देती है। क्योंकि मानव काम से बचने का प्रयास करता है, प्रबन्ध को इस अन्तर्निहित या स्वाभाविक मानव प्रकृति का प्रतिकार करना चाहिए। इसलिए ''एक्स सिद्धान्त'' निर्देशन एवं नियंत्रण पर बल देता है।

''एक्स सिद्धान्त'' केवल प्रबन्ध नीति के विषय में बतलाता है। यह नहीं बतलाता कि कर्मचारियों को कौन से कारक अभिप्रेरित करते हैं। यह प्रबन्धक पर भी बल देती है तथा उसके कार्य को और भी अधिक कठिन तथा जटिल बना देती है वह अपने कर्मचारियों का सहयोग नहीं प्राप्त कर सकता यदि वह निरन्तर उन्हें अविश्वास की दृष्टि से देखता है। प्रबन्धक को अपने समय का काफी बड़ा भाग निर्देशन तथा नियंत्रण में भी लगाना होगा। इससे नीति

निर्माण तथा नियोजन के लिए उसके पास समय बहुत कम होगा। मैकग्रेगर का विचार था कि यह परम्परावादी दृष्टिकोण न तो उद्देश्य–प्राप्ति और न ही कर्मचारियों को उद्देश्य–प्राप्ति के लिए प्रेरित करने में सहायक है।

एल्टॉन मेयो ने स्थापित किया है कि संगठनों को समझने के लिए मानव तत्व एवं अनौपचारिक संगठन का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। साईमन के अनुसार व्यक्तियों के मूल्य प्रशासन में निर्णय निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। परन्तु दुर्भाग्य से एक्स सिद्धान्त की मान्यताएं मानव व्यवहार को उसकी पूर्णता के संदर्भ में नहीं समझाती। इसलिए मैकग्रेगर ने वाई सिद्धान्त नामक एक वैकल्पिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

12.8 ''वाई सिद्धान्त'' : प्रबन्ध का एक नया सिद्धान्त

मैकग्रेगर का मत है कि ''एक्स सिद्धान्त'' की संगठन प्रबन्ध तथा मनुष्य के बारे में जो मान्यताएं हैं वह निष्पादन एवं उत्पादन के मार्ग की बाधाएं हैं। वे मानव की सभी निहित क्षमताओं को समझने में अपर्याप्त हैं। इसलिए ''एक्स सिद्धान्त'' के स्थान पर मैकग्रेगर ने एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसे व्यापक रूप से ''वाई सिद्धान्त'' (Theory 'y') के नाम से जाना जाता है। यह नया सिद्धान्त मनुष्य तथा प्रबन्ध के बीच सम्बन्धों को एक नई दृष्टि प्रदान करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्ध संगठन के कार्यो को समन्वित करने तथा संगठन ध्येय को प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी है। यह नए सिद्धान्त में मैकग्रेगर निर्देशन तथा नियंत्रण के स्थान पर समन्वय की स्थापना करता है। ''वाई सिद्धान्त'' में मानव स्वभाव के विषय में मान्यताएं हैं :

1. कार्य में शारीरिक तथा मानसिक श्रम लगना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि खेलना या आराम करना। आम आदमी स्वाभाविक रूप से कार्य करना चाहता है। नियंत्रण योग्य स्थितियों पर निर्भर करते हुए कार्य संतोष या संतुष्टि का स्रोत हो सकता है (स्वैच्छिक रूप से पूरा किया जायेगा) तथा दंड का स्रोत हो सकता है (तथा यदि संभव हुआ तो, टाला जायेगा)।

2. बाहरी नियंत्रण तथा दंड की धमकी ही संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के मात्र साधन नहीं हैं। यदि व्यक्ति उन लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्ध है तो कार्य पूर्ण करने में आत्म–निर्देशन तथा आत्म नियंत्रण का प्रयोग करेगा।

3. लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्धता, उनकी प्राप्ति के साथ जुड़े पुरस्कारों का एक कार्य है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरस्कार अहम तथा स्वयं सिद्धि की संतुष्टि है जो संगठनात्मक लक्ष्यों की ओर निदेशित प्रयासों का सीधे फल हो सकते हैं।

4. आम आदमी, सही परिस्थितियों में उत्तरदायित्व को केवल स्वीकार करना ही नहीं अपितु उत्तरदायित्व भी चाहता है। उत्तरदायित्व से बचना, आकांक्षा की कमी तथा सुरक्षा पर बल सामान्यतः अनुभव के परिणाम होते हैं, न कि मानव विशेषताओं में अन्तर्निहित होती है।

5. संगठनात्मक समस्याओं को सुलझाने में अपेक्षाकृत उच्च कल्पनाशीलता, ईमानदारी तथा रचनात्मकता का प्रयोग संकीर्ण की अपेक्षा व्यापक रूप से जनता में पाया जाता है।

6. आधुनिक औद्योगिक जीवन की स्थितियों में औसत आदमी की बौद्धिक क्षमताओं का केवल आंशिक रूप ही प्रयोग किया जाता है।
में

मैकग्रेगर का सुझाव है कि एक ऐसी नये प्रबन्ध–नीति की आवश्यकता है जो स्थिर होने की अपेक्षा गतिशील हो। यह नीति मानव उन्नति तथा विकास प्रदान करने वाली होनी चाहिए। इसे मानव संसाधनों की खोज करनी चाहिए जिनमें संगठन के प्रति योगदान करने की क्षमताएं हों। ''वाई सिद्धांत'' एक ऐसे संगठन को बनाये रखने के महत्व पर बल देता है जिसमें लोग आत्मविश्वासी तथा अभिप्रेरित अनुभव करें यह संगठन में कार्यरत लोगों के कार्य निष्पादन में सुधार करने पर बल देती है। इसमें इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रबन्धकों के स्तर पर अनेक नेतृत्व सम्बन्धी कौशलों की आवश्यकता है या उनका समावेश है। संगठन में आत्म–नियंत्रण, आत्म निर्देशन, उद्देश्योन्मुखता तथा मानव मूल्य मैकग्रेगर के प्रतिमान की आधारशिला हैं।

मैकग्रेगर कहता है कि ''वाई सिद्धान्त'' परिवर्तन तथा नवीनता का नियंत्रण है। ''वाई सिद्धान्त'' मान्यताओं के अनुरूप नवीन विचार है : सत्ता तथा उत्तरदायित्व का प्रदत्तीकरण एवं विकेन्द्रीकरण कार्य को कार्य–पुर्नरचना के द्वारा अधिक आकर्षक या रुचिकर बनाना, निर्णय निर्माण प्रक्रिया में अधिकाधिक लोगों को शामिल करने की भागीदारी व्यवस्था, उचित निष्पादन–मूल्यांकन प्रणाली का विकास करना।

मैकग्रेगर का वाई सिद्धान्त समन्वय पर बल देता है। उसके अनुसार समन्वय का अर्थ ऐसी स्थितियों के निर्माण करने से है जिसमें संगठन के सदस्य अपने उद्देश्यों को उद्यम की सफलता की ओर अपने प्रयासों को लगाकर सर्वाधिक अच्छे रूप में प्राप्त कर सकते हैं। इसमें संगठनात्मक तथा व्यक्तिगत, दोनों आवश्यकताओं की पहचान तथा उनका समन्वय हो जाता है। इसमें प्रबन्ध तथा कर्मचारी दोनों का साथ–साथ कार्य करना निहित है। इस उपागम को समन्वय तथा आत्म–नियंत्रण के द्वारा प्रबन्ध के रूप में भी जाना जाता है।

संक्षेप में, 'थ्योरी वाई' मानव संगठनों और प्रतिभागी प्रबंधन की परस्पर निर्भरता को मान्यता देते हैं।

कार्य की आवश्यकताओं का निर्धारण

प्रबन्धक के लिए अपने कार्य के उत्पादन सूचकों तथा ध्येय को समझना आवश्यक है जिससे कि वह अपने साथियों को प्रमुख उत्पादन या परिणाम क्षेत्रों की ओर ले जा सके।

लक्ष्य निर्धारण

जब प्रबन्धक अपने कार्य के ध्येय को जान जाता है तो उसे मात्रा, गुणवत्ता तथा समय के संदर्भ में लक्ष्यों का निर्माण करना पड़ता है। यह साधारणतया वह अपने साथियों एवं पर्यवेक्षकों से विचार–विमर्श करके करता है। एक बार जब वांछित एवं प्रतिबद्ध लक्ष्यों पर सहमति हो जाती है तो भविष्य में किसी भी समय निरपेक्ष मूल्यांकन करना अधिक आसान होगा।

अन्तराल समय

लक्ष्य निर्धारण तथा निष्पादन–मूल्यांकन में अंतिम मूल्यांकन के बीच के समय में प्रबन्धक को अपने साथियों का विकास करने के लिए प्राप्त नियंत्रण तथा निर्देशन का प्रयोग करना पड़ता है। उसके लिए प्रबन्धकों के पास नेतृत्व के कौशलों की आवश्यकता है।

आत्म–मूल्यांकन

एक प्रबन्धक को निर्धारित तथा सहमत हुए लक्ष्यों के संदर्भ में अपने निष्पादन का मूल्यांकन करना है। इस विश्लेषण को करते समय सहमत हुए उद्देश्यों के अनुसार प्रत्येक निष्पादन संकेतकों या सूचकों का माप करता है।

इससे गुणवत्ता, मात्रा तथा समय के संदर्भ में लक्ष्यों तथा प्रबंधक की उपलबब्धियों की एक निरपेक्ष तस्वीर प्राप्त होती है। यह हानियां तथा कमियों के विश्लेषण का एक अवसर भी प्रदान करती है तथा भविष्य में लक्ष्य–निर्धारण में सहायक होती है। इस बात का महत्व यह है कि यह संगठन तथा व्यक्ति के बीच समझ को बढ़ाती है।

12.9 एक्स एवं वाई सिद्धान्तः एक मूल्यांकन

मैकग्रेगर के ''एक्स'' तथा ''वाई'' सिद्धान्त मानव–प्रकृति के विषय में पूर्णतया विरोधी मान्यताओं पर आधारित हैं। वाई सिद्धान्त के अनुसार मानव विकास की निहित क्षमताओं वाला है एवं सकारात्मक है यह प्रबन्ध के लिए निश्चित अर्थपूर्ण है। मैकग्रेगर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि यदि कर्मचारी आलसी, उदासीन, उत्तरदायित्व लेने के इच्छुक, जिद्दी, अरचनात्मक तथा असहयोगी हैं तो उसका कारण प्रबन्ध के नियंत्रण में है। एक्स तथा वाई सिद्धान्तों को मानव सम्बन्धों की पूर्ण श्रेणियों के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। वे केवल ऐसे विश्लेषणात्मक यंत्र हैं जिनके द्वारा व्यवहार का विश्लेषण किया जा सकता है, उसके विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है तथा उसे सुधारा या ठीक किया जा सकता है। मैकग्रेगर के पश्चात अनेक लेखक मानव स्वभाव के विश्लेषण और संगठन के लिए उसकी उपयोगिता के विश्लेषण में कई सिद्धान्त से आगे निकल गए हैं। परन्तु मैकग्रेगर के योगदान का महत्व कम नहीं होता।

यद्यपि सिद्धान्त 'थ्योरी वाई' में प्रबन्धन करने के लिए प्रयोज्यता में कुछ सीमाएं हैं फिर भी यह नवाचार के लिए एक खुला निमंत्रण'' है।

12.10 सारांश

सारांशतः मैस्लो तथा मैकग्रेगर संगठन के मानव पक्ष में विश्वास रखने वाले हैं। मैस्लो के आवश्यकता सोपानक्रम सिद्धान्त की विशेषता आत्मपरक आवश्यकता (इण्टरनलाईज्ड नीडस) तथा किसी कमी को पूरी करने वाली अन्य आवश्यकताओं में भेद करता है। मैकग्रेगर के विचार तथा उसके द्वारा प्रतिमानों ने प्रबन्धक सम्बन्धी विचार में नई दिशाओं को जन्म दिया। सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तवादियों या विचारकों ने संगठनों में मानव प्रश्नों को समझने के सदियों पुरानी समझ की नई तकनीक प्रदान की।

12.11 मुख्य शब्दावली

विकेन्द्रीकरण : प्रबंधक के सभी स्तरों तक सत्ता का वितरण या बंटवारा।

आदर : ऊँचा सोचना।

सोपान क्रम : संगठन में अनेक सोपानों या स्तरों की उपस्थिति जिनमें एक अन्य से ऊपर हो तथा सत्ता का बहाव ऊपर से नीचे के स्तरों की ओर हो।

अभिप्रेरित करना : रूचि जागृत करना।

आवश्यकता : इच्छा, जरूरतें।

निष्पादन–मूल्यांकन : यह आंकना कि कर्मचारी अपने कार्य को किस प्रकार कर रहा है।

पर्यवेक्षण : उच्चस्थों द्वारा अधीनस्थ के कार्यों की देखभाल करना या उनको रास्ता दिखलाना।

नीति (स्ट्रेटेजी) : कार्य योजना।

12.12 बोध प्रश्न

1. (1) सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपागम क्या है?

   (2) मैस्लो के आवश्यकता सोपानक्रम सिद्धान्त का महत्व बतलाइये।

   (3) मैस्लो के आवश्यकता सोपानक्रम की किन्हीं दो आवश्यकताओं के विषय में लिखिए।

   (4) आवश्यकता सोपानक्रम किस प्रकार कार्य करता है?

2. (1) एक्स सिद्धान्त क्या है?

   (2) वाई सिद्धान्त के अन्तर्गत मानव स्वभाव के विषय में क्या मान्यताएं हैं?

12.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) 12.1 भाग देखें

   (2) 12.2 भाग देखें

   (3) 12.3 भाग देखें

   (4) 12.4 भाग देखें

2. (1) 12.7 भाग देखें

   (2) 12.8 भाग देखें

12.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Chandan J.S. 1987, Management Theory & Practice; Vikas Publishing Huse Pvt. Ltd: New Delhi.

Hersey Paul and Blanchard Kenneth, 1980, Management of Organisational

Behaviour; Ulitising Human Resources; McGraw Hill Book Co.: New York.

McGregor Douglas, 1971, The Human Side of Enterprises, Tta McGraw Hill: New Delhi.

Maheshwari, S. Administrative Thinkers 2nd Edition (Delhi Macmillan, 2003)

Prasad, Ravindra D. et al. (Eds.) 2012, Administrative Thinkers, Sterling Publishers : New Delhi.

इकाई– 13

पारिस्थितिकीय उपागम : फ्रैड डब्ल्यू0 रिग्स

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण

13.3 फ्रैड डब्ल्यू0 रिग्स के विचार

13.4 आदर्श प्रारूप

13.4.1 बहुकार्यात्मक प्रारूप

13.4.2 अल्पकार्यात्मक प्रारूप

13.4.3 समपार्श्वीय प्रारूप

13.5 समपार्श्वीय समाजः विशेषताएं

13.5.1 विजातीयता

13.5.2 औपचारिकता

13.5.3 अतिआच्छादन

13.6 साला प्रारूप

13.7 बाजार कैंटीन प्रारूप

13.8 समपार्श्वीय समाज का सिद्धान्त : पुनर्निर्माण का संशोधन

13.9 आलोचना

13.10 सारांश

13.11 मुख्य शब्दावली

13.12 बोध प्रश्न

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण का अर्थ तथा उसके महत्व की चर्चा करेंगे। साथ ही विकासशील समाजों के विशेष संदर्भ में प्रशासनिक प्रणाली पर परिवेशीय कारकों के प्रभाव के विषय में फ्रैड डब्ल्यू0 रिग्स के विचारों की चर्चा करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- प्रशासनिक प्रणाली को समझने में पारिस्थितकीय दृष्टिकोण का अर्थ तथा महत्व बता सकेंगे,

- संक्रमणकालीन समाजों के विशेष संदर्भ में प्रशासनिक प्रणाली पर सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक आदि परिवेशीय प्रभावों की व्याख्या कर सकेंगे, और
- भारत जैसे विकासशील समाजों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के विषय में रिग्स के विचारों की व्याख्या कर सकेगे।

13.2 प्रस्तावना

हाल के वर्षों में आधुनिक सरकारों के कार्यों तथा दायित्वों में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। इस परिवर्तित संदर्भ में सरकार के लक्ष्यों की प्राप्ति में लोक प्रशासन की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। इसलिए, इसे समझने के लिए प्रशासनिक सिद्धान्त तथा प्रशासन के आदर्श रूप और भी अधिक महत्वपूर्ण बन गए हैं। प्रशासन के अध्ययन के प्रति पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण अब प्रस्तुत किया गया है जब पश्चिमी संगठन सिद्धान्त तृतीय विश्व के देशों में प्रशासन की समस्याओं के अध्ययन के लिए अपर्याप्त हो गये हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के अनेक देश औपनिवेशिक शासन से मुक्त हुए। उनके सामने जन–आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए राष्ट्र–निर्माण तथा सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन की बड़ी जिम्मेदारी थी। पश्चिमी विद्वानों ने, जो इन देशों में से बहुत से देशों के सलाहकार के रूप में कार्य कर रहे थे, अनुभव किया कि पश्चिमी संगठनात्मक प्रादर्श तृतीय विश्वयुद्ध के समाजों में वास्तविकता की व्याख्या करने में असफल थे। इसी स्वीकृति या अनुभव का परिणाम हुआ पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण सहित नयी धारणाओं तथा उपागमों का विकास।

13.3 पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण

प्रशासन अपने परिवेश या वातावरण से अलग रहकर कार्य नहीं करता। यह उसको प्रभावित करता है तथा स्वयं उससे प्रभावित होता है। प्रशासन को समझने के लिए दोनों के बीच की पारस्परिक क्रिया को समझना आवश्यक है। इसके लिए अपनाये गये दृष्टिकोण को पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण के रूप में जाना जाता है। पारिस्थितिकीय जीव विज्ञान से लिया गया शब्द है। इस अध्ययन का सम्बन्ध जीवों तथा उनके परिवेश के अंतर्संबन्धों से है। यह प्राणियों तथा उनके भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरण की अंतःक्रिया का अध्ययन है। इस विषय का केन्द्र बिन्दु यह है कि किस प्रकार जीव अपने अस्तित्व के लिए पर्यावरण के साथ संतुलन प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। यह निश्चित है कि एक पौधे के विकास के लिए विशेष प्रकार की जलवायु, मिट्टी, नमी तथा तापमान आदि की आवश्यकता होती है। कोई पौधा जो एक विशिष्ट जलवायु में उग सकता है या विकसित हो सकता है, दूसरी जलवायु में नहीं पनप सकता। इसी प्रकार प्रत्येक समाज का विकास उसके अपने इतिहास, आर्थिक संरचना, मूल्यों, राजनीतिक व्यवस्था आदि से जुड़ा होता है। उसकी सामाजिक व्यवस्था तथाा उसका भौतिक वातावरण या परिवेश की विशेषताएं उसके विचारों तथा संस्थाओं को रूप देता है। जिस प्रकार एक पौधा भिन्न वातावरण में नहीं उग सकता, उसी प्रकार एक संस्था किसी भिन्न सामाजिक स्थिति में नहीं फल–फूल सकती। इस प्रकार, लोक प्रशासन के वातावरण या परिवेश का यानी प्रशासन तथा उसके परिवेश के बीच सम्बन्ध को समझने के लिए समाज तथा उसके कार्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को समझना आवश्यक है।

13.4 फ्रैड डब्ल्यू0 रिग्स के विचार

जे0 एम0 गॉस, राबर्ट ए0 मर्टन ने फ्रैड डब्ल्यू0 रिग्स (1917-2008) से बहुत पहले लोक प्रशासन के अध्ययन के पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की शुरुआत की थी। परन्तु रिग्स ने ही इस दृष्टिकोण के प्रति महत्वपूर्ण योगदान दिया। अमरीकी विद्वानों तथा विकासशील देशों के सलाहकारों ने उसके थाईलैण्ड, फिलीपींस तथा भारत में किये अध्ययनों के आधार पर पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की शुरुआत की थी। परन्तु रिग्स ने ही इस दृष्टिकोण के प्रति महत्वपूर्ण येागदान दिया। विकासशील देशों के प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अपने अध्ययन में रिग्स ने एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में प्रशासनिक तथा आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी, राजनीतिक तथा संचार कारकों के बीच सम्बन्ध का विश्लेषण किया। थाईलैण्ड तथा फिलीपींस में अपने अध्ययनों के आधार पर उसने उदाहरण देकर यह बतलाया कि किस प्रकार पर्यावरण प्रशासनिक व्यवस्थाओं को प्रभावित करता है।

रिग्स ने विकासशील देशों में पश्चिमी संगठन सिद्धान्तों की उपयुक्तता के विषय में मौलिक या आधारभूत प्रश्न उठाये। उसने कहा कि प्रत्येक समाज की अपनी कुछ विलक्षण विशेषताएं होती हैं जो उसकी उपव्यवस्थाओं को प्रभावित करती हैं। उसने पाया कि पश्चिमी सिद्धान्तों में से अधिकतर ने व्यवस्था के ''भीतर'' झांका। इसकी तुलना में ''बाहर'' का सम्बन्ध सामान्यतः सामाजिक–आर्थिक परिवेश तृतीय विश्व के देशों जैसा नहीं है। इसीलिए, रिग्स के अनुसार, शायद विकसित देशों के लिए निर्मित सिद्धांत या प्रादर्श अविकसित देशों में लागू नहीं होते। इसलिए रिग्स के निष्कर्ष, तृतीय विश्व के देशों में प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझने के लिए महत्वूपर्ण माने जाते हैं। अपने निष्कर्षों के आधार पर तृतीय विश्व के देशों में प्रशासनिक व्यवस्थाओं के विश्लेषणात्मक ढांचे को विस्तृत किया गया है।

13.5 आदर्श प्रारूप

परिवेशीय या पारिस्थतिकीय दृष्टिकोण वस्तु स्थिति या घटना विशेष को समझने के लिए व्यवस्था उपागम का प्रयोग करता है। व्यवस्था–उपगाम का अर्थ घटना विशेष को अंतनिर्भर भागों से बने एक ही भाग पर केन्द्रित होने के बावजूद भी पारिस्थितिकीय उपागम संगठन के समग्र दृष्टिकोण को अपनाता है। यही कारण है कि रिग्स ने वृहद स्तर पर मुख्य व्यवस्थाओं को श्रेणीबद्ध किया तथा उन श्रेणियों को प्रशासन जैसी सूक्ष्म या छोटी–उप व्यवस्थाओं को लिया तथा विकासशील समाजों में परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए तीन आदर्श रूपों–बहुकार्यात्मक, समपार्श्वीय तथा अल्पकार्यात्मक को विकसित किया। रिग्स द्वारा आदर्श प्रारूप इतिहास–पूर्व, विकासशील तथा विकसित समाज का विश्लेषण करने के उद्देश्य से स्थापित काल्पनिक मान्यताएं हैं।

एक प्रिज्म से किरण के संक्रमण की प्रक्रिया को एक समाज परिवर्तन की प्रक्रिया की व्याख्या के लिए संकेत रूप में लिया गया है। किरण के आरंभ बिन्दु को बहुकार्यात्मक, (फ्यूज्ड) प्रिज्म के अंदर किरण की स्पंदन प्रक्रिया को संक्रमण कालीन, इन्द्रधनुष बनाने के लिए प्रिज्म से किरण के बाहर आने की प्रक्रिया को अल्पकार्य (डिफ्रैक्शन) कहा गया है। इसी प्रकार, जैसे रिग्स ने व्याख्या की है, विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएं विकास–प्रक्रिया की आरंभिक अवस्थाओं में बहुकार्यात्मक, (फ्यूज्ड) संक्रमणकालीन अवस्था में समपार्श्वीय तथा अन्त में अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) होगी।

रिग्स ने संरचनात्मक तथा कार्यात्मक उपागमों के आधार पर प्रारूप तैयार किए। उसके अनुसार एक बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) समाज में अकेला संगठन या संरचना बहुत से कार्य करती है। इसके विरुद्ध, एक अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज में निश्चित कार्य करने के लिए अलग–अलग संरचनाएं बनाई जाती हैं। परन्तु इन दोनों के बीच अनेक ऐसे समाज हैं जिनमें बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) तथा अल्प कार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज दोनों की विशेषताएं लगभग समान पाई जाती हैं। ऐसे समाज को समपार्श्वीय कहा जाता है। रिग्स इस बात पर बल देता है कि कोई भी समाज पूर्ण रूप से बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) या अल्कार्यातमक (डिफ्रैक्टेड) नहीं कहा जा सकता। समान्यतः सभी समाज प्रकृति में संक्रमणकालीन होते हैं। प्रत्येक समाज चाहे वह बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) है या अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) उसका चरित्र विभिन्न संरचनाओं एवं उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है।

13.4.1 बहुकार्यात्मक प्रारूप

बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) समाज की अवधारणा को स्पष्ट करने हेतु उदाहरणों के रूप में रिग्स ने साम्राज्यवादी चीन तथा क्रान्ति–पूर्व सयामी थाईलैण्ड को चुना। इन समाजों में कार्यों का कोई वर्गीकरण नहीं था तथा संरचना अनेक प्रकार के कार्य करती थी। ये समाज कृषि पर बहुत अधिक निर्भर थे तथा उनका औद्योगीकरण या आधुनिकीकरण नहीं हुआ था। उनकी आर्थिक व्यवस्था उस विनिमय के कानून तथा परिवर्तन व्यवस्था पर आधारित थी जिसे रिग्स ने ''पुनर्वितरण प्रारूप'' कहा। देश के प्रशासन में शाही परिवार ने एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। राजा तथा उसके द्वारा नामित अधिकारी सभी प्रकार के प्रशासनिक, आर्थिक तथा अन्य कार्य स्वयं ही करते थे। आर्थिक तथा प्रशासनिक कार्य करने की कोई अलग व्यवस्था नहीं थी। सरकार तथा जनता के बीच सम्बन्ध सामान्यतः निचले स्तर पर थे। जनता किसी भी चीज की आशा किए बिना राजा को अपनी सेवाएं तथा भौतिक वस्तुएं देकर उसके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करती थी। सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं थी यद्यपि जनता सरकार के आदेशों को मानने के लिए बाध्य थी।

सयामी राज्य में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। यह आर्थिक राजनीतिक तथा सामाजिक अनेक कार्य करता था। सामाजिक संरचना को आधार प्रदान करने के अतिरिक्त, यह प्रशासन के प्रमुख स्थान पर था। परिणामस्वरूप, इन संघों के प्रशासन ने व्यापक प्रसन्नता तथा विकास पर ध्यान देने की अपेक्षा परिवार तथा कुछ अन्य संप्रदायों के विशेष हितों की सुरक्षा करने का प्रयास किया। वास्तव में प्रशासन व्यवस्था परिवार तथा अन्य संप्रदायों की संरचना पर आधारित थी तथा यह व्यवस्था को सुरक्षित बनाये रखने में सहायक रही। सामान्यतः इस समाज की प्रवृत्ति स्थिर रहने की थी और जिनकी कोई विकसित संचार व्यवस्था भी नही थी। जनता की शायद ही कोई मांग रही होगी तथा शायद ही सरकार के सामने कभी कोई मामला उठाया गया होगा। राजा तथा उसके द्वारा नामित लोगों के पास असीमित सत्ता थी। जिसका प्रयोग वे सामान्यतः अपने निजी हितों की रक्षा के लिए करते थे। ये समाज औपचारिक व अनौपचारिक ढांचों, सरकारी और गैर–सरकारी कार्यों में भेद नहीं करते थे।

समाज में आरोपित मान्यताएं एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती थीं तथा जनता का व्यवहार अत्यधिक परम्परावादी था। सदियों पुरानी परम्पराएं, मान्यताएं, विश्वास तथा रहन–सहन के परम्परावादी ढंग लोगों को एक साथ रहने तथा अपने व्यवहार को नियंत्रित करने में समर्थ बनाते थे।

13.4.2 अल्पकार्यात्मक प्रारूप

ये समाज सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर आधारित है तथा इनके व्यवहार में भेद नहीं होता है। बहुत अधिक विशेषीकरण होता है तथा प्रत्येक संरचना एक विशेष कार्य करती है। आरोपित मान्यताएं समाप्त हो जाती हैं तथा उपलब्धि मान्यताओं का आगमन होता है। समाज अत्यधिक रूप से गतिशील तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) होता है। इन समाजों में खुली वर्ग–संरचनाएं होती हैं जिनका प्रतिनिधित्व विभिन्न संघ करते हैं तो समाज में तार्किक परिणामों को प्राप्त करने की प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। समाज के सभी संगठनों तथा संरचनाओं की निर्मित की जाती है तथा ये वैज्ञानिक तर्क पर आधारित होते हैं। आर्थिक व्यवस्था बाजार व्यवस्था पर आधारित होती है। बाजार का प्रभाव समाज के अन्य पहलुओं को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूप से प्रभावित करता है। रिग्स ने इसे ''बाजारकृत (मार्केटाइज्ड) समाज'' कहा है। विभिन्न संघ अलग–अलग कार्य करते हैं। संचार व्यवस्था तथा प्रौद्योगिकी बहुत अधिक विकसित होती है तथा सरकार सौहाद्रपूर्ण जन–सम्पर्क व्यवस्था को उच्च प्राथमिकता देती है। सरकारें लोगों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील होती हैं तथा मानव–अधिकारों की रक्षा करती हैं। लोगों द्वारा कार्यों को पूर्ण करने हेतु तथा काफी सीमा तक सरकार के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए दबाव डाला जायेगा। सरकारी अधिकारियों के पास कोई दबावकारी तथा असीमित शक्तियां नहीं होतीं। जनता स्वयं राष्ट्र के कानूनों पर ध्यान देती है तथा उनका सम्मान करती है। इससे सरकार को बिना किसी कठिनाई के अपने दायित्वों का निर्वाह करने तथा कानूनों को क्रियान्वित करने में आसानी होती है। सामाजिक जीवन के सभी आधारभूत पहलुओं पर जनता में व्यापक सामंजस्य होता है।

13.4.3 समपार्श्वीय प्रारूप

रिग्स ने अपने प्रारूपों के केन्द्रीय बिन्दु–समपार्श्वीय प्रारूप पर ध्यान केन्द्रित किया। रिग्स के अनुसार समापार्श्वीय समाज वह है जिसने विशिष्टीकरण का स्तर, आधुनिक प्रौद्योगिकी के लेन–देन में आवश्यक भूमिकाओं का विशेषीकरण प्राप्त कर लिया हो परन्तु इन भूमिकाओं को जोड़ने में असफल रहा हो। समपार्श्वीय समाज बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) दोनों समाजों के मूल्य प्रतिरूपों का हिस्सा है।

13.5 समपार्श्वीय समाज : विशेषताएं

दो चरण बहुकार्यात्मक तथा अल्पकार्यात्मक – के बीच का रूपों–

समाज समपार्श्वीय समाज कहा जाता है। अपने विश्लेषण में रिग्स ने बहुकार्यात्मक तथा अल्पकार्यात्मक प्रारूपों का विकासशील देशों के समपार्श्वीय वस्तु स्थिति की व्याख्या करने के साधन रूप में प्रयोग किया है। रिग्स के अनुसार, समपार्श्वीय समाज की तीन चारित्रिक विशेषताएं हैं। वे हैं– (अ) विजातीयता, (ब) औपचारिकता तथा (स) अतिआच्छादन।

13.5.1 विजातीयता

समपार्श्वीय समाज की मुख्य चारित्रिक विशेषता है विजातीयता की अधिकता। विजातीयता का अर्थ है भिन्न प्रकार की व्यवस्थाएं, व्यवहार, क्रियाएं तथा दृष्टिकोण आदि की एक साथ उपस्थिति। पूर्णतया विरोधी दृष्टिकोणों के समानान्तर सह–अस्तित्व के कारण एक समपार्श्वीय समाज में होने वाला

परिवर्तन असंगत, अपूर्ण तथा गैर–अनुक्रियाशील होगा। विजातीयता प्रशासनिक व्यवस्था को भी प्रभावित करती है।

एक समपार्श्वीय समाज में प्रशासन के आधुनिक गजट, पश्चिमी रूप के कार्यालय, बुद्धिजीवी वर्ग, कृत्रिमता भरे शहरी क्षेत्र होते हैं। सुविकसित संचार व्यवस्था, गगन चुम्बी इमारतें, वातानुकूलन, विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा तकनीकी सेवाओं को सम्पन्न करने वाली विशेषीकृत एजेंसियां भी इस समाज में होती हैं। दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में, लोग बहुत अधिक परम्परावादी जीवन व्यतीत करते हैं जिनके पास टेलीफोन, फ्रिज आदि जैसी आधुनिक जीवन की कोई सुविधाएं नहीं होतीं। गांव के बुजुर्गों द्वारा विभिन्न राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक भूमिकाओं का निर्वाह किया जाता है। विजातीयता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विरोधी तस्वीर प्रस्तुत करती दिखाई देती है। उदाहरण के लिए शिक्षा के क्षेत्र में, समाज शिक्षा के पाश्चात्य रूप पर भी बल देता है तथा परम्परावादी गुरुकुलों को स्वीकार करता है। इसी प्रकार आधुनिक सुविधा सम्पन्न डाक्टरी प्रथा के अनुसार (एलोपैथी) इलाज देने वाले अस्पतालों के साथ आयुर्वेदिक, यूनानी, होमियोपैथिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी केन्द्र भी अस्तित्व में है। इस प्रकार विरोधी व्यवस्थाओं का सह–अस्तित्व समाज को अलग–अलग दिशाओं की ओर खींचता है जिससे सामान्यीकरण प्रक्रिया कठिन बन जाती है। समपार्श्वीय समाजों में राजनीतिक तथा प्रशासनिक कार्यालय काफी प्रभावी शक्तिशाली तथा प्रतिष्ठावान होते हैं जो धन कमाने में सहायता करते हैं। यद्यपि सभी के लिए समान अवसर होते हैं, फिर भी कुछ ही व्यक्ति विशेषाधिकार प्राप्त कर लेते हैं तथा एक या दूसरे बहाने से आन्दोलन प्रारम्भ करते हैं। प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा चुने जाने पर भी सरकार लोगों को नियंत्रित करने की स्थिति में नहीं होती। सत्ताधारी लोग अपने हितों की रक्षा करने तथा सत्ता से चिपके रहने के सभी प्रयास करने की ओर प्रवृत्त या उन्मुख होते हैं। इस प्रकार, सदैव तथ्यों की गलत समझ तथा गलत प्रस्तुतीकरण से समाज में तनाव तथा अस्थिरता पैदा करती हैं।

बहु–समुदायवादी समाज में जहां विभिन्न समुदाय अपने–अपने हितों को बढ़ावा देने के लिए समाज को अलग–अलग दिशाओं में खींचने का प्रयास करते हैं, समस्या काफी पेचीदा या जटिल हो जाती है। यह एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के लगभग सभी विकासशील देशों में स्पष्ट है। इस प्रकार एकीकरण का अभाव एक समपार्श्वीय समाज की आधारभूत विशेषता होती है।

जीवन के लगभग सभी पहलुओं में ये सभी असमानताएं, विभेद न केवल प्रशासनिक व्यवस्था के कार्य को प्रभावित करते बल्कि उसके व्यवहार को सीमित करते हैं अपितु, प्रशासन के लिए अनके समस्याएं भी उत्पन्न करते हैं। यदि सत्ताधारी वर्ग धनी लोगों के हितों की रक्षा तथा गरीबों के हितों की उपेक्षा करने का प्रयास करेगा तो, रिग्स के अनुसार, इससे समाज में क्रान्ति के आरम्भ की अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न होंगी।

13.5.2 औपचारिकता

औपचारिकता का अर्थ उस सीमा से है जहां तक परम्परा सिद्ध तथा वर्णनात्मक नियमनिष्ठ तथा प्रभावी शक्ति, संविधान, कानूनों एवं नियमों, संगठन सारणियों एवं आंकड़ों, समाज तथा सरकार की वास्तविक क्रियाओं तथा तथ्यों के बीच विसंगति होती है। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ औपचारिक रूप से आदेशित तथा प्रभावी रूप से व्यवहारित मानदण्डों तथा वास्तविकताओं के बीच का अन्तर तथा निर्धारित उद्देश्यों एवं वास्तविक निष्पादन के बीच का अन्तर

है। औपचारिकता तथा वास्तविकता में जितना अधिक अन्तर होगा एक व्यवस्था उतनी ही अधिक औपचारिक होगी। एक समपार्श्वीय समाज, जिसमें औपचारिकता अधिक होती है, की तुलना में बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाजों में वास्तविकात अधिक होती है।

यद्यपि कानून, नियम एवं विनियम सरकारी अधिकारियों की कार्य प्रणाली को निर्धारित करते हैं, परन्तु वास्तविक रूप में उनके व्यवहार में अधिक अन्तर होता है। अधिकारी कभी नियमों पर डटे रहते हैं और कभी उनकी उपेक्षा, यहां तक की उनका उल्लंघन भी करते हैं। इस औपचारिक व्यवहार का कारण कार्यक्रम–उद्देश्यों के प्रति सरकार पर दबाव की कमी नौकरशाही के निष्पादन को प्रभावित करने की सामाजिक शक्ति की कमजोरी तथा स्वैच्छिक प्रशासन की उन्मुकतता है। इस प्रकार सरकारी अधिकारियों तथा नौकरशाहों का व्यवहार ऐसा होता है जिसे पहले से नहीं बताया जा सकता तथा यह असंगत तथा परिस्थिति पर निर्भर करता है। इस प्रकार के व्यवहार के कारण कर्मचारियों में आसानी से धन इकट्ठा करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति या कुप्रशासन के अवसरों की उपस्थिति हो सकती है। इस प्रकार सामान्यतः प्रशासन में नियमबद्धता समाज में भ्रष्टाचार के लिए रास्ता बनाती है।

औपचारिकता सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं में होती है। सामान्यतः जीवन के सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं से सम्बन्धित कानूनों का सम्मान तथा पालन नहीं होता। वे केवल सरकारी रिकार्ड के लिए ही होते हैं तथा सरकार भी उनके क्रियान्वयन के विषय में गंभीर नहीं होती। भारत में कुछ उदाहरण स्वरूप, कह सकते हैं कि नशाबंदी कानूनों का सम्मान उनका पालन करने की अपेक्षा उनको तोड़ने में अधिक है। शहरी योजना विनियम पालन करने की अपेक्षा तोड़े अधिक जाते हैं। इस प्रकार सामाजिक जीवन में बनावटीपन लगभग सभी विकासशील देशों में सामान्यतः देखा जा सकता है।

औपचारिकता के आयामों की व्याख्या करते हुए रिग्स ने संवैधानिक औपचारिकता का भी विचार किया। संवैधानिक औपचारिकता का अर्थ संवैधानिक उपबंधों तथा उनके वास्तविक क्रियान्वयन के बीच का अन्तर है। यह भारत में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए संवैधानिक व्यवहार के अनुसार, मुख्यमंत्रियों का चुनाव विधानसभा के बहुमत पक्ष द्वारा होता है। मंत्री परिषद् का चयन मुख्यमंत्री द्वारा होता है। परन्तु व्यवहार में, ज्यादातर मामलों में केन्द्रीय पार्टी नेतृत्व उनके चयन में निर्णायक भूमिका निभाती है। संविधान कानूनी रूप से शासन चलाने का कार्य जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथों में सौंपता है परन्तु व्यवहार में वास्तविक सरकारी शक्ति तथा प्रभाव संसद के बाहर कुछ लोगों तथा समूहों के पास होती है।

संविधान कानून बनाने का दायित्व विधायकों को सौंपता है परन्तु वास्तव में वे कानून निर्माण में बहुत कम समय लगाते हैं। वे अपने विधायी दायित्व का निर्वाह करने की अपेक्षा सत्ता की राजनीति में अधिक व्यस्त होते हैं। इससे नौकरशाही को समपर्श्वीय समाज में कानून निर्माण की मुख्य भूमिका का निर्वाह करने में सहायता मिलती है। यहां तक कि अधिकारी समूह बना सकते हैं या सत्ताधारी दल के अन्तर्गत फूट डालने वाले राजनीतिक नेताओं के साथ स्वयं को जोड़ सकते हैं। इस प्रकार समपार्श्वीय समाज में सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं में औपचारिकता रहती है।

13.5.3 अतिआच्छादन

अतिआच्छादन (ओवरलैपिंग) का अर्थ उस सीमा से है जिस तक एक अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज के औपचारिक रूप से विभेदीकृत संगठन या संरचनाएं बहुकार्यात्मक समाज में अविभेदीकृत संगठनों के सह–अस्तित्व में होते

हैं। प्रशासनिक व्यवस्थाओं में प्रशासनिक व्यवहार अप्रशासनिक आधार से अर्थात् राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक या अन्य बातों से प्रभावित होने की ओर उन्मुख होता है। एक बहुकार्यात्मक समाज में परम्परावादी संरचनाएं लगभग सभी प्रकार के कार्य सम्पन्न करती है इसलिए उनमें अतिच्छादन की समस्या उत्पन्न नहीं होती क्योंकि इस प्रकार के समाज में जो औपचारिक है वह प्रभावी भी है। जबकि एक समपार्श्वीय समाज में, नये या आधुनिक संगठन खड़े किये जाते हैं, फिर भी वास्तव में पुराने या अविभेदीकृत संगठन सामाजिक व्यवस्था पर प्रभुत्व जमाये रखते हैं। यद्यपि नये आदर्श या मानदंड तथा मूल्य, जो सामान्यतः अल्पकार्यात्मक संगठन से जुड़े होते हैं उनको औपचारिक मान्यता दे दी जाती है, वास्तव में उनके साथ जबानी सहानुभूति होती है तथा अल्पकार्यात्मक समाजों से जुड़े परम्परावादी मूल्यों के पक्ष में उन्हें उपेक्षित कर दिया जाता है। इस प्रकार एक समपार्श्वीय समाज में, संसद, सरकारी कार्यालय, बाजार, स्कूल आदि विभिन्न राजनीतिक, प्रशासनिक तथा आर्थिक कार्य सम्पन्न करते हैं। वास्तव में, उनका व्यवहार कुछ परम्परावादी संगठनों, जैसे, परिवार धर्म, जाति आदि से प्रभावित होता है।

13.6 साल प्रारूप

बहुकार्यात्मक समाज की विशेषता है कि उसमें अनेक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, तथा प्रशासनिक उप–व्यवस्थाएं शामिल होती हैं। रिग्स ने प्रशासनिक उप–व्यवस्था को ''साल प्रारूप'' का नाम दिया। एक अल्पकार्यात्मक समाज में इसके दूसरे भाग को ''ब्यूरो'' या ''कार्यालय'' तथा एक बहुकार्यात्मक समाज में उसे ही ''चेम्बर'' कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक की अपनी अलग विशेषतउएं होती हैं।

स्पेनिश शब्द ''साल'' के अनेक अर्थ हैं जैसे– सरकारी कार्यालय, धार्मिक सम्मेलन, एक कमरा, एक सीढ़ी इत्यादि। पूर्वी एशियाई देशों में भी सामान्यतः साल शब्द का प्रयोग लगभग इस अर्थ में किया जाता है। साल में अल्पकार्यात्मक ''ब्यूरो'' एवं बहुकार्यात्मक चैम्बर दोनों की कुछ विशेषताएं पायी जाती हैं। परन्तु साल की जो ''ब्यूरो'' विशेषताएं हैं इसके आधारभूत चरित्र का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती। विषय मूल्य व्यवस्था तथा समपार्श्वीय समाज के परम्परावादी एवं आधुनिक तरीके इसकी प्रशासनिक समझदारी में दिखाई देते हैं तथा ब्यूरो में पाई जाने वाली कार्यकुशलता साल मे नहीं होती।

समपार्श्वीय समाज में परिवार कल्याण, भाई–भतीजावाद तथा पक्षपात की महत्वपूर्ण भूमिका है, विभिन्न प्रशासनिक पदों पर नियुक्तियां तथा कुछ प्रशासनिक कार्य सम्पन्न किए जाते हैं। अल्पकार्यात्मक समाज में रिश्तेदारों प्रशासनिक व्यवहार तथा सरकारी सत्ता के प्रयोग से अलग रखी जाती है। बहुकार्यात्मक समाज में राजनीतिक–प्रशासनिक व्यवस्था का चरित्र आनुवंशिक है इसलिए परिवार या रिश्तेदारी को महत्व देता है। समपार्श्वीय समाज में नातेदारी तथा परिवार के ऊपर नये औपचारिक संगठनों को लादने के अतिरिक्त, दूसरी तरफ यह कानूनों के व्यापक रूप से क्रियान्वयन की उपेक्षा करता है। यद्यपि आनुवंशिकतावाद अधिकारिक रूप से निर्धारित होती है, वास्तविक रूप में इसका व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है तथा सभी प्रशासनिक व्यवहारों में देखा जा सकता है। ''साल'' अधिकारी सामाजिक कल्याण की अपेक्षा निजी उन्नति या धन प्राप्ति को प्राथमिकता देता है। उसका व्यवहार तथा निष्पादन पुरातनवाद या रुढ़िवाद से प्रभावित होता है जिसके परिणामस्वरूप नियमों एवं विनियमों का क्रियान्वयन व्यापक रूप से नहीं किया जाता। कुछ लोग दूसरों की तुलना में सरकारी कार्यक्रमों से अधिक लाभान्वित होते हैं जिससे बहुत बड़े वर्ग के हितों की उपेक्षा होती है।

इसके अतिरिक्त बहु–समुदायवाद से कुछ प्रशासनिक समस्याएं भी उत्पन्न होती हैं। सैद्धान्तिक रूप से यह कहा जा सकता है कि सरकारी अधिकारियों द्वारा कानूनों का निष्पक्ष रूप से क्रियान्वयन होना चाहिए। परन्तु एक सरकारी अधिकारी सरकार के प्रति कम वफादार होता है जबकि अपने समाज के सदस्यों के प्रति अधिक वफादार पाया जा सकता है। परिणामस्वरूप, प्रबल अल्पसंख्यक समुदाय भर्ती आदि में प्रतिनिधित्व का प्रधान अंश प्राप्त करते हैं जिससे अधिकतर लोगों में असंतोष उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति उपस्थित करने तथा अन्य अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने के लिए ''कोटा'' या आरक्षण पद्धति अपनाई जा सकती है जिससे प्रशासन में सभी समुदायों को एक प्रकार का आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जा सके। फिर भी इस प्रकार की व्यवस्था विभागीकरण तथा समुदायों को पारस्परिक विद्वेष की ओर ले जा सकती है जिससे विभिन्न सरकारी ऐजेन्सियों में कार्यरत भिन्न समुदायों के बीच तनाव और भी बढ़ सकता है। केवल विकासशील देशों में ही विशेष रूप से यह स्थिति नहीं है, जैसा कि दक्षिण अमेरिका में सफेद तथा नीग्रो लोागें के बीच का तनाव इसका उदाहरण है।

समपार्श्वीय समाज में परिवार, समुदाय तथा जाति निर्णायक भूमिकाएं निभाती हैं, परन्तु उसके साथ ही नए समूहों का विकास भी इस समाज के अन्तर्गत होता है। रिग्स इसे कलैक्ट कहते हैं। कलैक्ट एक अपने ही प्रकार का समपार्श्वीय समूह होता है जो आधुनिक संघात्मक पद्धतियों या संगठन का प्रयोग तो करता है, परन्तु पुरातनवादी अपविस्तृत (डिफ्यूज) तथा विशिष्ट ध्येयों को बनाए रखता है।''क्लैक्टों'' में मात्र एक समुदाय सा समूह विशेष के लोग शामिल होते हैं तथा उस श्रेणी से जुड़े सरकारी अधिकारी केवल अपने कलैक्टों के सदस्यों की सेवा प्रभावी रूप से अन्य लागों की उपेक्षा करके करते हैं। कभी–कभी साल या इसकी एजेंसियों में से कोई एक क्लैक्ट विशेष के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेती है या एक क्लैक्ट के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर देती है।

परिणामस्वरूप क्लैक्ट एक समूह विशेष से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखता है तथा प्राथमिक रूप से उसके हित के कार्य करता है तथा व्यापक मानदंडों या आदर्शों तथा उपलब्धियों के प्रति केवल दिखावटी बातें करता है। एक समपार्श्वीय समाज में पुरातनवादी व्यवहार का प्रतिमान मानदण्डों या आदर्शों की नई प्रवृत्ति के साथ–साथ विद्यमान होता है। औपचारिक तथा प्रभावी आचरण मानदण्डों के अतिच्छादन के परिणामस्वरूप आचरण प्रतिमानों के विषय में सामंजस्य का अभाव समपार्श्वीय की सामाजिक अंतः क्रियाओं की विशेषता होता है।

साल अधिकारी राज सेवा में प्रवेश तो उच्चतर शैक्षिक योग्यताओं के कारण प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने के माध्यम से कर सकते हैं, परन्तु अपनी पदोन्नति तथा कैरियर के विकास के सम्बन्ध में वे मुख्यतः या अधिकतर निक्षेपित सम्बन्धों तथा वरिष्ठता के आधार पर अथवा वरिष्ठ अधिकारियों के प्रभाव पर भी निर्भर करता है। यद्यपि ये अधिकारी अपने आचरण में आधुनिक मानदंडों पर चलने का दावा कर सकते हैं, वास्तविकता प्रतिदिन के व्यवहार में ये मानदण्डों की उपेक्षा अथवा उन्हें अस्वीकृत करते हैं। जनता भी नियमों तथा विनियमों का पालन करने में साल अधिकारियों का अनुसरण करती है। परन्तु जब उनका निजी मामला होता है तो वे या तो नियमों को तोड़ने का प्रयास करेंगे या अपने हित में छूट प्राप्त करने के लिए निवेदन करेंगे।

एक समपार्श्वीय समाज के शक्ति संगठन के आच्छादन का वर्णन करते समय रिग्स कहते हैं कि यह एक बहुत अधिक केन्द्रीकृत सत्ता संरचना है जो

बहुत अधिक स्थानीय तथा बिखरी हुई नियंत्रण व्यवस्था को आच्छादित करती है। इसमें सत्ता का (अधिकारिक रूप से स्वीकृत या वैध सत्ता) तथा नियंत्रण वास्तविक, परन्तु अनाधिकारिक रूप से अनुमत या अवैध सत्ता से विभाजन होता है। व्यवहार में कानूनी शक्ति वस्तुतः नियंत्रणों के सामने झुक जाती है। साल की सत्ता बहुल समुदायवाद, क्लैक्ट तथा बहुल आदर्शवाद पर आधारित समाज की नियंत्रण संरचनाओं को आच्छादित करता है। बहुत सी संरचनाएं कभी–कभी असाधारण से व्यवहार करती हैं तथा यहां तक कि कई बार उस उद्देश्य के ही विरुद्ध कार्य करती हैं जिसके लिए उन्हें बनाया गया था। कभी–कभी प्रशासन की ओर मूलभूत स्थिति से विहीन संरचनाएं इसके लिए उत्तरदायी अन्य संरचनाओं के साथ प्रशासनिक कार्यों का क्रियान्वयन करती हैं।

रिग्स ने समपार्श्वीय समाज को एक असंतुलित राज्य कहा है जिसमें राजनीतिक नेताओं की संवैधानिक शक्तियों के होते हुए भी नौकरशाहों का प्रभुत्व होता है। परिणामस्वरूप साल अधिकारी सम्पार्श्वीय समाज की निर्णय निर्माण प्रक्रियाओं में अल्पकार्यात्मक समाज की तुलना में अधिक प्रभुत्वशाली भूमिका निभाते हैं। नौकरशाहों के हाथों में शक्तियों के केन्द्रीयकरण के कारण, लोगों की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं के प्रति उनके दृष्टिकोण में सहानुभूति का अभाव होगा। इस प्रकार की परिस्थिति में विकासशील समाज में लोग प्रशासन को शक्तिशाली बनाना राजनीतिक विकास को संभवतः अवरुद्ध करना होगा। उन्होंने आगे कहा है कि नौकरशाहों को नियंत्रित करने में असफल राजनीतिक व्यवस्था विधानमंडल, राजनीतिक दलों, स्वैच्छिक संस्थाओं तथा जनमत को प्रभावशून्य बना देगी।

किसी भी सत्तारुढ़ राजनीतिक नेता की कमजोरी या शक्ति उसकी प्रशासकों को दंडित करने तथा पारितोषिक देने की योग्यता से अलग होती है। एक कमजोर राजनीतिक नेता एक कार्यकुशल अधिकारी की सेवाओं को पहचानने तथा उसके द्वारा संगठन लक्ष्य को प्राप्त करने पर उस अधिकारी को पुरस्कार देने में असफल हो सकता है। परिणमतः एक कुशाग्र बुद्धि वाला साल अधिकारी अपनी शक्ति तथा निजी हितों को बढ़ावा देने में अपना अधिकतम समय व्यतीत करने की ओर प्रवृत होता है तथा इस प्रक्रिया में अकुशल अधिकारी बचकर निकल सकते हैं। क्योंकि सरकार का निष्पादन साल अधिकारी के उत्पादन स्तर पर निर्भर करता है, इसलिए रिग्स का कहना है कि नौकरशाही के व्यवहार तथा प्रशासनिक उत्पादन में घनिष्ठ सम्बन्ध है, एक नौकरशाह जितना अधिक शक्तिशाली होगा, उतना ही वह प्रभावहीन प्रशासक होता है। परिणामस्वरूप अपने हितों की रक्षा के लिए सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य से नियंत्रित होने के कारण कानूनों के संचालन में अकुशलता, संस्थागत भ्रष्टाचार तथा भर्ती में भाई–भतीजावाद साल की विशेषताएं होती हैं।

13.7 बाजार–कैंटीन प्रारूप

समपार्श्वीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक उपव्यवस्था को रिग्स बाजार–कैंटीन प्रारूप का नाम देते हैं। एक अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज में आर्थिक व्यवस्था मांग और पूर्ति के बाजार घटकों पर निर्भर होकर काम करती है तथा केवल आर्थिक कारण ही बाजार को नियंत्रित करते हैं। एक बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) समाज में धार्मिक, सामाजिक या परिवार सम्बन्धी कारक अर्थव्यवस्था को संचालित करते हैं। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में एक प्रकार से वस्तु विनिमय प्रणाली ही विद्यमान होती है तथा कीमत का प्रश्न कभी–कभार ही उत्पन्न होता है। समपार्श्वीय समाज में बाजार अर्थव्यवस्था तथा परम्परावादी अर्थव्यवस्था दोनों की विशेषताएं होती हैं। ऐसी परिस्थितियों में एक वस्तु या सेवा का मूल्य आंकना संभव नहीं होता।

बाजार कैंटीन, प्रारूप में, समाज का एक वर्ग आर्थिक संस्थाओं पर नियंत्रण द्वारा सभी लाभ प्राप्त करता है तथा अधिक लोगों का शोषण करता है। सौदेबाजी, कटौती तथा रिश्वत इत्यादि इस प्रारूप की सामान्य विशेषताएं हैं। सभी स्तरों पर भेदभाव तथा पक्षपात होता है, सेवाओं का निर्धारण सार्वजनिक अधिकारी तथा लोगों के सम्बन्धों से दृढ़ होता है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान में तथा एक समय से दूसरे समय तथा व्यक्तिशः भिन्न होती है। किसी वस्तु या सेवा की कीमत परिवार के सम्बन्ध, रिश्तेदारी, व्यक्तिगत सम्बन्ध, सौदेबाजी की शक्ति तथा राजनीति पर निर्भर होती है। इस प्रकार की स्थिति कालाबाजारी, जमाखोरी, मिलावट तथा महंगाई इत्यादि को बढ़ावा देती है। एक समपार्श्वीय समाज में बाजार कारक पूंजी में आनुपातिक वृद्धि के बिना ही विकसित होते हैं, व्यापारी अपने प्रभाव को निजी हितों के उद्देश्य से राजनीतिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों तक फैलाने का प्रयास करते हैं। इसलिए शोषण, गरीबी तथा सामाजिक अन्याय बाजार– कैंटीन प्रारूप की मुख्य विशेषताएं बन जाती हैं।

13.8 समपार्श्वीय समाज का सिद्धान्त : पुनर्निर्माण का संशोधन

अपने प्रयासों की सीमाओं को स्वीकार करते हुए रिग्स ने अपने बाद के कार्य ''प्रिज्मैटिक सोसाइटी रिविजिटेड'' (1975) में सुधार किया था। जैसा पहले कहा जा चुका है, उसके बहुकार्यात्मक, समपार्श्वीय तथा अल्पकार्यातमक समाजों के प्रारूप में विभेदीकरण के स्तरों पर आधारित थे। अपने नए सूत्रों में, रिग्स ने विभेदीकृत तथा समपार्श्वीय समाजों के बीच समन्वय का दूसरा आयाम प्रस्तुत किया है। रिग्स ने विभेद तथा समन्वय के दोहरे दृष्टिकोण के माध्यम से समाजों को समन्वय तथा असमन्वय के आधार पर संकलित किया। अल्पकार्यात्मक तथा समपार्श्वीय समाजों के प्रारूपों को फिर आगे के समन्वय के आधार पर उप विभाजित किया गया। इसलिए अल्पकार्यात्मक समाजों आदि को अल्पकार्यात्मक अर्थों–अल्पकार्यात्मक तथा नव–अल्पकार्यात्मक के रूप में संकलित किया गया है। इसी प्रकार समपार्श्वीय समाजों को भी आदि समपार्श्वीय आर्थों–समपार्श्वीय तथा नव–समपार्श्वीय के रूप में संकल्पित किया गया है। दोहरे दृष्टिकोण के नए सूत्रों का अर्थ है एक अल्पकार्यात्मक प्रारूप उस समाज का वर्णन करता है जो विभेदीकृत तथा समन्वित है तथा समपार्श्वीय प्रारूप विभेदीकृत परन्तु असमन्वित समाज का वर्णन करता है। दोनों प्रारूपों के साथ जुड़े पूर्व प्रत्यय विभेद तथा समन्वय के बीच भिन्न सम्बन्धों को बतलाते हैं।

रिग्स ने संशोधित प्रारूपों का प्रयोग अमरीका जैसे विकसित समाज में तनावों की व्याख्या करने के लिए किया। उसके विचार में विकसित राष्ट्रों में शहरी, संकट, वंशानुगत या जातिगत हिंसा, विद्यार्थी आन्दोलन जैसे सामाजिक तनाव विभेद तथा समन्वय में दूषित समायोजन के परिणामस्वरूप होते हैं। अल्पविकसित देशों में अधिक स्थिर या शान्तिपूर्ण स्थितियों समपार्श्वीय समाजों में विभेद तथा समन्वय के बीच के कम अन्तर का सूचक हो सकती हैं। रिग्स के ये सूत्र विकासशील तथा विकसित समाजों की विशेषताओं को समझने के लिए अधिक उपयोगी हैं।

रिग्स के विचार–

(a) तुलनात्मक प्रशासन

(b) विकास प्रशासन

13.9 आलोचना

रिग्स की पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की बहुत सी आलोचनाएं की गयीं। मुख्यतः आलोचनाएं निम्न आधारों पर की जाती हैं:

(i) भाषा के प्रयोग में कठिनाइयां,

(ii) परिवर्तनोन्मुखता का अभाव,

(iii) परिणात्मक सूचकों का अभाव,

(iv) अवधारणाओं की नकारात्मक प्रवृत्ति या उन्मुखता; तथा

(v) जाति या वंशवाद पर मुख्य बल।

भाषा–प्रयोग में कठिनाइयां

रिग्स ने अपनी धारणाओं का अर्थ बतलाने के लिए नये शब्दों को निर्मित किया। इसके अतिरिक्त पहले सही प्रयोग में आए अनेक शब्दों को भिन्न अर्थ भी प्रदान किया। नये शब्द बनाने में उस समय कोई हानि नहीं होती जब वर्तमान शब्दकोष अर्थ समझाने तथा अवधारणाओं को ढंग से अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो यदि कोई अपने ढंग से शब्द की व्याख्या करता है तो इसमें यह भी कोई गलत बात नहीं है। परन्तु नये शब्दों का स्वतंत्र प्रयोग और ऐसे शब्दों का जिनके पहले ही भिन्न–भिन्न अर्थ हों, अवधारणाओं को स्पष्ट करने के स्थान पर उलझन या भ्रान्ति पैदा कर सकता है। रिग्स ने अपने प्रारूपों को वैज्ञानिक रूप देने के उत्साह में अपनी अधिकतम शब्दावली भौतिक विज्ञानों से उधार ली है। परन्तु प्रशासन के विश्लेषण के लिए भौतिक विज्ञानों से उधार लिए कुछ नये शब्दों का प्रयोग इसे विज्ञान नहीं बना सकता।

परिवर्तनोन्मुखता की कमी

'हान–बीन ली' विकास प्रशासन के सामाजिक परिवर्तन पर संकेन्द्रण की दृष्टि से समपार्श्वीय तथा साल प्रारूपों की उपयोगिता को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। ली का मानना है कि रिग्स के प्रारूप सामाजिक परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया के विश्लेषण में सहायक नहीं हैं। वे रिग्स के प्रारूपों को संतुलन–प्रारूपों के रूप में मानते हैं। संतुलन प्रारूप व्यवस्था को सुरक्षित रखने में सहायता देंगे परन्तु व्यवस्था में कोई परिवर्तन प्रस्तुत करने में नहीं। इस प्रकार निष्कर्षतः ली कहते हैं कि रिग्स के प्रारूप उस समय उपयोगी नहीं हैं जब प्रशासन का लक्ष्य व्यवस्था को बनाये रखने की अपेक्षा व्यवस्था को परिवर्तित करता हो।

परिमाणात्मक सूचकों का अभाव या अनुपस्थिति

विशेष समाजों में रिग्स के प्रारूपों को क्रियान्वित करने में मूल्यांकन की समस्या उत्पन्न होती है। मूल्यांकन के अभाव में समपार्श्वीय या अल्पकार्यात्मक समाजों की पहचान कठिन हो जाती है। रिग्स के विश्लेषण के पीछे चलने वाला विद्यार्थी समपार्श्वीय परिस्थितियों को प्रत्येक ज्ञात स्थिति या अवस्था से जोड़ने की ओर प्रवृत हो सकता है। इसी प्रकार जब प्रसृत (फ्यूज्ड) तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज काल्पनिक हो, दयाकृष्ण कहते हैं, सभी समाजों का वर्गीकरण निम्न, माध्यम या उच्च स्तरों पर समपार्श्वीय के रूप में करना होगा परन्तु जब समपार्श्ववाद के स्तरों के मूल्यांकन का अभाव हो तो इस प्रकार का वर्गीकरण असंगत होगा। सत्य यह है कि रिग्स के प्रारूप कुछ मान्यताओं पर आधारित हैं। परन्तु किसी अनुभव–परस्त प्रमाण के अभाव में इस प्रकार की मान्यताओं को चुनौती दी जा सकती है।

अवधारणाओं की नकारात्मक प्रवृत्ति या उन्मुखता

रिग्स ने एक समपार्श्वीय समाज के सकारात्मक चरित्र को इतना महत्व नहीं दिया जितना इसके नकारात्मक चरित्र को। उसने नियमबद्धता या नियमनिष्ठता को एक नकारात्मक पहलू के रूप में प्रस्तुत किया तथा उसके सभी बुरे प्रभावों को उभारा। परन्तु यह भी सच है कि कभी–कभी नियमों तथा विनियमों का सख्ती से पालन न करने से लोगों को लाभ हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि कुछ नियमों का सख्ती से पालन न किया जाए तो प्रशासन अधिक तेज गति से चल सकता है। भारत जैसे देशों में, यदि नेतृत्व ठीक हो, नियमनिष्ठता अधिकतम या सभी स्थितियों में कार्य–अवरोधक बन जाता है तथा एक गैर–परिवेशीय दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। रिग्स की नकरात्मक औपचारिकता की अवधारणा को प्रति–संतुलित करने के लिए वाल्सन ने सकारात्मक औपचारिकता की नई अवधारणा प्रस्तुत की है। इस बात से असहमति नहीं हो सकती जहां पर निष्पादन के एक उच्चतर स्तर प्राप्त करने का प्रयास किया जायेगा वहां प्रत्येक स्थिति में औपचारिकता का होना आवश्यक है। इसका अर्थ निष्पादन के नये उच्चतर स्तर पर पहुंचने की लोगों की इच्छा है। सभी संस्थाऐं तथा व्यक्ति अपना निष्पादन सुधार सकते हैं जब निर्धारित लक्ष्य, निर्धारित मानदंड उच्चतर किस्म या स्थिति के हों। औपचारिकता को सद्भावनाओं तथा उसे प्राप्त करने के लिए संघर्ष के बीच अन्तर समझने की अपेक्षा, इसका वर्णन एक नकारात्मक विशेषता के रूप में किया गया है।

लवमैन ने रिग्स को नौकरशाही शक्ति और आधिकारिता का समर्थन करने के लिए दोषी ठहराया है।

जातिवाद या वंशवाद पर अधिक बल

समाजों का बहुकार्यात्मक समपार्श्वीय या अल्पकार्यात्मक समाजों के रूप में वर्गीकरण पूंजीवादी व्यवस्था में अंतर्निहित मूल्यों पर आधारित है। वास्तव में अल्पकार्यात्मक प्रारूप की विशेषताएं पूर्णतः एक पूंजीवादी व्यवस्था की विशेषताएं हैं। रिग्स का विश्लेषण स्पष्ट रूप में अन्य प्रारूपों के ऊपर अल्प कार्यात्मक प्रारूप की श्रेष्ठता स्थापित करता है। उस सीमा तक यह दृष्टिकोण जाति या वंशवाद से ग्रसित है।

13.10 सारांश

पुरातन संगठन सिद्धांत मुख्यतः संगठनात्मक संरचनाओं एवं सिद्धान्तों पर बल देते हैं तथा व्यवहारवादी सिद्धान्त संगठन में मानव व्यवहार पर केन्द्रित है परन्तु परिवेशीय सिद्धान्त प्रशासन तथा उनके परिवेश के बीच अन्तक्रिया पर बल देते हैं। विषय सामग्री तथा विश्लेषण दोनों में, रिग्स का पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण समन्वित दृष्टिकोण को धारण करता है। उनके दृष्टिकोण तथा प्रारूप विकासशील देशो में प्रशासनिक प्रक्रिया का परीक्षण करने में हमारी सहायता करते हैं। यद्यपि व्यवहार में उनके प्रशासनिक प्रारूपों का पाया जाना कठिन है, परन्तु वे वास्तविकताओं को समझने में हमारी सहायता करते हैं। साल प्रारूप विकासशील देशों में प्रशासनिक व्यवस्था का विश्लेषण करने तथा समझने का अवसर प्रदान करता है। अनुभव तथा पारिस्थितिकीय दृष्टिकोणों पर आधारित अध्ययनों को और आगे बढ़ाने के काम को यह आसान बनाता है।

प्रशासनिक सिद्धान्त के निर्माण में रिग्स के योगदान को लोक प्रशासन के विद्वानों द्वारा सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त है।

13.11 मुख्य शब्दावली

थोपे हुए मूल्य : जन्म से ग्रहण किए हुए मूल्य।

उपलब्धि मूल्य : अपने निजी प्रयासों से ग्रहण किए मूल्य।

वस्तु विनिमय : यह रूढ़िवादी अर्थव्यवस्था की विशेषता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय होता है, धन का प्रयोग नहीं होता है।

ब्यूरो : एक अल्पकार्यात्मक समाज में प्रशासनिक उप–व्यवस्था।

चैम्बर : एक बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) समाज में प्रशासनिक उप–व्यवस्था।

विभेद : एक ऐसी स्थिति जिसमें प्रत्येक कार्य के निष्पादन के लिए तद्नुरूप विशेषीकृत संरचना होती है।

नियमनिष्ठ : अधिकारिक मानदंड, सिद्धान्त की संविधानों, विधियों, नियमों तथा विनियमों द्वारा अभिव्यक्त किया जाना चाहिए।

समन्वय : एक साथ बांधने की प्रक्रिया जिससे समाज में विशेषीकृत भूमिकाओं को समन्वित किया जा सके।

13.12 बोध प्रश्न

1. (1) पारिस्थिकीय दृष्टिकोण से आप क्या समझते हैं?
2. (1) आदर्श प्रारूप क्या है तथा रिग्स ने उन्हें कैसे विकसित किया है?

   (2) बहुकार्यत्मक प्रारूप की क्या विशेषताएं हैं?

   (3) अल्पकार्यात्मक प्रारूप बहुकार्यात्मक प्रारूप से किस प्रकार भिन्न है?

   (4) क्या भारतीय सामाजिक वास्तविकता समपार्श्वीय समाज की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती है? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।
3. (1) प्रशासन के साल प्रारूप (मॉडल) की विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
4. (1) ''रिग्स का पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण गैर परिवेशीय है''। चर्चा कीजिए।

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) भाग 13.3 देखें।
2. (1) भाग 13.4 देखें।

   (2) उपभाग 13.4.1 देखें।

   (3) उपभाग 13.4.1 तथा 14.4.2 देखें।

   (4) भाग 13.5 देखें, 14.5.1, 14.5.2 तथा 13.5.2 उपभाग देखें।

3. (1) भाग 13.6 देखें।

4. (1) भाग 13.7 देखें।

13.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Arora, Ramesh K., 1972, Comparative Public Administration: An Ecological Approach; Associate Publishing House: New Delhi

Bhattacharya, Restructuring Public Administration, 3rd edition New Delhi, Jawahar Publishers, 2006

Prasad, Ravindra D., et.al (eds.) 2012, Administrative Thinkers: Sterling Publishers : New Delhi

Riggs, Fred W., 1964, Administration in Developing Countries: The Theory of Prismatic Society; Houghton Miffin: Boston

Riggs, Fred W., 1961, The Ecology of Public Administration: Asia Publishing House: New Delhi

Verma, S.P. and Sharma S.K. (eds) 1983, Development Administration: IIPA : New Delhi

Notes